विषयानुक्रमणिका



 ४२५०

स्व प्रसिद्ध वक्ता, जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म. सा. उन सन्तो मे से थे, जिन्होने अपना जीवन आत्म-साधना मे लगा रक्खा था। उनकी व्याख्यान शैली और बोलने की कला अपने ढग की निराली ही थी। गहन से गहन विषय को भी सुगमता से जन-जन के हृदय मे ठसा देने की उनके जीवन मे अद्भुत शक्ति थी। जिससे श्रोता के हृदय पर सीधा असर होता और वे त्याग-प्रत्याख्यान की ओर कदम उठाते थे। आपके उपदेशो से अनेक राजा महाराजाओ ने मूक जीवो की रक्षा करके अभयदान दिया था।

श्री स्व दिवाकरजी म के प्रवचन सर्वजनोपयोगी होते थे, आबाल वृद्ध सभी जन उनके उपदेशो से लाभ उठाते थे। आप उर्दू, फारसी एव हिन्दी भाषा के भी अच्छे ज्ञाता थे।

दूसरे मे भी दिखाई देता ! मगर तीर्थंकर भगवान् के समान रूप सौन्दर्य अन्यत्र कही भी नही दिख पडता, इससे यही अनुमान होता है कि वह सुन्दर परमाणु ससार मे उतने ही थे।

भाइयो ! ससार में नाना प्रकार के रूप देखे जाते हैं। किसी का रूप ऐसा सुन्दर, सौम्य, सात्विक और मधुर होता है कि उसे देखकर शान्ति प्राप्त होती है और किसी के रूप को देख कर दूसरो के चित्त मे विकार उत्पन्न होता है, दुर्भावना या घृणा पैदा होती है। इसका कारण क्या है ? इसका एक मात्र प्रधान कारण पुण्य और पाप है। पुण्य प्रकृतियो का उदय होने पर चेहरा सुन्दर और स्पृहणीय होता है। देखकर दूसरों को प्रसन्नता होती है। प्रीति उपजती है। हृदय मे पावन विचारो की तरगे तरगित होने लगती हैं। और यदि पाप प्रकृतियो का उदय होता है तो इससे विपरीत परिणाम होते हैं।

दुनिया में करोडो-अरबो मनुष्य पैदा होते और निवास करते हैं। उनमे बहुतो का रूप सुन्दर होता है। किन्तु तीर्थङ्कर भगवान् की तुलना मे किसी का सौन्दर्य नही ठहर सकता। उनका सौन्दर्य एकदम असाधारण होता है, क्योकि उनका पुण्य असाधारण है। अनेक जन्मो मे सचित उत्कृष्ट पुण्य के उदय से तीर्थंकर की छवि अनुपम और गजब की होती है।

भाइयो ! जैसे ज्यादा पैसे खर्च करो तो रेल मे फर्स्टक्लास का डिब्बा मिलता है अच्छे वस्त्र और अच्छे आभूषण पहनने को मिलते हैं, सुन्दर हवेली निवास करने को मिलती है, इसी प्रकार प्रबल पुण्य हो तो सब सयोग अनुकूल मिलते हैं। भगवान की करणी उत्कृष्ट थी तो फल भी उत्कृष्ट मिला। शारीरिक सम्पदा असाधारण मिली।



पुण्यपथ और पापपथ



स्तुति :—

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनन्तशक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएँ ?

हे नाभिनन्दन ! हे वीतराग देव ! जिन सुन्दरतम परमाणुओं से आपके शरीर का निर्माण हुआ है, जान पड़ता है वह परमाणु जगत मे उतने ही थे। हे तीन लोक मे अद्वितीय सुन्दर भगवान् ! अगर वैसे परमाणु और भी होते तो आप सरीखा रूप किसी

यही कारण है कि भगवान् आदिनाथ भी समस्त जगत् की विभूति थे। उन्होने समान दृष्टि से प्राणी मात्र को महामगल का मार्ग दिखलाया है।

भागवत के पॉचवे स्कध मे राजा परीक्षित के सामने शुकदेव मुनि ने उनका वर्णन किया है। कुरान के पहले पारे मे बाबाआदम का वर्णन मिलता और वह बाबा आदम यही ऋषभदेव आदिनाथ ही थे। सब से पहले इन्होने ही धर्म की स्थापना की। ऐसे भगवान ऋषभदेव थे। उन्ही को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयो! ससार मे तीन भाव मुख्य है- (१) पुण्य (२) पाप और (३) धर्म। जो प्राणी पाप का उपार्जन करते हैं उन्हे खराब शरीर निर्धनता अन्धापन लूला-लगडापन और भिक्षुकता की प्राप्ति होती है। पापी जीव हर प्रकार से दुखी रहता है। पुण्य के फल से सुन्दर शरीर और मधुर ध्वनि, की प्राप्ति होती है। पुण्यात्मा जीव को विनीत पुत्र, पतिव्रता पत्नी, प्रेमशील परिवार, धन-सम्पत्ति, बढिया हवेली आदि सब सामग्री सुखदायी मिलती है। और धर्म से निरजन निराकार पद की प्राप्ति होती है।

पाप से अशुभ कर्मों का बन्ध होता है, पुण्य से शुभ कर्मों का बध होता है, परन्तु धर्म की विशेषता यह है कि उससे कर्मबध नही होता, वरन् सवर और निर्जरा होती है। अर्थात् नवीन कर्मों के आस्रव का निरोध होता है और पहले के बँधे कर्मों का क्षय होता है। धर्म का आचरण करके जीव जब पूर्वबद्ध कर्मों का क्षय कर डालता है और नूतन कर्मो का आगमन रोक देता है तो समस्त कर्मो का अन्त आ जाता है और कर्मो का अन्त आने पर मुक्ति-पद प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार धनी जिस बात से अपनी प्रतिष्ठा समझता है, जिसमे अपना गौरव मानता है, समझदार लोग उसी मे उसके जीवन का अध:पतन देखते है ।

कहो भाई, भैरोजी किस-किसको गरीब बनावे और किस किस को अमीर बनावें ? एक अमीर कहता है– भैरोजी महाराज, मेरे घर चोर न आवे ! और चोर कहता है–महाराज ! मुझे धन मिल जावे ! भैरोजी किसकी सहायता करे और किसकी न करें ?

भाइयों ! सच बात तो यह है कि न कोई किसी को बना सकता है और न कोई किसी को बिगाड ही सकता है ? पुण्य बनाने वाला और पाप बिगाडने वाला है । इसीलिए शास्त्र मे कहा है–

पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं.
किं बहिया मित्तमिच्छसि ?

— आचारांगसूत्र,

हे आत्मन् ! तू अपना मित्र अर्थात् सहायक आप ही है । बाहर के मित्र की क्यों इच्छा करता है ?

कितना सुन्दर और भावपूर्ण वचन है ! वास्तव मे आत्मा स्वय अपने ही कर्म से सुखी होता है और अपने ही कर्म से दुखी होता है । अगर तेरे पुण्य का उदय है तो कोई देवी-देवता भी तेरा कुछ नही बिगाड सकता । और यदि पुण्य क्षीण हो गया है और पाप का उदय आ गया है तो कोई तुझे सुखी नही बना सकता । इस प्रकार अपने सुख और दु:ख के लिए तू ही उत्तरदायी है । किसी दूसरे को उत्तरदायी बना कर तू व्यर्थ ही राग-द्वेष के वशी होता है, आर्त्तध्यान करता है और अशुभ कर्म का बन्ध करता

पुण्य का उपार्जन करना बड़ा कठिन कार्य है। धन उपार्जन करने मे कठिनाई होती है, किन्तु दिवाला निकाल देने मे कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता ! इसी प्रकार पाप का उपार्जन साधारण सी बात है।

दिन उगते ही अनेक लोग भैरो-भवानी के पास जाते हैं और उनके आगे माथा टेक कर प्रार्थना करते हैं कि मुझे लखपति या करोड़पति बना दो किन्तु एक लखपति तब बनता है जब सौ आदमियो के पास से एक-एक हजार रुपया निकलता है। इस प्रकार सौ आदमियो की पूंजी छिनेगी तब वह लखपति बनेगा। इसी तरह सौ लखपतियो के बिगड़ने पर एक करोड़पति बनता है।

अरे धनिक ! तू अकड़ता है कि मैंने सोने के बटन बनवाये हैं, परन्तु यह तो विचार कर कि यह बटन किस प्रकार तेरे पास आये हैं ? तस्कर व्यापार किया, बेईमानी की, भोले लोगो को ठगा और झूठ-कपट का सेवन किया, तब यह सोने के बटन बने है !

एक आदमी घमण्ड से सिर ऊँचा करके चलता है और मूछों पर ताव देकर कहता है—मैंने बेटी के विवाह मे पचास हजार खर्च किये हैं। मगर विचारवान् व्यक्ति सोचता है—इसके पास इतना धन आया कैसे ? क्या इसने मेहनत-मजदूरी करके धन कमाया है ? क्या किसान की तरह चोटी से एड़ी तक पसीना बहाया है ? मेहनत करने वाले तो इतना धन नही कमा पाते। फिर इसने यह धन कैसे कमा लिया ? निस्सन्देह इसने गरीबो का शोषण किया है, कइयो के साथ ठगाई की है, कितने ही के बटके भरे हैं, तब यह एक विवाह मे पचास हजार लगा सका है !

भाइयो ! वीतराग देव का मार्ग बड़ा विशाल है। वह न अकेले राजाओ और रईसो के लिए है और न अनगार भिक्षुओ के लिए ही। वह तो प्राणी मात्र के कल्याण के लिए है। कोई किसी भी परिस्थिति मे क्यो न हो, चाहे तो पुण्य का उपार्जन कर सकता है।

पुण्य का प्रभाव अचिन्त्य है। पुण्यशाली का सर्वत्र आदर-सत्कार होता है। पुण्यात्मा जहा जाता है हजारो उसकी अगवानी के लिए खड़े रहते हैं। 'आइए, पधारिए' कहलवाने वाला पुण्य ही है। जिसके पुण्य का उदय नही होता, कोई उसके सामने आँख उठाकर देखता भी नही है।

हे प्राणी ! चोरी और डकेती से धन नही होता है। कदाचित् अनीति और बेईमानी से धन हो भी गया तो ज्यादा दिन नही ठहरता है। असली धन तो पुण्य के उदय से ही होगा। भूखे को भोजन, प्यासे को पानी और थके मादे को ठहरने के लिए मकान देने से पुण्य होता है। ठड से बचने के लिए वस्त्र देना, सोने के लिए बिछौना देना भी पुण्य का कारण है। मन, वचन और काय के विषय मे ऊपर कहा ही जा चुका है।

पुण्योपार्जन के इस प्रकार अनेक मार्ग होने पर भी लोग पुण्य का आजन करने की ओर लक्ष्य नही देते और बडी प्रीति एव रुचि के साथ पाप उपार्जन करते हैं। किसी की सगाई हो रही हो तो वर पक्ष को लिख देगा कि कन्या को मृगी आती है ! कन्यापक्ष को लिख देगा कि लड़का पुस्त्वहीन हैं ! किसी गरीब की नौकरी लग रही होगी तो कह देगा कि यह तो चोट्टा है !

भाइयो ! किसी की रोजी पर लात मारना अच्छा नही है। यह बडा घोर और अधम कृत्य है। आजीविका ग्यारहवा प्राण गिना जाता है, क्योकि आजीविका के अभाव मे दसो प्राण खतरे मे पड़ जाते है !

है। याद रक्खो, पुण्य कमाना कठिन है, पर पाप का उपार्जन करने मे कुछ भी देर नही लगती। जोडने मे देरी लगती है तोडने मे क्या देर लगती है ? किसी ने ठीक कहा है —

भवन बनावत दिन लगें ढाहत लगे न वार।
भला करत लागे विलम्ब विलम्ब न बुरे विचार ॥

मकान बनाने मे कितने दिन लगते है ? मगर बने मकान को ढा देना तो चुटकियो का खेल है।

श्री ठाणागसूत्र मे पुण्य नौ प्रकार के बतलाये हैं—(१) अन्न-पुण्य (२) पानपुण्य (३) लयनपुण्य (४) शयनपुण्य (५) वस्त्रपुण्य (६) मन पुण्य (७) वचनपुण्य (८) कायपुण्य और (९) नमस्कार पुण्य।

अभिप्राय यह है कि अन्न आदि का दान करने से पुण्य होता है, मन वचन और काय की शुभ प्रवृत्ति से पुण्य होता है और नमस्करणीय को नमस्कार करने से भी पुण्य होता है। इस प्रकार पुण्योपार्जन करने के अनेक तरीके है। आपके पास दान देने को नही है तो मन, वचन और काय तो है ही। इनका शुभ व्यापार कर सकते हो। मन को प्रशस्त विचारो के सौरभ से समन्वित कर सकते हो। 'वचने का दरिद्रता ?' अर्थात् अच्छे वचन कहने मे क्या कृपणता ? और कुछ न बने तो दूसरो को मीठे वचन ही कहो। विषमय, कटुक और कठोर वचन त्यागकर स्नेह के रस से परिपूर्ण, मधुर, प्रिय और सत्य बोलोगे तो तुम्हारा क्या खर्च हो जाएगा ? बिना कुछ खर्च किये ही पुण्योपार्जन कर लोगे। इसी प्रकार शरीर से किसी गडहे मे गिरने वाले को बचा लोगे तो क्या हानि हो जाएगी ?

आलसी हो रहे हैं। मेरे ऐसा कहने पर चार वर्ष से रोटिया देना बन्द हो गया है। प्रतिदिन दो रोटिया निकलती जाती तो कोई बोझ नही था पता ही नही चलता था कि कुछ कमी होगई। अब यदि चाहू कि चार वर्ष की दो-दो रोटियो के हिसाब से रुपये करके इकट्ठे दे दू तो नही दे सकता। मैंने पुण्य को लात मार दी और लाभ कुछ भी नही हुआ। पुण्य का परित्याग करने से लाभ हो भी क्या सकता है सिवाय हानि के। मगर उस समय यह बात मेरी समझ मे नही आई थी। नई रोशनी का समझता था मैं अपने आपको। आज पश्चात्ताप हो रहा है। सोचता हू वह रोशनी नही अधकार था।

इस प्रकार न जाने कितने लोग आज की स्वार्थपूर्ण विचार धारा मे बह रहे है और नाना प्रकार के कुतर्क करके अपना भविष्य अमगलमय बना रहे है। आज दया और करुणा भाव की कमी हो रही है और हमारे यहाँ के अनेक धर्मोपदेशक भी करुणा करके किसी भूखे को रोटिया देने मे एकात पाप की बात कहने लगे है। इस प्रकार भोले भाई चक्कर मे पड जाते हैं।

याद रक्खो भाई, परोपकार करने की भावना पुण्य के उदय से होती हैं। अधिकाश लोग दान नही देते, इसका प्रधान कारण यही है कि उनके पुण्य का उदय नही है। हजारो और लाखो का दिवाला निकलते देर नही लगती, मगर चार पैसे का दान देवे मे मनुष्य दस बार सोचता है। यह सब पुण्य की न्यूनता का ही परिणाम है। अरे, जो सम्पत्ति आज तुझे मिली हैं, वह एक न एक दिन तो चली जाने को ही है। सदा तेरे पास नही रहेगी। फिर उसे दान देकर भविष्य मे पाने का अधिकारी क्यो नही बनता? परलोक मे पूँजी को साथ ले जाने का एक ही तरीका और वह यही कि तू उदारभाव से प्रेमपूर्वक दान दिये जा!

गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य संचयात् ।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां, पयोधीनामधः स्थितिः ॥

अर्थात्–दान देने से ही मनुष्य को गौरव प्राप्त होता है धन का सचय करने से ही कोई बडा नही बन सकता। इस सत्य पर विश्वास न आता हो और शका उत्पन्न होती हो तो प्रत्यक्ष देख लो। मेघ जलदाता है और जलधि (समुद्र) जल का सग्रह करता है। दोनो मे कौन ऊचा है ? मेघ को ऊची स्थिति प्राप्त है। इसी प्रकार दान देने वाले को उच्चता प्राप्त होती है।

सचमुच दान का बडा महत्त्व है। दान देने से परलोक मे सुख मिलता है और इस लोक में भी आनन्द की प्राप्ति होती है। कहा भी है—

दानेन भूतानि वशीभवन्ति,
दानेन वैराण्यपि यांति नाशम् ।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानैः—
दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति ॥

अर्थात्–दान से सभी भूत वशीभूत हो जाते हैं, दान देने से पुराना वैर भी मिट जाता है। दान के प्रभाव से पराये भी अपने बन जाते हैं। यहां तक कि दान समस्त दुःखो को दूर कर देता है।

तीर्थंकर भगवान् जब सयम पालन करने के लिए उद्यत होते हैं तो दीक्षा लेने से पहले एक वर्ष तक दान दिया करते है अन्यान्य धर्मों की प्रवृत्ति वे बाद मे, केवली होने के पश्चात् करते है, पर दानधर्म की स्थापना तो सर्वप्रथम कर देते है। यही कारण है कि प्रकार के धर्म मे दानधर्म को प्रथम स्थान दिया गया है।

एक पुण्यात्मा ने एक मुश्त ग्यारह लाख का दान दिया। दूसरे वर्ष उसे सवा करोड का मुनाफा हो गया !

भाई, दिया दान जाता कहा है ? एक किसान घर आकर रोने लगा। उसके पडोसी ने रोने का कारण पूछा तो वह कहने लगा– मैं एक गाठ गेहू खेत में फेंक आया। पीस कर खाता तो क्या ही अच्छा होता !

तब पडौसी ने कहा—अरे मूर्ख, तू खेत मे डाल आया तो क्या किसी पर ऐहसान कर आया ? क्या फालतू गवा आया ? भले आदमी, आज डाल आया है तो फसल पकने पर एक-एक के बदले पचास-पचास दाने पाएगा !

भाइयो ! आज जो नरम-नरम फुलके खा रहे हो यह कहाँ से आते यदि खेत मे बीज न डाला होता ? जो पहले बोया उसे अभी खा रहे हो और जो अब बोओगे उसे आगे खाओगे ! जो बोएगा ही नही, वह क्या पाएगा ? अतएव यदि दान न देते होओ तो अब देना आरम्भ करो और यदि देते हो तो देते समय ऐहसान न जतलाओ। यह मत सोचो कि मैं दान देकर दानपात्र पर ऐहसान कर रहा हू। बल्कि यह विचार करो कि यह दान को अङ्गीकार करने वाला मुझे पुण्य का अवसर दे रहा है। तुम स्वय उसके प्रति कृतज्ञ बनो। ऐसी भावना करने से तुम्हारे दान का फल कई गुणा प्रशस्त बन जाएगा। लेकिन दान के फल की कामना भी मत करो। जो भी क्रिया की जाती है,उसका फल अवश्य होता ही है। फलकी लिप्सा होने पर फल तुच्छ हो जाता है। निष्काम भाव से क्रिया की जाय तो महान् फल प्राप्त होता है।

भाइयो ! दान देना महान पुण्य का कारण है। दा
उच्च स्थिति की प्राप्ति होती हैं। एक कवि का कथन

फिर धनवान बनता है और मनोहर एव कमनीय भोगो का स्वामी बनता है। इस तरह दान के प्रभाव से दानी को पुन: पुन: सुख की प्राप्ति होती रहती है।

अभिप्राय यह है कि आपके सामने दो वस्तु है— एक पुण्य और दूसरी पाप। आपको दोनो मे से किसी भी एक को ग्रहण करने का अधिकार है। चाहो तो पुण्य ले सकते हो, चाहो तो पाप ले सकते हो। जो इच्छा हो ग्रहण कर लो। यदि अधा,निर्धन और दुखी होना है तो पाप से प्रेम करो। धन सम्पन्न बनना है, सुखी रहने की इच्छा है, स्वस्थ और सन्तुष्ट रहना चाहते हो तो पुण्य को ग्रहण कर लो।

भाइयो! पुण्य और पाप के फल को समझने के लिए किसी कल्पना की आवश्यकता नही है। किसी के वचन पर विश्वास करने की भी आवश्यकता नही है। पुण्य-पाप के फल तो प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहे हैं। ससार मे अधिकांश प्राणी दुखी है। वे अपनी इच्छाओ की तृप्ति नही कर सकते। दिन रात कठोर श्रम करके भी अपने परिवार की अनिवार्य आवश्यकताए पूर्ण नही कर पाते। कोई रुग्ण है कोई दरिद्र है, कोई घृणित समझे जाते है, कोई अगोपांग से विकल हैं और कोई कोई अपमानित एव तिरस्कृत होते हैं। एकांत मे बैठकर विचार करो कि ऐसा क्यो होता है?

इसके विपरीत ऐसे भी लोग है जो ससार के उत्तम से उत्तम सुख भोग रहे हैं। उन्हे कभी किसी वस्तु के अभाव का अनुभव नही करना पडता। इच्छा करते ही उसकी पूर्ति हो जाती है। स्वस्थ है, नीरोगता का आनन्द भोगते है। सर्वत्र आदर पाते हैं। तु[illegible] मे रहते हुए भी ऐसा सुख भोगते हैं, जैसे देवगण मे सुख भोगते हैं इस तथ्य पर भी आप विचार करो। चित्त

भाइयो ! अभिप्राय यह है कि आपको जो भी सामग्री प्राप्त हुई है, चाहे वह धन वैभव हो, चाहे मन वचन और काया हो, चाहे जीवनोपयोगी अन्य वस्तुएं हो, आपका कर्तव्य है कि आप पुण्य के लिए उनका सद्व्यय करें, पुण्योदय से मिली सामग्री को यदि नूतन पुण्य के उपार्जन करने मे व्यय न किया तो वह उस वस्तु का सद्व्यय नही कहलाएगा। अतएव अपने कल्याण की दृष्टि से आपका यही कर्तव्य है कि आप दीन-दुखी जीवो की सहायता करे, उनके अभावो की यथायोग्य पूर्ति करे उनके दु:ख को दूर करे, उन्हे सुख-साता पहुचाने का प्रयत्न करे। जो भूख से तडफ रहा है उसे भोजन दे दोगे तो निश्चय समझो कि इसमे आपकी कुछ भी हानि नही होगी, बल्कि लाभ ही लाभ होगा। कदाचित दान देनें से आप को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना करना पडता हो तो भी मैं यही कहूगा कि आप उस कठिनाई को सहन करके भी दान दीजिए। दान के प्रभाव से आपकी कठिनाइया उसी प्रकार विलीन हो जाएगी जिस प्रकार प्रबल आँधी के वेग से मेघ की घटाए छिन्न भिन्न हो जाती है। याद रखिए, दान महान् फल-दायी होता है। कहा है—

सुपात्रदानाच्च भवेद् धनाढ्यो,
धनप्रभावेण करोति पुण्यम्।
पुण्यप्रभावात् सुरलोकवासी,
पुनर्धनाढ्यः पुनरेव भोगी ॥

अर्थात्—सत्पात्र को दान देने से मनुष्य धन सम्पन्न बनता है, धन के प्रभाव से पुण्यार्जन करता है उस पुण्य के प्रभाव से देवलोक की प्राप्ति होती है। देवलोकवासी जब यहा आता है तो

फिर धनवान बनता है और मनोहर एव कमनीय भोगो का स्वामी बनता है। इस तरह दान के प्रभाव से दानी को पुनः पुनः सुख की प्राप्ति होती रहती है।

अभिप्राय यह है कि आपके सामने दो वस्तु हैं— एक पुण्य और दूसरी पाप। आपको दोनों में से किसी भी एक को ग्रहण करने का अधिकार है। चाहो तो पुण्य ले सकते हो, चाहो तो पाप ले सकते हो। जो इच्छा हो ग्रहण कर लो। यदि अधा, निर्धन और दुखी होना है तो पाप से प्रेम करो। धन सम्पन्न बनना है, सुखी रहने की इच्छा है, स्वस्थ और सन्तुष्ट रहना चाहते हो तो पुण्य को ग्रहण कर लो।

भाइयो! पुण्य और पाप के फल को समझने के लिए किसी कल्पना की आवश्यकता नही है। किसी के वचन पर विश्वास करने की भी आवश्यकता नही है। पुण्य-पाप के फल तो प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहे हैं। ससार मे अधिकाँश प्राणी दुखी हैं। वे अपनी इच्छाओ की तृप्ति नही कर सकते। दिन रात कठोर श्रम करके भी अपने परिवार की अनिवार्य आवश्यकताए पूर्ण नही कर पाते। कोई रुग्ण है कोई दरिद्र है, कोई घृणित समझे जाते है, कोई अगोपाँग से विकल हैं और कोई कोई अपमानित एव तिरस्कृत होते हैं। एकात मे बैठकर विचार करो कि ऐसा क्यो होता है?

इसके विपरीत ऐसे भी लोग है जो ससार के उत्तम से उत्तम सुख भोग रहे है। उन्हे कभी किसी वस्तु के अभाव का अनुभव नही करना पडता। इच्छा करते ही उसकी पूर्ति हो जाती है। स्वस्थ है, नीरोगता का आनन्द भोगते है। सर्वत्र आदर पाते हैं। मनुष्य लोक मे रहते हुए भी ऐसा सुख भोगते हैं, जैसे देवगण मे सुख भोगते हैं इस तथ्य पर भी आप विचार करो। चित्र

के दोनों पहलू आपकी आंखों के आगे मौजूद हैं। आप जिसे चाहे, ग्रहण कर। देखिए :--

पुण्य पाप के यह फल हैं, दुनियां जो पा रही है।
कहने की क्या जरूरत, नजरों में आ रही है ।।टेक।।
एक भूप की है रानी, सजती है तन पै भूषण।
एक महतरानी बन कर, झाड़ू लगा रही है ।।१।।
एक सेठ की सेठानी, करती है मन की मानी।
पनिहारी एक बन कर, पानी पिला रही है ।।२।।
एक के मकां है सुन्दर, खाने को माल उम्दा।
एक के न आशयाना, क्षुधा सता रही है ।।३।।
एक बैठता है हाथी, एक के न कोई साथी।
एक नामवर बना है, एक की कदर नहीं है ।।४।।
मुफलिस के घर में जनमा, पहुंचा है तवंगर के।
कहे चौथमल ये दाना, किस्मत बना रही है ।।५।।

भाइयो! पुण्य और पाप के फल तो पद-पद पर प्रतिदिन प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहे हैं। उन्हे देखने के लिये किसी शास्त्र को टटोलने की आवश्यकता नही है। जगत् मे जो विषमता दिखलाई दे रही है, वही तो पुण्य और पाप की कहानी कह रही है! एक रानी है दूसरी महतरानी है। एक सेठानी है दूसरी पनिहारिन है। एक गगनस्पर्शी विशाल राजप्रासाद मे सुखपूर्वक निवास करना है दूसरा किसी वृक्ष के नीचे सर्दी-गर्मी काट रहा है! कोई षट्रस भोजन

जीमता है, किसी को जूठ भी मयस्सर नही हो रही है। एक हाथी के हौदे पर सवार होकर निकलता है, किसी को कोई साथी भी नही मिलता। कोई दरिद्र के घर मे जन्म लेकर के भी लखपति की गोद मे जाकर सपत्तिशाली बन जाता है। यह सब खेल आखिर किस आधार पर चल रहे है? इसका मुख्य कारण पुण्य और पाप ही है। यह समझकर आपको निर्णय करना है कि आप किसे ग्रहण करना चाहते हैं? याद रखना है कि पाप करके पुण्य के फल की आकांक्षा करोगे तो वह नही मिलेगा। बबूल बोकर आम के फल की आशा करना व्यर्थ ही नही, मूर्खता भी है। पुण्य का फल पुण्य करने से ही प्राप्त होगा।

भाइयो! एक समय की बात है कि त्रिशलातनय, सिद्धार्थकुल शृंगार भगवान महावीर स्वामी केवलज्ञानी होकर जगत् के जीवो का कल्याण करते हुए ग्राम, नगर, पुर, पट्टन आदि मे विचरते विचरते बनारस पधारे।

आये आये हैं वीर जिनेश्वर भव्य जीवों के भाग ।।टेक।।
शहर बनारस गंगा के तट, समोसरे भगवान्।
सुरनर मिलकर सेवा करते समय अपूर्व जान ।।१।।

भव्य जीवो के असीम पुण्योदय से गंगा तट पर बसे हुए बनारस नगर मे प्रभु के पावन पादपकज पडे। भगवान पधार कर नगर के बाहर एक बगीचे मे ठहर गये। स्वर्ग के देवता और मनुष्य भगवान् की सेवा मे उपस्थित हुए।

भगवान् समस्त जीवो को समान भाव से आत्मकल्याण का मार्ग बतलाते है। आप जानते हैं कि पानी तो सब जगह एक सरीखा बरसता है, परन्तु उपजाऊ भूमि मे अंकुर फूट पडते हैं और

के दोनो पहलू आपकी आंखो के आगे मोजूद हैं। आप जिसे चाहे, ग्रहण कर। देखिए :—

पुण्य पाप के यह फल हैं, दुनियां जो पा रही है।
कहने की क्या जरूरत, नजरों में आ रही है ॥टेक॥
एक भूप की है रानी, सजती है तन पै भूषण।
एक महतरानी बन कर, झाड़ू लगा रही है ॥१॥
एक सेठ की सेठानी, करती है मन की मानी।
पनिहारी एक बन कर, पानी पिला रही है ॥२॥
एक के मकां है सुन्दर, खाने को माल उम्दा।
एक के न आशयाना, क्षुधा सता रही है ॥३॥
एक बैठता है हाथी, एक के न कोई साथी।
एक नामवर बना है, एक की कदर नहीं है ॥४॥
मुफलिस के घर में जनमा, पहुंचा है तवंगर के।
कहे चौथमल ये बाना, किस्मत बना रही है ॥५॥

भाइयो! पुण्य और पाप के फल तो पद-पद पर प्रतिदिन प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहे हैं। उन्हे देखने के लिये किसी शास्त्र को टटोलने की आवश्यकता नही है। जगत् मे जो विषमता दिखलाई दे रही है, वही तो पुण्य और पाप की कहानी कह रही है। एक रानी है दूसरी महतरानी है। एक सेठानी है दूसरी पनिहारिन है। एक गगनस्पर्शी विशाल राजप्रासाद मे सुखपूर्वक निवास करता है दूसरा किसी वृक्ष के नीचे सर्दी-गर्मी काट रहा है! कोई षट्रस भोजन

हे भव्य जीवों ? यह विशाल विश्व मूलभूत दो तत्वो का विस्तार है-एक है जीव और दूसरा जड । जीव को आत्मा, हस या ब्रह्म भी कहते है और जड पदार्थो को अनात्मा कहते है। आत्मा मे वर्ण, गध, रस और स्पर्श आदि कोई इन्द्रियगम्य धर्म नही पाये जाते हैं। आत्मा मे काला, पीला, नीला, लाल या सफेद रग नही है आत्मा मे रग होता तो उसे आँख से देख सकते थे, परन्तु रँग न होने के कारण वह नेत्र का विषय नही है। आत्मा मे खुशबू या बदबू भी नही है। गंध होती तो सू घ कर उसे जान लेते, पर गध न होने से वह घ्राणेन्द्रिय का भी विषय नही है। आत्मा मे रस भी नही है। कटुक, मधुर, आम्ल, तिक्त आदि कोई रस होता तो उसे चख कर पकड लेते, परन्तु रस न होने के कारण वह रसेन्द्रिय के द्वारा भी नही जानी जा सकती। आत्मा गर्म ठडी, हल्की, भारी, रूखी या चिकनी भी नही है। इस कारण उसका स्पर्श भी नही हो सकता। आत्मा अरूपी, अखण्ड और अविनाशी है वह मारने से मरती नही और काटने से कटती नहीं। गीता मे भी कहा है :—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न, शोषयति मारुतः ।।

अर्थात्–यह आत्मा शस्त्रो से काटने का प्रयास करने पर कट नहीं सकती, आग मे जलाने से जलती नही, पानी मे गलती नही और हवा से सूखती नही। शस्त्र, अग्नि, पानी और वायु, ह सब स्थूल पदार्थ हैं। आत्मा तक इनकी पहुँच नही हो सकती।

कुछ लोग सोचते है कि जैसे आकाश एक है और वह सर्वव्यापी है; इसी प्रकार आत्मा भी एक है। परन्तु बात ऐसी नहीं है।

ऊसर भूमि ज्यो की त्यो रह जाती है। इसी प्रकार भगवान् का उपदेश सबके लिए समान होने पर भी जिनके पुण्य का उदय होता है, उन पर उपदेश का असर पडता है, जिनके पाप का उदय है वे ज्यो के त्यो रह जाते हैं। अब—

सपरिवार से अलख भूमिपति, भेटे प्रभु को आय।
चन्द्र चकोरवत् सब जन सुनते, जिनवाणी सुखदाय ॥२॥

जब भगवान् बनारस के बाग मे पधारे तो उनके संघ मे १४ हजार साधु और ३६ हजार साध्वियाँ थी। साधुओ मे मुख्य गौतम स्वामी थे और साध्वियो मे महासती चन्दनबाला। गौतम स्वामी चारो वेदो के ज्ञाता ब्राह्मण थे और चन्दनबाला चम्पानगरी की राजकुमारी थी। उन्होने अविवाहित रहकर साध्वी-दीक्षा अंगीकार कर ली थी उस समय ओसवाल आदि-आदि उपजातियो की उत्पत्ति नही हुई थी, सिर्फ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चार वर्ण ही थे। उपजातियो का निर्माण तो बाद में हुआ है।

हाँ, तो हजारों आदमी भगवान् के दर्शन के लिये और उपदेश-श्रवण के लिये उपस्थित हुए। उस समय बनारस का राजा अलख था। वह भी अपनी रानियो के साथ आया और त्रिविधिपूर्वक भगवान् को वन्दना करके यथास्थान बैठ गया।

सब का ध्यान भगवान की ओर लगा हुआ था। सब प्रभु की कल्याणी वाणी को श्रवण करने के लिये उत्कँठित हो रहे थे। उसी समय प्रभु ने फर्माया :—

वर्ण गंध स्पर्श वर्जित, आतम द्रव्य अनन्त।
अलख निरंजन नित्य अबाधित हंस ब्रह्म अचिंत ॥३॥

होती है, वह स्वसवेदन प्रत्यक्ष है और इस प्रत्यक्ष से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त अनुमान और आगम प्रमाण भी आत्मा के अस्तित्व के समर्थक हैं।

आत्मा का विषय बहुत व्यापक है। विद्वानो ने इस विषय पर बहुत चर्चाएं की है। बडे बडे ग्रन्थ लिखे है। आत्मा के सबध मे प्राचीन ऋषियो-महर्षियो ने गहरी छानबीन की है। उन सब बातो को बतलाने का समय नही है। तथापि यहा सक्षेप मे जो बाते कही है, उनसे आत्मा को पहचानने और समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

मूल बात यह है कि शरीर अलग तत्त्व है और आत्मा अलग तत्व है। दोनो को पृथक-पृथक रूप मे समझ लेना ही ज्ञान का फल है। इसी को भेद विज्ञान कहते हैं। आत्मा-अनात्मा का भेद समझ मे न आया तो ज्ञान होना और न होना समान है।

भाइयो! तुम यहा व्याख्यान सुनने आये हो तो तुम्हारी आत्मा ज्ञान सुन रही है, तुम्हारा शरीर नही सुन रहा है। शरीर की खुराक है रोटी, दाल, चावल, हलुवा, रबडी, दूध, दही, खीर आदि-आदि पदार्थ, और उन्हे खाने से शरीर मोटा ताजा होता है। न खाया जाय तो हाथ मे मक्खिया भी नही उड सकती। तलवार कमर मे लटकाकर कहते हो कि हम शूरवीर है, किन्तु खावे को न मिले तो कुछ भी न बने!

भूखे भजन न होय गुपाला;
यह लो कंठी यह लो माला।

कितनी ही तपस्या कर लो, आखिर चूल्हे का मुख देखना ही

आत्माएं एक सरीखी तो हैं, पर एक नही हैं। अनन्तानन्त आत्माएँ एक दूसरे से सर्वथा पृथक हैं। आत्मा प्रत्येक शरीर मे अलग-अलग है। अलग-अलग न होती तो उनके सुख-दुःख भी अलग-अलग न होते। हम देखते हैं, कोई ज्ञानी है, कोई अज्ञानी है, कोई सुखी है कोई दुखी है, कोई अस्वस्थ है। आत्मा एक ही होती तो यह अनेकता कैसे प्रतीत होती ? इसके अतिरिक्त आत्मा को एक माना तो एक मनुष्य के मरने पर सब को मरना चाहिए और एक के जन्म लेने पर सबको जन्म लेना चाहिए। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनियो का भेद भी नही होना चाहिए।

कहा जा सकता है कि आत्मा कौन है ? कैसे समझा जाय कि आत्मा का अस्तित्व है ? इन्द्रियो से उसका पता नही चलता, फिर हम आत्मा को पहिचाने तो कैसे पहिचानें? इसका उत्तर यह है कि यह तो चल-फिर रहा है, वही तो आत्मा है। अगर आपके शरीर मे आत्मा न होती तो आप व्याख्यान सुनने आ ही नही सकते थे। जिसे आप मुर्दा कहते हैं, उसमे और आपमे क्या अन्तर है ? मुर्दा देखता नही, सुनता नही, सूंघता नही, चलता नही और किसी वस्तु को छूता नही है। अर्थात् मुर्दे की इन्द्रियां काम नही करती। आपकी इन्द्रियां यह सब काम करती हैं। इस भिन्नता का कारण क्या है ? बस, यही समझ लीजिए कि इन्द्रियो से जो काम लेने वाला है, वही आत्मा है। आत्मा की सत्ता होने पर ही इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय को ग्रहण करती हैं। आत्मा के अभाव मे शरीर निश्चेष्ट पडा रहता है। इसी से आत्मा की सत्ता प्रतीत होती है।

यह सत्य है कि आत्मा इन्द्रियो के द्वारा नही जानी जा सकती, किन्तु हमे भूल नही जाना चाहिए कि हमारे पास इन्द्रिय-जन्य ज्ञान के अतिरिक्त और भी ज्ञान हैं। ऐसे ज्ञानो मे एक स्व-सवेदन प्रत्यक्ष भी है। हमे 'अहमस्मि' अर्थात् मैं हू, ऐसी जो प्रतीति

शुभाशुभ कर्मों के योग से जन्म मरण ये करती।
आवागमन से बचना चाहो पापों से करो निवृती ॥५॥

भगवान् फर्माते हैं कि दुनिया मे दो प्रकार के कर्म हैं शुभ और अशुभ। पुण्य का योग हो तो अच्छा शरीर मिलता है और पाप का योग हो तो खराब शरीर मिलता है। पुण्य के द्वारा जो कर्म बँधते है वे शुभ कर्म कहलाते है और पाप से बँधने वाले कर्म अशुभ कर्म कहे जाते है। अशुभ कर्म से 'पुनरपि जनन, पुनरपि मरण' होता है अर्थात् जन्म मरण का अक्षय प्रवाह चालू रहता है।

कई लोग कहते हैं-अगर आत्मा का विनाश नही होता और वह केवल पुरातन शरीर को त्याग कर नूतन तन को ही धारण करती है तो उसे पूर्वभव का ज्ञान क्यो नही रहता? इस सबध मे, सक्षेप मे, यही कहा जा सकता है कि पूर्वभव का ज्ञान एकान्ततः नही रहता है, ऐसा नही कहा जा सकता। किसी को ज्ञान हो भी जाता है और किसी को नही होता। जिस जीव के आवरण अगर हल्के होते हैं, उसे पूर्वजन्म का स्मरण हो जाता है। जोधपुर में एक मुस्लिम भाई मेरे पास आये और उन्होने बतलाया कि मेरी लड़की तीन वर्ष की थी। वह बाते करने लगी। उसने बतलाया कि मैं सालावास से आकर यहाँ जन्मी हू। अब वह लडकी बडी हो गई है और मैने जोधपुर मे ही उसकी शादी कर दी है।

इस प्रकार की घटनाएँ और भी सुनी जाती हैं, जिनसे विदित होता है कि जिनकी स्मृति का पर्दा हट जाता है, उन्हे पूर्वभव का ण हो जाता है। कोई-कोई जीव पहले भव का बदला लेने के ो जन्म लिया करते हैं। एक ऐसी घटना भी लीजिए।—

पड़ता है । तो यह शरीर की खुराक है । आत्मा की खुराक दूसरी है । धर्मकथा श्रवण करना, तपस्या करना आदि आत्मा की खुराक है । जो शरीर को खुराक देकर मोटा ताजा बना लेता है, लेकिन आत्मा को खुराक नही देता, वह जब मरेगा तो उसे यमदूत पकड लेगे । अगर दान, शील, तप और भावना की खुराक देकर आत्मा बलिष्ठ बना लोगे तो यमदूत कुछ भी नही कर सकेंगे । कई लोग शरीर को तो खूब मोटा-ताजा और तगडा बना लेते हैं किन्तु उपवास एक भी नही कर सकते । उन्हे भविष्य मे ऐसा शरीर मिलना मुश्किल हो जायगा । अतएव आत्मा की ओर लक्ष्य दो । उसे पहचानो और उसके कल्याण का उपाय करो ।

भगवान फर्माते हैं—आत्मा अखण्ड और अविनाशी है । न उसका जन्म होता है, न मरण होता है ।

प्रश्न किया जा सकता है कि यदि आत्मा का जन्म मरण नही होता तो यह सब रचना क्या हो रही है ? फिर कौन जन्मता और मरता है ।

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे पुराना कपडा उतार कर नया पहन लिया जाता है, उसी प्रकार यह आत्मा एक शरीर को छोड कर दूसरा शरीर धारण कर लेता है । कहा है.—

जीये जीये और जियेगा, सुन लो सारे लोग ।
दर्शन ज्ञान चारित्र तपस्या लक्षण है उपयोग ॥४॥

यह आत्मा मरी नहीं, मरती नही और मरेगी नही । दर्शन ज्ञान, चरित्र इसके गुण है । उपयोग अर्थात चेतना इसका लक्षण है । इससे आत्मा की पहचान होती है । आगे कहा है —

ब्राह्मण को मरे दो वर्ष हो चुके। तब ब्राह्मणी ने सोचा- अब कोई लडका गोद ले लेना चाहिए और एक जीमनवार भी कर देना चाहिये। इस विचार के अनुसार ब्राह्मणी ने भोज का आयोजन किया। लड्डू, जलेबी और पकवान बनाने के लिये ग्यारसा हलवाई बुलवाया गया!

उस समय हम सर्राफा बाजार मे व्याख्यान देते थे। जिस दिन हम लश्कर से विहार करने को थे उस दिन वह हलवाई हमारे पास आया। उसने कहा- महाराज, मैं तो आज प्रथमबार ही आपका दर्शन करने आया हू। कृपा करके आज विहार मत कीजिये।

इसके बाद कुछ वार्तालाप हुआ। तब उसने यह किस्सा सुनाया। उसने बतलाया- महाराज! जिस समय मैंने भट्टी खोदकर अग्नि प्रज्वलित की तो एक काला सर्प आया और लकडी के ऊपर बैठकर फुफकारने लगा।

मैंने बीच मे टोक कर पूछा- तब तुमने साप का क्या किया?

हलवाई ने बतलाया- मैंने बडी मुश्किल से साप को पकडवाया और जँगल मे छुडवा दिया। रात्रि होते ही सर्प फिर न जाने कहा से और कैसे आ धमका' इस बार उसने ब्राह्मणी को काट लिया! ब्राह्मणी भयभीत होकर सहसा चिल्ला उठी। सब कुटुम्बी इकट्ठे हो गये। मत्र जानने वाले को बुलवाया। मान्त्रिक ने मन्त्र पढकर पानी का छीटा डाला। तब वह साप उसके शरीर मे आ गया। उससे पूछा गया—तू ने ब्राह्मणी को क्यो काटा?

वह बोला- मैंने जान बूझ कर ऐसा किया है। मन्त्र-तन्त्र छो़डो। यह तो सवेरे ही अर्थी पर आरूढ होकर श्मशानयात्रा

लश्कर मे एक लखपति ब्राह्मण था। वह बीमार हो गया। उसने अपनी स्त्री से कहा-मेरा मृत्युसमय सन्निकट आ गया है। मैं दस हजार रुपये परोपकार मे लगाना चाहता हू। तू आसपास के पाँच प्रतिष्ठित आदमियो को बुला ला। मैंने अपनी जिन्दगी मे कुछ भी पुण्य नही किया है। अब आखरी समय मे तो कुछ कर जाऊ!

स्त्री ने सोचा-मैं पाच आदमियो को बुला लाऊँगी तो दान की बात पक्की हो जाएगी और दस हजार रुपये देने ही पड़ेगे! यह सोच कर स्त्री ने बात को टाल देने के उद्देश्य से कहा घबराते क्यो हो? तबियत अच्छी हो जायगी। लो, यह दवा ले लो मैं अभी जाकर पाँच पचो को बुला लाती हू।

यह कह कर स्त्री ने दवा के बहाने अपने पति को विष पिला दिया। बीमार ब्राह्मण विष के प्रभाव से थोडी ही देर मे नीलाम बोल गया!

प्रातःकाल उसका दाहकर्म किया गया। उसके कोई सन्तान नही थी! ब्राह्मणी की निष्ठुरता पर विचार कीजिए! कैसी जबर्दस्त औरत थी यह! ब्राह्मण ने लाखो की पूंजी उसके लिए छोडी थी, परन्तु उसमे से दस हजार का भी दान उसने नही करने दिया! क्या अपने पति की हत्या करने वाली वह स्त्री अमर रहने की सोचती थी? किन्तु—

जोड़ जोड़ मर जायगा।
माल जमाई खाएगा।

अरे! माल तो जमाई खायगा या दूसरा ही घर में आकर मालिक बन बैठेगा लेकिन अपने हाथ से भिक्षुक को एक कम्बल नही देगा!

हजार रुपया खर्च करके पढाया-लिखाया। जब लौट कर आया तो तीन दिन ज्वर चढा और चौथे दिन नीलाम बोल गया।

एक बार हम एक जगह पहुचे। वहा शादी थी और उज्जेन से बरात आई थी। विवाह हो गया और लडकी उज्जेन चली गई। विहार करते करते हम उज्जेन पहुँचे।

एक भाई ने अपनी लडकी से कहा-मर राड !

लड़की बोली मैं अभी नही मरूगी। तीन हजार लेकर मरूगी।

भाइयो ! यह सब लेनदार हैं। माथे मागते है। वे आते हैं और अपना कर्ज लेकर चले जाते हैं। तुम भी कुछ न कुछ उधार दोगे तो तुम भी ले सकोगे। परोपकार मे लगाना उधार देना है और पाप करना उधार लेना है। याद रखो खेत मे मुट्ठी भर अनाज डालोगे तो गाडी भरकर लाओगे।

बाप दान और परोपकार करेगा तो बाप को मिलेगा और बेटा करेगा तो बेटे को मिलेगा। पुण्य-पाप इधर का उधर नही किया जा सकता। धर्म और विद्या भी कोई किसी को नही दे सकते। सब को अपनी-अपनी करनी का फल मिलता है। साधु करेगा तो साधु पाएगा और साध्वी करेगी तो साध्वी पाएगी। श्रावक करेगा तो वह पाएगा और श्राविका करेगी वह पावेगी।

साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका, यह चार तीर्थ हैं। इनमे से किसी भी एक तीर्थ मे तो आओ ! श्रावक की कोटि में आ जाओगे तो भी नरक मे नही जाओगे। इन चार तीर्थों में ाधु सबसे बडा गिना गया है, किन्तु ठीक तरह साधु धर्म का चरण न करे तो ऐसे साधु से श्रावक ही अच्छा है। शास्त्र में

करेगी । मैं मरते समय दस हजार का दान करना चाहता था, परन्तु इसने मुझे संखिया देकर मार डाला और दान नही देने दिया । मैं क्रोध की अवस्था मे मर कर साप हुआ हूँ और बदला लेन की नियत से ही इसको काटा है।

मान्त्रिक बोला– अरे, हुआ सो हुआ, इसे छोड दे !

सर्प ने कहा-नहीं, मैं नही छोड सकता । सबेरे यह चिता मे जलेगी ही और जब यह जलेगी तो मैं भी आकर इसके साथ जल जाऊगा ।

वास्तव मे ऐसा ही हुआ । प्रात काल जब ब्राह्मणी को जलाया गया तो वह साप भी, आकर चिता में उछलकर जल गया ।

हलवाई बोला–महाराज ! यह कोई सुनी सुनाई कहानी नही है, किन्तु प्रत्यक्ष आखो देखी घटना है !

भाइयो ! इस घटना से सिद्ध होता है कि जिसे साधारणतया जीव का मारना कहा जाता है, वह जीव का मरण नहीं है । मरने का अर्थ सिर्फ चोला बदलना है–नष्ट हो जाना, समाप्त हो जाना या सदा के लिए अस्तित्वहीन हो जाना नही । जीव एक पर्याय को धारण करता है, बस यही मृत्यु कहलाती है ।

हा, यह भी मत समझना कि मर गये तो लेना-देना छूट गया ! लेन-देन तो हर हालत मे चुकाना पड़ेगा। अगर बिना कर्ज चुकाये मर जाओगे तो लेने वाले किसी न किसी रूप मे, कभी न कभी, अवश्य आएगे । लडकी बन कर आई तो हजारो लगाकर शादी की । और शादी की नही कि फिर मर गई! स्त्री बनकर भी हजारो ले जाएगी । कोई बेटा बन कर हजारो वसूल कर लेगा । जैसे लडके का पालन-पोषण किया और विलायत भेजकर दस

अलख राजा ने विचार किया— मैं ने पूर्वभव मे किया था सो इस जन्म मे पा लिया। इस जन्म मे नही करूंगा तो अगले जन्म मे क्या पाऊंगा? इस प्रकार विचार करते ही उसे वैराग्य हो गया। राजा ने राजकुमार को राज्य का भार सौप दिया और आप निवृत्त होकर साधु बन गया।

भाइयो! जिस जीव को पुण्य का उदय होता है, उसी पर उपदेश का प्रभाव पड़ता है। वही धर्म का एव सयम का आचरण कर सकता है। पापी जीव पर उपदेश असर नही करता!

एक मनुष्य अकेला है। विवाह नही हुआ है और न पाम मे पैसा है। फिर भी धर्मध्यान नही करता है! उसकी दशा धोबी के कुत्ते के समान होती है। कहावत है-धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का। धोबी सोचता है-कुत्ते को घर पर रोटी दे दी होगी। घर पर धोबिन सोचती है-घाट पर रोटी का टुकडा डाल दिया होगा? कुत्ता बेचारा दोनो तरफ से गया। यही दशा ऐसे लोगो की होती है। न वे लौकिक सुख पाते हैं और न लोकोत्तर सुख ही पाते हैं। हाँ विवेकवान जन प्राप्त रिद्धि को भी ठोकर मार कर आत्म कल्याण मे लग जाते है। बनारस का राजा अलख निरजन राजकीय वैभव का परित्याग करके सन्यासी बन गया। सयम का पालन करके अन्त मे—

कर करनी गये मोक्ष नगर में, मिट गये कर्म कठोर।
दो हजार दो किया चौमासा; चौथमल्ल इन्दौर ॥७॥

राजर्षि अलख ने खूब तपस्या की। ज्ञान का उपार्जन किया कर्मों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त करके उसी जन्म से मोक्ष

भी कहा है—

सन्ति एगेहि भिक्खूहि, गारत्था संजमुत्तरा।
गारत्थेहिं य सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा॥

—उत्तराध्ययनसूत्र,

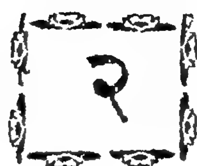
अर्थात्—कोई कोई भिक्षु ऐसे शिथिलाचारी होते हैं कि गृहस्थ की तुलना मे भी वे नही ठहर सकते। गृहस्थ श्रावक भी उनसे उत्तम सयमी होते हैं। परन्तु साधु सभी गृहस्थो से सयम मे श्रेष्ठ होते हैं। अर्थात् उत्तम आचारनिष्ठ साधु की तुलना मे श्रावक की कोटि नीची ही है।

भाइयों! उत्तमता और अधमता अपनी अपनी करणी पर निर्भर है। चाहे कोई साधु हो या श्रावक हो, हिन्दू हो या मुसलमान हो या ईसाई आदि कुछ भी हो, जो जैसा करेगा वैसा हो फल पाएगा। सभी धर्मशास्त्र दान और परोपकार करने का आदेश देते हैं और बतलाते हैं कि दान दोगे तो दरिद्री नही होओगे शील पालोगे तो सुख सम्पदा पाओगे और तप करोगे तो तथा शुभ भावना भाओगे तो केवलज्ञान पाकर मोक्ष मे जाओगे। अनन्त आनन्द के भागी बन जाओगे।

देखो राजा अनख भगवान महावीर के मुखारविन्द से धर्मोपदेश सुन रहा है। भगवान फरमा रहे हैं कि शुभ और अशुभ कर्मो के योग से यह आत्मा जन्म मरण की वेदनाओ का अनुभव करती है। फिर—

वैराग्य हृदय में छाया भूप के, जग झूठा दर्शाया।
राजकुंवर को राज्य सौंप के, संयम का पद पाया॥ ६॥

भगवान के मुखचन्द्र से झरते हुऐ पीयूष का पान करके



काम-विजय



स्तुति :--

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि--
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्)
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥

भगवान् ऋषभदेव जी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते है-- हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनन्त शक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? प्रभो ! आपके गुण कहा तक गाये जाए ?

भगवान् ऋषभदेव जी ने राज्य का परित्याग करके मुनिव्रत धारण किया और सर्वप्रथम कामदेव को ही जीता। काम को जीते ा ईश्वरत्व प्रकट नही हो सकता। जो मनुष्य काम के वशीभूत नना चाहिए कि वह वासनाओ का दास है और जो वासनाओ

प्राप्त किया । यह भजन विक्रम संवत् २००२ मे जब इन्दौर में चातुर्मास किया था, तब बनाया था ।

भाइयो ! कहने का आशय यह है कि मनुष्यभव, आर्य क्षेत्र. उत्तम कुल, वीतराग प्ररूपित वाणी के श्रवण का सुयोग, आदि सब अनुकूल सामग्री प्राप्त हुई है, तो शक्ति के अनुसार धर्म-पुण्य का आचरण कर लो । मैं फिर सावधान करता हू कि ऐसा अवसर बार-बार हाथ नही आ सकता । अतएव चूको मत । लोभ-लालच तृष्णा आदि के चगुल मे से निकलो । आत्मकल्याण के मार्ग पर लगो ! ऐसा करोगे तो यह जीवन सार्थक हो जाएगा और अनन्त आनन्द के भागी बनोगे ! कहो भाई ! आनन्द ही आनन्द ! ❀

भीम }
७-२-४९ }

❀श्री जैन दिवाकर जी महाराज के इस उपदेश के फलस्वरूप भीम मे धर्मशाला बनवाने के लिऐ करीब ५,०००) रु. का चदा एकत्र किया गया । रावत हजारीसिहजी ने मद्य मांस का सदा के लिए त्याग किया ।

दीर्घ साधना अर्थात कठिन तपश्चरण करके परमात्मा को प्राप्त किया है—आत्मा को अपने असली शुद्ध स्वभाव मे प्रकट किया है। हमारे आचार्यो ने इस विषय मे बडा ही उदार दृष्टिकोण अपनाया है.-

भवबीजांकुरजनना, रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

अर्थात्– जन्म-मरण के बीज को उत्पन्न करने वाले राग द्वेश आदि विकारो को जिसने जडमूल से उखाड कर फैंक दिया है उस महापुरुष का नाम चाहे ब्रह्मा हो, विष्णु हो या और कुछ भी क्यो न हो, मैं– उसके चरणो मे वन्दना करता हू।

आचार्य हरिभद्र स्पष्ट शब्दो मे कहते हैं—

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रह! ॥

अर्थात्– मुझे भगवान् महावीर के प्रति किसी प्रकार का पक्षपात नही है। कपिल आदि पर लेश मात्र भी द्वेष नही है। राग-द्वेष करने वाला धर्म की और ईश्वर की आराधना नही कर सकता। अतएव निस्पक्ष हृदय से विचार करना चाहिए और जिसका उपदेश तर्कसगत प्रतीत हो,उसी केवचनो को ग्रहण करना चाहिए।

जो वीतराग है, अर्थात् समस्त अभिलाषाओ और विकारो से अतीत हो चुका है। और जिसने परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है, वह महान् आत्मा यथार्थ वक्ता ही होगा। उसके वचन मे सी प्रकार की अयथार्थता नही हो सकती। उसके कथन मे तर्क असँगति नही होगी।

का दास है, वह वीतराग नही है। वीतरागता ईश्वरत्व का प्रथम सोपान है। जब आत्मा पूर्ण रूप से मोहनीय कर्म को क्षीण कर देता है तभी उसमे पूर्ण वीतरागता प्रकट होती है। वीतरागता प्रगट होने पर चेतना सर्वथा निर्मल हो जाती है। विकार नष्ट हो जाते हैं, कामनाओ का समूल उन्मूलन हो जाता है, आत्मा मे परमनिस्पृहता, अनन्त संतुष्टि असीम शाति और निष्कलुता आविर्भूत हो जाती है। इस प्रकार जब आत्मा मे कोई भी विकार नही रहता और विकार का सस्कार भी नही रहता, तब अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन की प्राप्ति होती है। अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन की प्राप्ति ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है।

आत्मा के परमात्मा बनने का क्रम जैनशास्त्रो मे अत्यन्त विशद रूप से वर्णन किया गया है। यहाँ उनका अति सक्षेप मे उल्लेख किया जा रहा है। फिर भी इस सक्षिप्त कथन से यह तो स्पष्ट हो जायगा कि वीतरागता के पश्चात् ही सर्वज्ञता और सर्व दर्शिता आती है। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि जिसने कामवासना पर विजय नही पाई, वह ईश्वर पद का अधिकारी नही है।

नाम से हमे प्रयोजन नही है। परमात्मा का एक नाम नही है, अनेक नाम हैं। नाम तो लोकव्यवहार के लिए कल्पित किया जाता है। वह वस्तु का गुण या धर्म नही है। उससे वस्तु के स्वरूप का बोध नही होता। अतएव नाम कुछ भी हो, जिस आत्मा मे परमात्मगुण प्रकट हो गये हैं, वही वास्तव मे परमात्मा है। वही हमारा आराध्य है, पूजनीय है।

हम भगवान् ऋषभदेव को इसलिए वन्दन-नमस्कार नहीकरते कि उनका नाम ऋषभदेव है, बल्कि इसलिए करते हैं कि उन्होने

इसका अर्थ यही है कि पर्याप्त योग्यता प्राप्त करके ही बात कहनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि जब तक आपने स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन, मनन और तपश्चरण के द्वारा अपनी बुद्धि को शुद्ध नहीं बना लिया है, जब तक आपकी विषयाभिलाषा दूर नही हो गई है और जब तक आपकी बौद्धिक योग्यता पर्याप्त गम्भीर नही बन गई है, तब तक आप अपनी बुद्धि पर पूरी तरह निर्भर नही रह सकते। आपको वीतराग की वाणी पर विश्वास करके ही अपना मार्ग तय करना होगा।

इसका अर्थ यह भी नही है कि आप अपने सहज ज्ञान को गिरवी रख कर चलें। जो बातें आपकी बुद्धि के गोचर है, उन पर आप अपनी ही बुद्धि से विचार करें और अपने अनुभव के विरुद्ध किसी की बात न मानें।

इस प्रकार जो विषय तर्कगम्य हैं, उन पर तर्क से विचार करना चाहिए और जो विषय तर्कगोचर नही हैं – केवल आगम गम्य हैं अर्थात श्रद्धा करने योग्य हैं, उन पर श्रद्धा करनी चाहिए। उदाहरणार्थ—वस्तु अनेक धर्मात्मक है अथवा एकान्तरूप है ? यह एक ऐसा विषय है जिस पर हम तर्क और अनुभव से विचार कर सकते है। अहिंसा धर्म है या हिंसा धर्म है ? इस प्रश्न को भी अपने स्वानुभव से हल किया जा सकता है। हमारा अनुभव और तर्क बतलाता है कि प्रत्येक वस्तु अनेकान्त रूप है। ऐसी स्थिति में अगर कोई एकान्त का निरूपण करता है तो वह युक्ति से विरुद्ध है और उसकी बात मान्य नही हो सकती। यही बात हिंसा अहिंसा के म्बन्ध मे समझनी चाहिए। हिंसा तीन काल मे भी धर्म नही हो ती और अहिंसा तीन काल मे अधर्म नही हो सकती। यह ारा अनुभव है। इस अनुभव के विरुद्ध यदि कोई हिंसा को धर्म

कभी ऐसा अवसर आ सकता है कि वीतराग की वाणी और आपके तर्क में विरोध उपस्थित हो जाय। आगम प्रमाण वस्तुतत्त्व का निरुपण दूसरे प्रकार का करता हो और आपकी बुद्धि और ही कुछ बतलाती हो। ऐसे प्रसग पर आप क्या करेंगे ? वीतराग की वाणी पर विश्वास करेंगे अथवा अपने तर्क पर भरोसा करेंगे ? इस प्रश्न का उत्तर आप अपने अन्तरात्मा से पूछिए। आप क्या करेंगे, यह मैं नही जानता, किन्तु ऐसे अवसर पर क्या करना चाहिए, यह मैं कह सकता हू।

आप जानते हैं कि तर्क का आधार मनुष्य का मस्तिष्क है। मस्तिष्क सदैव एक सा नही रहता। अतएव तर्क की गति भी एक ही मार्ग पर नही होती। जैसे सरोवर मे एक के बाद दूसरी लहर उठती हैं, उसी प्रकार मस्तिष्क मे नाना तर्क की तरगे उठती रहती हैं। उन तरगो मे वह जाना योग्य नही है। मनुष्य को चाहिए कि वह पहले एक निश्चित आधार बना ले और फिर भले तर्क-वितक करे। निश्चित आधार का अर्थ है—सुदृढ श्रद्धा। श्रद्धा की मूल नीव पर ही तर्क वितर्क का प्रासाद खडा होना चाहिए। अगर ऐसा न किया गया तो मनुष्य तरगों मे इधर उधर बहकर टकराता रहेगा और कभी अपने नियत लक्ष्य पर नही पहुँच सकेगा।

इस विषय मे दूसरी बात ध्यान रखने योग्य यह है कि हम जिन गूढ सिद्धान्तो पर तर्क वितर्क करने चले, पहले उनको भली भाति समझने की पात्रता प्राप्त कर ले। अगर पात्रता प्राप्त नही की है, तो आप भ्रम मे पड जाएँगे। आपकी समझ मे कुछ भी नही आएगा। और यदि ऐसा हुआ तो यह दोष उन सिद्धान्तो का नही होगा, वरन आपकी अपात्रता का होगा।

लोक मे कहावत है—'छोटे मुह बड़ी बात शोभा नही देती।'

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं,
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम् ।
वस्त्रं च जीर्ण शतखण्डमयी च कन्था,
हा हा तथापि विषयान्न परित्यजन्ति ॥

एक योगी है जो भिक्षा मांगकर उदार निर्वाह करता है। भिक्षा में भी वह नीरस आहार लेता है और वह भी दिन भर मे एक बार ! जमीन पर सोता है। उसके आसपास दूसरा कोई नही रहता। बस, उसका शरीर ही उसका परिजन है। फटे--पुराने चीथड़े पहनता है और सो-सो टुकडो वाली गुदडी ओडे फिरता है फिर भी अफसोस की बात है कि वह विषय वासना को नही त्याग सकता।

और भी सुनिये---

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः ।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत्सागरे ॥

विश्वामित्र और पराशर आदि ऋषि-जिनका वैदिक धर्म के पुराणो मे वर्णन आता है, कोई हवा खाकर तप करते थे, कोई कोरा पानी पीकर तपस्या करते थे और कोई वृक्षो के स्वत: गिरे हुए पत्ते खाकर ही रहते थे, वे भी स्त्री का मुख कमल देखते ही मोह के वशीभूत हो गये। ऐसी स्थिति मे जो लोग शालि-अन्न और वह भी घी, दूध और दही के साथ सेवन करते है वे अपनी द्रय को कैसे काबू मे कर सकते हैं ? उनकी इन्द्रियो का का बूमे

हो जाना वैसा ही है, जैसा समुद्र में विन्ध्य पर्वत का तिरना। अर्थात् असम्भव है। किसी कवि ने यथार्थ ही कहा है-:-

प्राणिघातकवीराश्च, बहवः सन्ति भूतले।
कन्दर्पघातको वीरः, क्वचित्तिष्ठति वा नवा॥

मनुष्य आदि प्राणियो का विनाश करने वाले वीर तो इस भूतल पर बहुत से हैं, किन्तु कामवासना का विनाश करने वाला वीर शायद ही कही हो या न हो। अर्थात कोई विरला ही होता है

जिन भगवान ऋषभ ने काम रूपी प्रचण्डतम रिपु को नष्ट कर दिया, उन्होने समस्त असाधारण सदगुणो को प्राप्त करलिया। ऐसे भगवान ऋषभदेव हैं, उन्हीं को हमारा बार बार नमस्कार।

भाइयो! सँसार मार्ग की ओर ले जाने वाली पाच बाते हैं। कहा भी है—

वत्थगंधमलंकारं इत्थीओ सयणाणि य।

मन को संसार की ओर ले जाने वाली पहली वस्तु वस्त्र है, क्योंकि वस्त्र की ओर ही सब से पहले दृष्टि आकर्षित होती है। वस्त्र कई प्रकार के होते हैं, रेशम के, मखमल के, जरी के, आदि-आदि। इनमे भी सैकडो किस्मे होती हैं। उनकी चमचमाहट निराली होती है। दीपावली आदि त्योहारो के अवसर पर जब बजाज लोग अपनी कपडे की दुकान सजाते है, तो बरबस दर्शको का चित्त उस ओर आकर्षित हो जाता है और वे चलते चलते खडे हो जाते हैं। बबई जैसे शहरो मे कपडे की किस्मे देखने मे आवें तो कुछ न कुछ लेने की तबीयत हो ही जाती है। और कुछ नही तो घर-वाली के लिए एक साड़ी लेने को दिल मचल ही जाता है।

वस्त्र धारण करने का उद्देश्य लज्जा की रक्षा करना और शरीर को गर्मी-सर्दी के आघात से बचाना है। पहले इसी प्रयोजन से वस्त्रो का प्रचलन हुआ। जब तक यह उद्देश्य प्रधान रहा तब तक तो गनीमत रही, परन्तु धीरे-धीरे मनुष्य मे फैशन का भाव जागृत हुआ। इस नवीन भावना की जागृति ने वस्त्र को शृंगार-प्रसाधन का रूप दे दिया। फिर तो यह हाल हो गया कि लज्जा की रक्षा तो एक किनारे धरी रह गई और शृंगार ही एकमात्र ध्येय बन गया।

आज मारवाड के नगरो मे, खास तौर से कुलीन महिलाएँ, ऐसे वस्त्र पहनती हैं कि जिन्हे देख कर लज्जा को भी लज्जा आती है। वे मस्तक पर आभूषण धारण करती हैं परन्तु मोटा वस्त्र पहन ले तो आभूषण उससे छिप जाय। दूसरो को दिखलाई न दे। और दूसरो को दिखलाई न दे तो फिर उसका पहनना ही वृथा हो जाय! इस विचार से प्रेरित होकर अधिकाश बहनें बारीक से बारीक वस्त्र पहनती है। उन वस्त्रो मे मस्तक के आभूषणो के साथ केश भी दिखाई देते हैं। एक ओर हाथ भर का लम्बा-घूंघट और दूसरी ओर यह बारीक वस्त्र देखकर विवेकी पुरुषो के खेद और आश्चर्य का पार नही रहता। आश्चर्य तो इस बात का कि पुरुष अपने परिवार की महिलाओ को कैसे यह लज्जाहीन वस्त्र खरीद कर देते हैं! और खेद इस बात का कि कुलीन बहिनें फैशन के मोह मे फस कर किस प्रकार निर्लज्ज बन जाती हैं!

सच पूछिए तो आज वस्त्र व्यवसाय ने भयानक रूप धारण कर लिया है। प्रतिदिन नये-नये नमूने तैयार किये जाते है और वे इतने लुभावने होते है कि जिसका ठिकाना नही। जिसके पास टियां की पेटिया भरी पडी है, वर्षो तक पहनने योग्य वस्त्रो का ह है, वह भी नया नमूना देखकर लोभ सवरण नही कर । और चट उसे खरीद लेता है।

इस फैशन-परस्ती से आर्थिक हानि तो होती ही है, नैतिक हानि भी बडी जबरदस्त हो रही है। फैशन परस्ती को चरितार्थ करने के लिए पैसा चाहिए और जब वह न्यायोचित तरीके से नही मिलता तो लोग अनीति,चोरी, बेईमानी और धोखादेही करके प्राप्त करते है और फैशन की आग मे उसे भस्म कर देते हैं। इस प्रकार फैशन परस्तो अनीति और अधर्म को उत्पन्न करती है।

बहुमूल्य और सुन्दर वस्त्र पहनने वाले मे अभिमान एव ठसक की भावना उत्पन्न होती है। जब वह बाहर निकलता है तो अकडता हुआ चलता है। वह अपनी तुलना मे दूसरो को तुच्छ और नगण्य समझता है। इस प्रकार वह अहकार का पात्र बन जाता है।

भडकीले वस्त्र पहनने वाला दूसरो के चित्त मे भी वैसे ही वस्त्र पहनने का प्रलोभन उत्पन्न करता है। देखादेखी अनेक लोग कीमती वस्त्र पहने की इच्छा करते हैं और पास मे पैसा नही होता तो पापाचार करते है।

चटक मटक वाले कपडे जीवन को बहिर्मुख बना देते हैं। जीवन का वास्तविक और आन्तरिक सौन्दर्य इन बातो मे छिप जाता है।

इस प्रकार वस्त्र का काम बडा जबर्दस्त है और इसी कारण इसे पांच वस्तुओ मे प्रथम गिना है।

दूसरी वस्तु गन्ध है। इत्र, तेल, फुलेल, चन्दन, केसर और कस्तूरी वगैरह की खुशबू भी मन को ससार की ओर खीचती ह। यह नासिका का विषय है। सुगन्ध और दुर्गन्ध—दोनो ही मन को बिगाड़ देती है और मन को विकार के मार्ग पर ले जाती हैं। नाक

के इस विषय के लिए गुलाब, चमेली, मोगरा, केवड़ा आदि की खेती जाती की है। इनका उपयोग मुख्यतया सूघने मे ही होता है।

कानपुर जाते हुए हमें रास्ते मे कन्नौज आया! कन्नौज में स्थानकवासी परम्परा के अनुयायी पल्लीवाल भाई हैं। वे फूलो की खेती करते हैं। वहां इत्र खीचने की बडी-बडी भट्टियां और बडे-बडे कारखाने हैं। वहा गटर के पानी मे भी इत्र की खुशबु आती है।

सुगन्ध मन को विषय की ओर प्रेरित करती है। सुगन्ध से आकृष्ट हुए सर्प चन्दन के वृक्षो से लिपटे रहते हैं। उन्हे सुगन्ध इतनी ज्यादा पसन्द है।

उधर दिल्ली में मुगल बादशाह का राज्य था और इधर उदयपुर मे महाराणा साहब का राज्य था। उस समय एक अत्तार इत्र लेकर राणाजी के पास आया। उसने गुलाब, खस, हिना वगैरह के अनेक नमूने बतलाए और बहुत कुशलता के साथ प्रत्येक की विशेषता का वर्णन किया। मगर उदयपुर के राणाजी युद्ध क्षेत्र के खिलाडी थे। तलवार का उन्हे शौक था इत्र का नही। वह जानते थे कि इत्र विलासवृत्ति को बढाने वाली वस्तु है। अतएव उन्होने इत्र खरीदने से इन्कार कर दिया।

अत्तार अपनी पेटी लेकर वापिस हुआ। वह गली मे होकर जा रहा था और कह रहा था—इत्र राणाजी क्या ले सकते हैं? इत्र तो बादशाह ही लेते हैं। सामने से एक सेठ घोडे पर सवार होकर आ रहा था। अत्तार के शब्द उसके कानो मे पड गये। सेठ ने पूछा—क्या कह रहे हो? फिर तो कहो।

अत्तार जरा सहम गया। उसने कहा-दरबार के पास इत्र लेकर गया था परन्तु उन्होने नही लिया।

अत्तार ने इत्र दिखलाये और कहा-यह पचास रुपये तोले का और यह चालीस रुपये तोले का है !

सेठ ने कहा-बस इसी कीमत के हैं ? तभी तो दरबार ने नही लिए ! हमारे यहा ऐसे इत्र तो घोडो के काम आते हैं !

अत्तार चकित रह गया । सेठ ने सारा इत्र घोडे पर डलवा दिया और कीमत उसे चुकती दिला दी । अत्तार कहने लगा-वाह राणा बाबू वाह !

उसने दिल्ली के बादशाह के सामने राणाजी की तारीफ की । कहा-जहापनाह, जैसे इत्र आप काम मे लाते हैं, वैसे तो राणाजी के यहा घोडो पर डाले जाते हैं ।

इधर राणाजी के दरबार मे सभी तरह के आदमी थे । बडे आदमियो के पास नेक सलाह देने वाले, गप्पें मारने वाले और चुगलखोर भी रहते है । चुगलखोर मौका नही चूकता । चुगली खाये बिना उसे चैन नही पडता ।

हाँ तो एक चुगलखोर राणाजी के पास पहुचा बोला-अन्नदाता, आपने जो इत्र नही खरीदा था, उसे उस सेठ ने खरीद लिया और सारा का सारा अपने घोडे पर डलवा दिया उसने ऐसा करके हुजूर का अपमान किया है । अपना बडप्पन जतलाया है ।

दरबार ने सेठ को अपने पास बुलवाया और पूछा कि किस उद्देश्य से तुमने सारा इत्र खरीद कर घोडे पर डलवाया? सेठ ने सब वृत्तान्त बतलाकर कहा-अन्नदाता, अत्तार की बात मुझसे सहन नही हो सकी । वह आपकी अवहेलना कर रहा था । मैंने आपकी अपने अन्नदाता की- प्रतिष्ठा बढाने के लिए ही ऐसा किया ।

राणा को सेठ का उत्तर सुनकर सन्तोष हुआ। उन्होने सेठ का सम्मान किया। यद्यपि राणाजी को इत्र का शौक नही था, तथापि सेठ की ऊँची भावना और वफादारी की उन्होने कद्र की।

आशय यह है कि इत्र जैसे सुगन्धित पदार्थ जीवन के लिए कोई उपयोगी नहीं है। वह तो सिर्फ विलासिता के साधन हैं। इनका प्रयोग करने से मन विकार की ओर जाता है। अतएव यह भी ससार के मार्ग हैं।

तीसरी वस्तु अलकार है। सोने, चाँदी, मोती और जवाहरात आदि के आभूषणों-गहनो को अलकार कहते है। मोतियों और हीरो की चूडियाँ ऐसी-ऐसी चमक-चमक करती हैं कि देखने वाले का मन तत्काल उनकी ओर खिच जाता है। हमे तो सब घरो में गोचरी के लिए जाना पड़ता है, अतएव घर-घर का हाल सुनने मे आ जाता है।

एक वार इन्दौर के बडे सेठ के घर की महिलाएे किसी गाव जा रही थी। गाँव स्टेशन से कुछ ही दूर था, अतएव वे पैदल चली। रास्ते मे चोर छिपे थे। आप जानते है कि चोर और डकैत तो इसी फिराक मे रहते हैं। उन्होने सेठानियो को देखा तो बडे प्रसन्न हुए। सोचने लगे-आज गहरा माल हाथ लगेगा।

चोर सामने आ गये। प्रायः बडे घर की महिलाएँ भी बडी बुद्धिमती होती हैं। उन्होने चोरो को सामने देखकर कहा-हमे लूट कर क्या करोगे ? सेठानियाँ तो पीछे हैं ! हम तो उनकी दासियां आगे-आगे इन्तजाम करने के लिए जा रही हैं। चादनी रात मे न्होंने अपनी मोतियो की चूडिया बतलाई। चोर समझे कि यह दी की हैं। इस प्रकार वे महिलाएँ बच कर निकल गई और पनी बहुमूल्य सम्पत्ति बचाने में समर्थ हो सकी।

यह तो उनके पुण्य का उदय समझिए कि वे सकुशल बच कर जा सकी। अन्यथा गहनो से बडी-बडी भयानक दुर्घटनाएँ होती है। मनुष्य को प्राण तक देने पड़ते हैं। ज्ञातासूत्र मे विजय चोर का वर्णन आता है। उसने आभूषणो के लोभ मे एक बालक को चुरा लिया और बस्ती से बाहर जाकर मार डाला था। यह तो शास्त्रो की बात है। मगर इतनी दूर जाने की आवश्यकता ही क्या है? आये दिन इस प्रकार के समाचार सुने जाते हैं कि गहनो की बदौलत अमुक के बालक के प्राण चले गये! अमुक स्त्री को कत्ल कर दिया गया! आश्चर्य ह कि फिर भी यह बहिनें गहनो का लोभ नही त्याग सकती।

भाइयो! यह गहने भी मन को बिगाड देते हैं। चित्त मे चचलता उत्पन्न कर देते हैं अतएव विकार-मार्ग से बचने के लिए गहनो से बचना आवश्यक है। याद रखना चाहिए कि जीवन में जितनी ज्यादा सादगी होगी, उतना ही अधिक सयम रह सकेगा। अतएव—

जीवन बहुत बनाओ सादा,
तडक भड़क में पड़ो न ज्यादा।

जीवन को सादगीमय बनाओ। सादगी जीवन को ऊचा उठाती है। पाप से बचाती है और आरम्भ-समारम्भ से भी बचाती है यह गहने आपके जीवन को हल्का नही, भारी बनाने वाले हैं। इनका मोह त्यागो। गहने गढवाने के लिए न मालूम कितने पाप-दोष करने पडते है। इन गहनो के अभाव मे आपको कोई हानि नही होगी।

चौथी वस्तु स्त्री है। पुरुष का मन स्त्री को देखकर बुरे रास्ते

पर चला जाता है और पुरुष को देख कर स्त्री का मन बिगढ जाता है। इससे कितने घोर अनर्थ होते हैं, यह कहने की आवश्यकता नही। अनेक पुरुष, स्त्री के मोह जाल मे फँसकर अपना धर्म भी त्याग देते हैं और जातपांत को भी धत्ता बता देते हैं : कई मुसलमान और कई ईसाई हो जाते हैं।

सच तो यह है कि पुरुष के लिए स्त्री और स्त्री के लिए पुरुष ससार मे सब से बड़ा बन्धन है। इससे गाढा और कोई बन्धन नही है। साधारण लोगो की तो बात ही अलग, कई साधु वेषधरी भी मौका पाकर किसी स्त्री को उडाकर भाग जाते हैं।

जब तक मनुष्य स्त्री के प्रलोभन से नही छूट जाता, तब तक वह धैर्य की आराधना नही कर सकता। इस विषय मे पहले ही कहा जा चुका है, अत: अब अधिक कहने की आवश्यकता नही है। संक्षेप मे यही समझ लीजिए कि कामलिप्सा मनुष्य को बर्बाद कर देती है। अतएव उससे निरन्तर बचने का प्रयत्न करना चाहिए। शास्त्रो में इस लिप्सा पर विजय पाने के अनेक उपाय बतलाये हैं। उन्हे समझकर अमल मे लाने से कामशक्ति वशीभूत हो सकती है।

मन को बिगाड़ने वाली पाचवी चीज शय्या है। शय्या मे गद्दी, तकिया, मसनद और बिस्तर आदि सभी का समावेश हो जाता है। इनको देखकर भी मन में विकार उत्पन्न हो जाता है। जिसके पास पूंजी है, वह बढिया हवेली या बँगला बनवाता है। उसे सुन्दर फर्नीचर से और जरीदार मसनद आदि से सजाता है। लायम गद्दिया बिछाता है। इन सब को देखकर भी मन गलत पर चला जाता है।

एक बादशाह के सोने के लिए उसके नौकर ने बढ़िया और

मुलायम सेज बिछाई। सेज बिछकर तैयार हो गई तो नौकर का मन ललचाया। उसने सोचा—अभी बादशाह के आने मे देरी है। तब तक थोडी देर मैं भी लेट कर देख लू कि इस शय्या पर सोने मे कैसा मजा आता है? अपनी मेहनत का आनन्द तो मैं भी ले लू। यह सोच कर नौकर शय्या पर लेट गया। सयोग की बात कि नौकर को लेटते ही नीद आ गई। इतने मे बादशाह सलामत भी आ पहुचे। अपने बिस्तर पर नौकर को सोते देख आग बबूला हो गये। उन्होने बेत लेकर दो चार नौकर को लगा दिये। नौकर चिल्ला कर उठा। मगर दूसरे ही क्षण वह हसने लगा। बादशाह आश्चर्य में पड गया कि यह मार खाकर हँस रहा है तो पागल तो नही हो गया है? आखिर बादशाह ने उसके हँसने का कारण पूछा। नौकर ने कहा-जिस शय्या पर जरा सी देर सोने के कारण मुझे बेत खाने पडे, उस पर आप प्रतिदिन रात्रि भर सोते हैं। न जाने खुदा के घर आपको कितनी सजा मिलेगी।

बादशाह अपने नौकर की बात सुनकर कांप उठा। उसने कहा-तेरी बात तो ठीक है। एक दिन तो सबको मरना ही पडता है। मुझे भी मरना पड़ेगा। आगे क्या होगा, खुदा जाने।

बस, उसी दिन से मुल्क बुखेर का बादशाह खुदा की इबादत करने लगा। तात्पर्य यह है कि शय्या वगैरह से भी मन मे विकार उत्पन्न हो जाता है।

भाइयो! ससार के यह सब सुख,दु.ख के जनक हैं। जो सुख दुःखों के जनक हो, वे वास्तव मे दु ख रूप ही है। जितने भी इन्द्रियो के विषय हैं, सबका परिणाम एक मात्र दु.ख है। कहा भी है।—

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा ।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दुग्गइं ॥

उत्तराध्ययन, अ. ९-५३

यह कामभोग शल्य के समान है । शरीर के किसी भी भाग मे घुसा हुआ काटा जैसे कष्ट पहुँचाता रहता है उसी प्रकार काम भोग भी दीर्घकाल तक कष्ट देते हैं । कामभोग विष के समान हैं । जैसे विष-चेतना शक्ति को मूर्छित कर देता है, मनुष्य को बेभान बना देता है और मृत्यु का कारण बनता है, उसी प्रकार विषयो के सेवन से चेतना मलीन हो जाती है, मनुष्य हिताहित के विवेक से शून्य बन जाता है और पुनः पुनः मृत्यु का पात्र बनता है । बिष और विषयो मे अन्तर है तो यही कि विष एक बार मारता है और विषय अनेक बार मारते है । कामभोगो की अधिक विषाक्तता प्रकट करने के लिए शास्त्रकार कहते हैं कि काम सर्प के समान है । जैसे सर्प भयकर होता हैं और उससे दूर रहने मे ही कल्याण है, इसी प्रकार विषय भी आत्मा के लिए भयकर है और उससे दूर रहने मे ही कल्याण हैं ।

श्री उत्तराध्ययन शास्त्र मे ही अन्यत्र भी कहा है :—

खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा,
पगामदुक्खा अणिगामसुक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥

उत्तराध्ययन अ. १४ गा. १३

भाइयो ! कामभोग आपको सुखप्रद प्रतीत होते है । किन्तु

इनसे मिलने वाला सुख क्षणिक है-सदा काल की बात ही दूर, लम्बे समय तक भी नही ठहर सकता। परन्तु इनके सेवन से दु ख बहुत समय तक भोगना पडता है। यह कामभोग संसार से मुक्ति पाने मे बाधक है और अनर्थों की खान है। अतएव भव्य जीवो को इनका परित्याग कर देना चाहिये।

भाइयो! आखो मे खुजली चलने पर मनुष्य खुजा लेता है और कोई मनाई करता है तो भी नही मानता। उस समय खुजाने मे ही उसे सुख मिलता है, किन्तु बाद मे जब जलन होती है तो पछताता है। इसी प्रकार यह भोग थोडी ही देर मजा देते हैं, किन्तु बाद मे बुरी तरह पछताना पडता है।

कलाकद मे सखिया डाल दिया गया हो तो खाने वाले को पहले तो आनद आता है, किन्तु थोडी ही देर बाद सारे शरीर मे ऐठन आरभ होती है और प्राणो से हाथ धोना पडता है। यही बात इन्द्रियो के भोगो के सम्बन्ध मे है।

इन भोगोपभोगो की बदौलत दीर्घकाल पर्यन्त जो दु ख उठाने पडते हैं, उनका कहा तक जिक्र किया जाय? इस विषय में ललितांग कुमार का दृष्टान्त प्रसिद्ध है। ललितांग कुमार सम्पन्न सेठ का लड़का था। उसका पिता नगर मे प्रतिष्ठित साहूकार गिना जाता था। मगर विषय भोग की कामना ने उसकी बडी दुर्गति की। उसे पाखाने के छेद मे उल्टा लटकना पडा। इस प्रकार यह कामभोग घोर अतिघोर दुखो की खान हैं। जिसने भी इन्हे अपनाया, वह दुखो का ही पात्र बना अन्त मे पछताया।

मणिरथ राजा ने विषयो की तृष्णा मे फसकर क्या पाया? राजा का छोटा भाई था — युगबाहु। युगबाहु की पत्नि

मदनरेखा अतिशय रूपवती थी और पतिव्रता थी। मणिरथ के अन्त:करण मे पाप की भावना जागृत हुई। वह मदनरेखा को अपनी विषयवासना का शिकार बनाने को उद्यत हुआ। उसे अनेक प्रलोभन दिये। मगर सती स्त्री ससार के किसी भी प्रलोभन मे फँसकर अपने सतीत्व को बेचना पसन्द नही करती। वह सब सुखो को छोड सकती है, सब प्रकार के कष्टो को सहर्ष स्वीकार कर सकती है, यहाँ तक कि हँसती हसती प्राणो का उत्सर्ग भी कर सकती है, किन्तु बड़े से बडे मूल्य पर सतीत्व को नही बेच सकती। मदनरेखा ने समस्त प्रलोभनो को बुरी तरह ठुकरा दिया।

मणिरथ के मन मे निराशा का उदय हुआ। फिर भी वह मदनरेखा का मोह न छोड सका। उस पापी ने सोचा— जब तक इसका पति युगबाहु जीवित है,तब तक यह चगुल मे नही फँसेगी। किसी भी उपाय से युगबाहु को ससार से विदा कर दिया जाय तो झख मार कर यह मेरी अगशायिनी बन जायगी।

हाय, अफसोस! विषयवासना मनुष्य के हृदय को कितना कलुषित बना देती है, इसका यह नग्न दृष्टान्त है। मणिरथ आज पाप की वासना का शिकार होकर जघन्य से जघन्य कृत्य करने का विचार करने लगा। वह अपने छोटे भाई की जान लेने का अधमतम कार्य करने को उद्यत हो गया।

प्रथम तो मणिरथ ने अपने भाई का काम तमाम करने के उद्देश्य से खतरनाक लडाई पर उसे भेजा, किन्तु युगबाहु वहाँ से सकुशल वापिस लौट आया। तब मणिरथ उसे मौत के घाट उतारने के लिए दूसरे उपाय सोचने लगा।

एक बार युगबाहु अपनी पत्नी मदनरेखा के साथ नगर से बाहर किसी उद्यान मे गया और रात्रि मे वही ठहर गया। मौका पाकर मणिरथ वहाँ जा पहुचा और युगबाहु को अपने सहोदर लघुभ्राता को-उसने मार डाला। लौटते समय उसे साप नें काट लिया और वह भी वेमौत मर कर दुर्गति का अधिकारी बना।

जिनऋषि और जिनपाल नामक दो लडको की कथा ज्ञातासूत्र मे आई है और भी अनेकों दृष्टान्त प्रसिद्ध हैं, जिनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विषयभोगो का परिणाम अत्यन्त दारूण होता है।

विषयवासना इस जीव को अनादि काल से ससार मे भटका रही है। जीव का स्वरूप अनन्त आनन्द है। मगर जीव को अपनें स्वरूप का वास्तविक बोध नही है अतएव वह विषयजन्य आनन्द को ही अपना ध्येय मान लेता है और उसी को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वास्तव मे विषयसुख, सुख नहीं सुखाभास है। वह सुख सरीखा प्रतीत होता है। मोही जीव इसी सुखाभास के प्रलोभन मे फँसकर अपने जीवन को वृथा गवा देता है। कहा भी है—

आनन्दरूपो निजबोधरूपो,
दिव्यस्वरूपो बहुनामरूपः।
तपःसमाधौ कलितो न येन,
वृथा गतं तस्य नरस्य जीवितम् ॥

जिस मनुष्य ने आनन्दमय, निजात्मबोधमय, दिव्य रूप आत्मा के स्वरूप को नही समझा, उसका जीवन व्यर्थ ही गया।

तात्पर्य यह है कि जीवन की सार्थकता राजपाट, गगनचुम्बी प्रासाद, लक्ष्मी के अक्षय भंडार, आदर सम्मान और पूजा-प्रतिष्ठा पाने मे नहीं है, वरन आत्मा के ज्ञानमय और आनन्दमय स्वरूप को समझने मे है। बड़े से बड़ा ज्ञानी भी अगर आत्मा को नही पहचानता तो उसका ज्ञान व्यर्थ है। महिनो निराहार रहकर अनशन तप करने वाले तपस्वी ने भी यदि अपने शुद्ध सच्चिदानन्द रूप को न पहचान पाया तो उसका तप कायक्लेश ही रह गया। धर्म के उद्देश्य से की गई प्रत्येक क्रिया की सार्थकता आत्मबोध प्राप्त करने मे ही है।

मनुष्य जब आत्मा के परमचिन्मय स्वरूप को पहचान लेता है, तब उसे स्वभावत विषयो से विरक्ति हो जाती है। अत-एव विषयवासना से बचने के लिये आत्मज्ञान प्राप्त करना ही सच्चा उपाय है। निरन्तर भावना और अभ्यास से ही विषयो की वासना नष्ट की जा सकती है।

भाइयो ! प्रत्येक मनुष्य के जीवन की एक मुख्य अभिलाषा होती है। कोई बड़े से बडा विद्वान बनना चाहता है, कोई लक्ष्मी का स्वामी होने की इच्छा करता है, कोई पहलवान बनकर कीर्ति उपार्जन करने की अभिलाषा करता है। और कोई और कुछ होना चाहता है। जो जैसा बनना चाहता है, वह वैसा ही पुरुष को अपना आराध्य बनाता है, उसी का आदर करता है उसी क आदर्शो पर चलता है। जिसने पहलवान बनने की अभि लाशा की है वह पहलवान को ही अपना गुरू बनाता है। विद्या प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला विद्वान पडित का शिष्य बनता है। क्या आपने भी अपने जीवन का कोई ध्येय निश्चित किया है आपने वीतराग भगवान को अपना आराध्य माना है और संयमी साधुओ को गुरू बनाया है। इससे

तो यही जान पडता है कि आपके जीवन का लक्ष्य वीतराग बनना है। विषयवासना को आप जीतना चाहते हैं और निर्विकार बनने की इच्छा करते हैं।

क्या मेरा यह अनुमान सत्य है? अगर सोच समझ कर आपने देव और गुरु को अपनाया है, तब तो मेरा खयाल ठीक ही होना चाहिए। और यदि पूर्वजनो की मान्यता के कारण हो आप वीतराग के उपासक बने हैं, और उनके आदर्शों के प्रति अभिरूचि नही रखते, तो कहना चाहिए कि आप गलत राह पर चल रहे हैं आपका लक्ष्य कुछ और है, उपासना कुछ और है।

भाइयो! अपने असीम पुण्य का उदय समझो कि आपको वीतराग देव जैसे परमोत्कृष्ट आदर्श देव की उपासना का सुअवसर मिल गया है। आप उन्ही के मार्ग पर चलो। सदैव वीतराग होने की भावना रक्खो। विषय-वासना की तरफ चित्त को आकर्षित करने वाले सयोगो से बचो। साय-प्रात परमात्मा का ध्यान किया करो। आहार-विहार मे सात्विकता और सयम का सदैव ध्यान रक्खो।

ऐसा करोगे तो भगवान् ऋषभदेव की तरह आप भी एक दिन पूर्ण विकार विजयी बन सकेगे। आपकी चितवृत्ति ऐसी आत्मोन्मुखी बन जाएगी कि देवागनाएं भी आपके मन को हरण न कर सकेंगी और जब ऐसी स्थिति हो जाएगी तो अनन्त आनन्द का भडार आपको प्राप्त होगा।

गोदाजी का गाव
१०-२-४६



पार्श्व जयन्ती



— स्तुति —

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते,
लोकत्रयद्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तर भूरिसंख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम् ।

भगवान ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुऐ आचार्य महाराज फर्माते है-हे सर्वज्ञ सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान ! कहाँ तक आपकी स्तुति की जाय ! प्रभो! कहाँ तक आपके गुण गाये जाऐ ?

भगवान ऋषभदेव, और अन्य समस्त तीर्थंकर जब अर्हत् अवको प्राप्त होते है तो सुरविनिर्मित्त अष्ट महाप्रातिहार्य उनकी शोभा को मूर्तिमान स्वरूप प्रदान करते हैं । वे आठ महाप्रातिहार्य

लेकर आते हैं-जन्म जन्मातर की तपस्या के फल स्वरूप उन्हे तीर्थ कर गोत्र प्राप्त होता है, फिर सुयोग्य माता पिता का सयोग मिल जाने से तो सोने मे सुगन्ध ही हो जाती है भगवान पार्श्व नाथ का विस्तृत चरित एक दिन मे पूरा नही सुनाया जा सकता, तथापि सक्षेप में सूचना दी जा सकती है कि पिछले नौ भवो के वृतात को आप पढ़ें और देखें कि किस प्रकार उनका क्रम से विकास होता चला गया और उसके बाद दसवे भव मे वे तीर्थ कर के रूप मे उत्पन्न हुए।

पौष कृष्णा दशमी को, रात्रि के समय मे पार्श्वनाथ जी का जन्म हुआ। महान पुण्यशाली पुरुष का पुण्य-प्रभाव समस्त लोक पर बढता है। इस नियम के अनुसार पार्श्वनाथ जी के जन्म के समय मनुष्य लोक मे और स्वर्ग लोक मे ही नही बल्कि नरकलोक मे नारकी जीवो को कुछ क्षण के लिए शांति मिली –

जब तो आनन्द चौनन्द हुआ,
राजा को परमानन्द हुआ।
सम्पूर्ण लोक में हर्ष मचा,
ऐसा अपार आनन्द हुआ।

भाइयो! तीर्थ कर के जन्म की महिमा का वर्णन करना हम। जैसो की शक्ति से बाहर है। मृत्युलोक और स्वर्गलोक मे अपूर्व आनन्द छा गया और निरन्तर दुस्सह यातनाओ के पात्र नारकी जीव भी कुछ समय के लिए यमदूतो परमाधामियो द्वारा पहुचाई जाने वाली यातनाओ से बचे। उन्हे आराम की सास लेने का अवसर मिला और स्वर्गलोक तथा तथा मर्त्यलोक की तो बात ही

इन आठ महाप्रातिहार्यो मे से यहां भामण्डल का उल्लेख किया गया है । वह भामण्डल सूर्य के भी तेज को जीतने वाला और चन्द्रमा की उज्जवलता को भी जीतने वाला होता है । तीन जगत मे जितनी भी द्युतिमय वस्तुए हैं उन सब की द्युति मिल कर भीउस भामण्डल की बराबरी नही कर सकती । भगवान आदि नाथ मे जो आतरिक अनन्त तेज है, भामण्डल उसका प्रतिबिब सा जान पड़ता है इस प्रकार बाह्य और आंतरिक तेज से विराज-मान भगवान ऋषभदेव को हमारा बार बार नमस्कार हो !

ऋषभदेवजी या आदिनाथजी इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थ कर है । उनके पश्चात समय-समय पर तेईस तीर्थंकर और हुए हैं । जिनमे ज्ञातपुत्र वर्द्धमान स्वामी अन्तिम थे । भगवान वर्द्धमान के निर्माण से ४२२ वर्ष पूर्व भगवान पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थंकर का जन्म हुआ था । आज भगवान पार्श्वनाथ की जयन्ती है । अतएव आज उनके पावन चरित का वर्णन करना उचित होगा ।

भगवान पार्श्वनाथ का जन्म भारत विख्यात और प्राचीन काल से विद्या एव सरस्वती का केन्द्र बनी हुई बनारस नगरी मे हुआ था । ससार प्रसिद्ध इक्ष्वाकुवश के प्रचण्ड प्रतापी राजा अश्व सेन आपके पिता और महारानी वामादेवी आपकी माता थी । राजा अश्वसेन अतिशय प्रतिष्ठित वश मे उत्पन्न ही नही हुए थे, बल्कि उनकी वीरता. दानशूरता, नीतिष्ठिता और कर्तव्य-पालन के द्वारा अपने प्रतिष्ठित वश की प्रतिष्ठा मे चार चाद लगा दिए थे । आपकी पटरानी अर्थात पार्श्वनाथ जी की माता वामादेवी आदर्श महिला के समस्त सदगुणो से सम्पन्न, पतिव्रता, शीलवती धर्मपरायणा और वात्सल्यभाव की मूर्ती थी ।

प्रथम तो तीर्थंकर स्वयं ही अनेक जन्मो के शुभ सस्कार

से, एक दूसरे पर अपना असर डाले रहते हैं। उसके असर को हम जान पाते हैं, किन्तु उसके कार्यकारण भाव को ठीक तरह नही देख पाते। तीर्थंकर पुण्यप्रकृति, समस्त पुण्यप्रकृतियों मे उत्तम और असाधारण है। वह अखिल विश्व को अपने प्रभाव से अभिभूत कर देती है। अतएव उसके प्रभाव से विस्मयोत्पादक घटनाओं का होना भी सभव है।

पार्श्वनाथजी का वर्ण पन्ने के समान नील था और एक अदभुत आभा से मण्डित था। उनके चरणारविन्द पर सर्प के आकार की रेखाए थी।

जब पार्श्वकुमार आठ वर्ष के हुए तो पढने के लिये उपाध्याय के पास भेजे गए। उपाध्याय ने अ, इ, उ, ऋ आदि स्वर लिख कर अभ्यास करने के लिए दिये। किन्तु आपने उनसे आगे समस्त वर्णमाला लिखकर उपाध्याय को दिखा दी। उपाध्याय ने दस तक गिनती लिखकर दी तो आपने सौ तक लिखकर दिखा दी। उपाध्याय आपकी योग्यता देखकर विस्मित रह गए। फिर तो उन्होंने जो-जो प्रश्न किये, पार्श्वकुमार ने सभी के अत्यन्त पटुतापूर्ण उत्तर दे दिए। कुमार की यह असाधारण योग्यता देखकर उपाध्याय मन मे सोचने लगे-महाराज अश्वसेन ने किस अभिप्राय से इन्हे मेरे पास भेजा है? मैं जो सिखा सकता हू वह सीखे हुए हैं यहां तक कि जो मुझे सीखना है वह भी इन्हें मालूम है। मे इन्हे क्या सिखलाऊ? क्या महाराज ने मेरी परीक्षा लेने के लिए इन्हे मेरे पास भेजा है? आखिर उपाध्याय ने अत्यन्त प्रमुदित होकर कुमार को राजमहल भेज दिया और यह कहला दिया कि कुमार सभी कुछ पढकर आये हैं। मैं इन्हे क्या पढाऊ?

साधारण लोग, जिन्होंने आत्मा और पुनर्जन्म के f

क्या पूछना है ? वहाँ तो समस्त देवगण और इन्द्रगण अपूर्व और अनिवर्चनीय उल्लास से परिपूर्ण हो गए । इधर बनारस मे आनन्द की उत्ताल तरगे उठने लगी । घरघर मे मगलाचार होने लगा—हर्ष बधाइयाँ होने लगी !

वास्तव मे तीर्थङ्कर भगवान् की महिमा अपार और अचिन्त्य होती है । पार्श्वनाथजी का जन्म होते ही समस्त जगत् ने आनन्द का अनुभव किया । ससार के दुःख दूर हो गए । रोग शोक का काम नही रहा । बल्कि जिनकी आखो मे विकृति थी, वह भी देखने लगे । गू गे मनुष्यो मे भी बोलने की शक्ति आविर्भूत हो गई ।

कोई कह सकता है कि आप अपने तीर्थङ्कर की महिमा का चित्र उपस्थित कर रहे हैं मगर सत्य यह है कि तीर्थङ्कर की महिमा का यथातथ्य चित्रण करना ही मानव-सामर्थ्य से परे है तो उसमे अतिशयोक्ति करने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता । वस्तुतः तीर्थङ्कर भगवान की पुण्यप्रकृति का प्रभाव निराला ही होता है । जिनके अमित माहात्म्य से ऊर्ध्वमुख कण्टक भी अधोमुख हो जाते हैं, उनके प्रभाव का वर्णन कैसे किया जा सकता है ?

कहा जा सकता है कि कण्टको को इतनी समझ कहां से आई कि वे उल्टे हो जाएँ ! मगर यह कौन नही जानता कि किसी के यहा पापड बने हो और कोई मासिक धर्मवती महिला उनके निकट से निकल जाय तो पापडो का रग पलट जाता है । वे लाल हो जाते हैं । तो क्या उन पापडो को किसी ने टेलीफोन किया कि तुम लाल हो जाओ ? पापड़ किस प्रकार समझ गये कि ऋतुमती स्त्री के सामिप्य से हमे रग पलट देना चाहिए ? वास्तव मे यहा समझदारी की आवश्यकता नही । पुद्गल परस्पर में, अज्ञात रूप

इसके पश्चात कुमार पार्श्वनाथ ने उस जोडे को अविलम्ब 'ओमसिआउसाय नमः' का पावन मन्त्र सुनाया। मन्त्र के अमित प्रभाव से युगल मे से नाग धरणेन्द्र देव और नागिनी पद्मावती देवी हुई। इस प्रकार —

जलते नाग-नागिनी को प्रभु पारस आप बचाए हो।

ये दोनो पार्श्वनाथजी के शासन सेवक देव हुये। तापस इस घटना से अत्यन्त लज्जित हुआ। जनता पर उसका तो प्रभाव था, वह नष्ट हो गया। उसने संकल्प किया कि अगर मेरी तपस्या का कुछ फल हो तो मैं मरकर इस राजकुमार से बदला लू। यद्यपि राजकुमार का अभिप्राय तापस का तिरस्कार करना नही था। वे तो उसे अहिंसा का महत्व दिखलाना चाहते थे, किंतु अल्पसत्व जीव अपने दूषित विचारो के कारण भलाई को भी बुराई समझ लेते हैं। तापस ने अपने अपमान का तो विचार किया किंतु अहिंसा का विचार नही किया? अन्त मे तापस मरकर भवनपति जाति का मेघमाली हो गया।

कमठ तापस मृत्यु के पश्चात अज्ञान तप के प्रभाव से देव तो हो गया किन्तु कुमार के प्रति उसकी द्वेष भाव बना ही रहा।

प्रारम्भ से ही कुमार पार्श्वनाथ के हृदय मे कितनी उग्र करुणा की भावना थी, इस तथ्य का पता उनके जीवन की अनेक घटनाओ से चलता है। एक घटना का उल्लेख किया जा चुका है दूसरी और लीजिए।

उस समय वाणारसी नगरी के पश्चिम मे कुशस्थल नाम का एक नगर था। उसके राजा प्रसेनजित अपनी सुन्दर कन्या प्रभा-

है ? तपस्या करना और कायक्लेश करना मुक्ति का साधन है। यह मार्ग परम्परा से चला आ रहा है।

कुमार ने गम्भीर और धीरे स्वर मे कहा—कार्य क्लेश सहन करने मात्र से यदि मोक्ष मिल जाय तो नरक मे सभी नारकी जीव कष्ट सहन करने के कारण मोक्ष प्राप्त कर लेते। मोक्ष क्लेश सहन करने से नही, आत्मज्ञान से और सम्यक अनुष्ठान से मिलता है। आत्मज्ञान की प्राप्ति तभी होती है जब दृष्टि शुद्ध और निर्मल हो और सम्यक अनुष्ठान का अर्थ है—प्राणी मात्र को आत्मवत समझकर अहिंसा आदि का आचरण करना। आप तो केवल शरीर को तपा रहे है। इससे आत्मा पवित्र कैसे बन जाएगी ?

यह सुनकर तापस का कोप उग्र रूप धारण कर उठा। उसने कहा — कुमार तुम धर्मद्वेषी जान पडते हो ? तपस्वी को हिंसक कहते हो ?

कुमार ने शात ध्वनि से कहा – हां मैं उस धर्म का विरोधी हूं जिसने अधर्म का स्थान ग्रहण कर रक्खा है। मैं निर्भीक भाव से उस धर्म(!)का विरोध करना चाहता हू जो विश्व को मिथ्या पथ पर घसीटे लिये जाता है और सत्य से विमुख बनाता हैं। और ऐसी साधना से क्या आध्यात्मिक उत्कर्ष प्राप्त हो सकता है जिससे निरपराध पचेन्द्रिय जीवो का वध होता हो ?

यह कहकर कुमार ने तापस की धूनी में सुलगते हुए लक्कड़ को जो फड़वाया तो उसमे झुलसा हुआ नाग नागिन का जोड़ा नकला। फिर कुमार बोले-देखो तापस, तुम्हारी कचहरी मे इस प्रकार निरपराध जीवो की हत्या होती हैं।

इसके पश्चात कुमार पार्श्वनाथ ने उस जोडे को अविलम्ब 'ओमसिआउसाय नमः' का पावन मन्त्र सुनाया। मन्त्र के अमित प्रभाव से युगल मे से नाग धरणेन्द्र देव और नागिनी पद्मावती देवी हुई। इस प्रकार —

जलते नाग-नागिनी को प्रभु पारस आप बचाए हो।

ये दोनो पार्श्वनाथजी के शासन सेवक देव हुये। तापस इस घटना से अत्यन्त लज्जित हुआ। जनता पर उसका जो प्रभाव था, वह नष्ट हो गया। उसने संकल्प किया कि अगर मेरी तपस्या का कुछ फल हो तो मैं मरकर इस राजकुमार से बदला लू। यद्यपि राजकुमार का अभिप्राय तापस का तिरस्कार करना नही था। वे तो उसे अहिंसा का महत्व दिखलाना चाहते थे, किंतु अल्पसत्व जीव अपने दूषित विचारो के कारण भलाई को भी बुराई समझ लेते हैं। तापस ने अपने अपमान का तो विचार किया किंतु अहिंसा का विचार नही किया? अन्त मे तापस मरकर भवनपति जाति का मेघमाली हो गया।

कमठ तापस मृत्यु के पश्चात अज्ञान तप के प्रभाव से देव तो हो गया किन्तु कुमार के प्रति उसकी द्वेष भाव बना ही रहा।

प्रारम्भ से ही कुमार पार्श्वनाथ के हृदय मे कितनी उग्र करुणा की भावना थी, इस तथ्य का पता उनके जीवन की अनेक घटनाओ से चलता है। एक घटना का उल्लेख किया जा चुका है दूसरी और लीजिए।

उस समय वाणारसी नगरी के पश्चिम मे कुशस्थल नाम का एक नगर था। उसके राजा प्रसेनजित अपनी सुन्दर कन्या प्रभा-

वती का विवाह सम्बन्ध कुमार पार्श्वनाथ के साथ करने का निश्चय किया। यह वृतांत सुनकर कलिंग देश के राजा ने कुशस्थल पर चढाई कर दी। उसने प्रसेनजित से कहा-या तो प्रभावती को मेरे सुपुर्द करो या युद्ध करो।

प्रसेनजित अचानक हुए हमले का सामना नही कर सकते थे। अतएव उन्होने सहायता प्राप्त करने के लिये महाराज अश्वसेन के पास अपना दूत भेजा। अश्वसेन ने उसी समय सेना को सन्नद्ध होने का आदेश दिया। कुमार को यह समाचार विदित हुए तो उन्होने अपने पिता के सामने जाकर निवेदन किया- पिताजी, मेरी मौजूदगी मे आपको कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है? मैं आप सरीखे असाधारण शूरवीर नृपति का पुत्र हू। फिर न्याय की असीम शक्ति भी हमारे पक्ष मे है। अतएव हमारी विजय सुनिश्चित है। इस बार मैं युद्ध मे जाना चाहता हूँ।

अश्वसेन को कुमार की बात सुनकर प्रसन्नता हुई किन्तु उन्होने कहा वत्स तुम्हारी भावना श्लाध्य है, किन्तु तुम्हारी वय युद्ध के योग्य नही है। इस बार मुझे ही जाने दो।

कुमार ने दृढता पूर्वक कहा – पिताजी, क्या बालसूर्य भी सघन तमस्तोम को नही भेद डालता? क्या शार्दूल-शावक शृगालो के दल को नही भगा देता? इसी प्रकार मैं भी कलिंगराज के होश ठिकाने ला दूगा।

आखिर कुमार सेना के साथ युद्धभूमि की ओर रवाना हुए। मार्ग मे इन्द्र के द्वारा भेजा हुआ एक सारथी रथ के साथ मिला। उसने कहा - कुमारवर, महाराज इन्द्र ने यह रथ आपकी सेवा मे भेजा है। अनुग्रह करके इसे स्वीकार कीजिए।

की कुत्सित कामना को पलट दिया। वह समझ गया। उसने दूत को उत्तर दिया—कुमार के सन्देश ने मुझे पथभ्रष्ट होने से बचा लिया है! मैं अभी उनकी सेवा मे उपस्थित होता हू।

कलिगराज कुमार के पास आया और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करके अपनी सेना के साथ कलिंग की ओर प्रयाण कर गया।

कलिंगराज के चले जाने पर प्रसेनजित अपनी कन्या को साथ लेकर कुमार की सेवा मे उपस्थित हुए। उन्होने कहा—कुमारवर! आपके प्रताप और प्रभाव का ही यह फल है कि कुशस्थल इस समय कुशलस्थ बन रहा है। आपके पावन पादारविंद न पडे होते तो भयानक रणचडी का नृत्य हो रहा होता! शोणित के नद बह रहे होते! किन्तु धन्य है आपका सौम्य प्रभाव कि आपका आगमन होते ही मानो आग ने शीतलता धारण कर ली! इस महान् उपकार के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने का मेरे पास अन्य कोई साधन नही है। यह कन्यारत्न मेरे पास है इसे स्वीकार कर-कृतार्थ कीजिए।

कुमार ने कहा—महाराज! किसीप्रकार नरसहार का निवारण करना और अनीति को उत्तेजन न मिलने देना ही मेरे यहाँ आने का उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त किसी व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के लिये मैं यहा नहीं आया हूं आप जो भेंट देना चाहते हैं, उसके लिये आभारी हू, किंतु उसे स्वीकार न कर सकने के कारण क्षमा-प्रार्थी भी हू। माता पिता के आदेश के बिना इस सबध मे मैं कुछ नही कह सकता।

यह विनयपूर्ण उत्तर सुनकर प्रसेनजित भी मौन हो गए। कुछ दिन बाद वे महाराज अश्वसेन से मिले। माता - पिता के

आग्रह से कुमार ने विवाह करना स्वीकार किया। वे गृहवास करते हुए भावना की दृष्टि से अलिप्त रहते थे!

कुछ काल गृहवास मे रहने के पश्चात कुमार के अतःकरण मे विद्यमान विरक्ति की भावना ने उग्र रूप धारण किया और एक वर्ष तक वर्षी दान देकर आपने भागवती दीक्षा धारण की। दीक्षा धारण करते ही मन पर्यायज्ञान से विभूषित होकर भगवान आत्मसाधना करते हुए विचारने लगे। एक बार विहार करते आप तापसो के एक आश्रम के समीप होकर निकले। सूर्यास्त होने लगा। अतएव वही एक वटवृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर खड़े हो गए। रात्रि मे भगवान के अनेक जन्मो का विरोधी और पूर्व भव का कमठ तापस-मेघ माली देव वहां आ पहूचा। भगवान पर दृष्टि पड़ते ही वह क्रोध की आग से जल उठा। उसने हाथी का रूप बनाया और घोर चिंघाड़ करता हुआ उनकी ओर लपका भगवान को सूंड़ मे पकड़ कर उसने अनेक प्रकार के कष्ट दिये, किन्तु भगवान मेरु की तरह अचल और अटल रहे।

देव ने भगवान को अविचल देखकर सिंह और व्याघ्र का रूप धारण किया और जितना सता सकता था, सताया। किन्तु लोकोत्तर महापुरुष अपनी साधना से डिगते नहीं! देव ने आखिर अनेक विच्छुओ के रूपकी विक्रिया की, सांप का रूप धारण किया किंतु भगवान को ध्यान से च्युत करने मे समर्थ न हो सका।

वर्षा बरसने लगी : सर्वत्र जल ही जल दृष्टिगोचर होने लगा। भगवान् घुटनो तक, कमर तक, फिर छाती तक, और फिर मुंह तक पानी मे डूब गये। अब भी आपकी ध्यान मुद्रा अखण्डित थी।

भगवान पर आये हुए इस घोर उपसर्ग के कारण धरणेन्द्र का आसन काप उठा। उसने अवधिज्ञान से भगवान् के उपसर्ग का वृत्तान्त जाना और उसी समय वहा आ गया। मेघमाली देव की करतूत पर उसे बहुत क्रोध हुआ। उसने मेघमाली को बुरी तरह फटकार कर कहा—दुरात्मन् ! तू खद्योत होकर सूर्य का पराभव करना चाहता है ? तुझे ज्ञात क आध्यात्मिक शक्ति विश्व मे सर्वोत्कृष्ट और अजेय है ! तू इस शक्ति को पराजित करने की चेष्टा करके पाप का उपार्जन क्यो कर रहा है ?

धरणेन्द्र की फटकार सुनकर मेघमाली अतीव लज्जित हुआ। उसने प्रभु से क्षमायाचना की। धरणेन्द्र पद्मावती के साथ अपने स्थान पर चला गया। दीक्षा धारण करने के बाद चोरासीवें दिन भगवान को केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। अब प्रभु अरिहन्त होकर विचरने लगे।

तीर्थंकर भगवान केवल ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात ही धर्मोपदेश प्रारभ करते है। अतएव केवलज्ञानी होने पर पार्श्वनाथ ने जगत के जीवों के कल्याण के लिए मुक्तिमार्ग का उपदेश दिया।

एक बार भगवान के ज्येष्ठ अन्तेवासी ने उनसे प्रश्न किया-भगवन् ! कमठ कैसे आपका विरोधी बना और क्यों

उसने आपको कष्ट दिया? इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने फर्माया—कमठ का जीव नौ वर्षों से हमारे साथ था। पूर्व के नौवें भव मे हम दोनो सगे भाई थे। हमारे पिता राज्य के मत्री थे। पिताजी के देहावसान के अनन्तर हमारे इस बड़े भाई को राजा ने मत्रीपद पर नियुक्त किया। मैं साधु सन्तो की सगति मे रहता था और इस कारण मुझे शील धर्म प्यारा लगता था। इसने किसी प्रकार मेरी पत्नी को वश मे कर लिया। मैने राजा के समक्ष फरियाद की तो इसे देश निर्वासन का दड दिया गया। यह तापस बनकर तपस्या करने लगा। मैंने सोचा-आखिर है तो मेरा भाई! तापस बन गया है तो मुझे उसके दर्शन करने जाना चाहिए! यह विचार कर मैं दर्शन करने गया और ज्यो ही नमस्कार करने के लिये मैंने मस्तक झुकाया कि इसने एक पत्थर मार कर मेरे प्राण लेलिये।

इसके बाद भी इसका वैर उपशात न हुआ। एक जन्म मे मैं मुनि बना और यह शिकारी बना और इसने तीर मारकर मेरे प्राणो का अन्त कर दिया।

इस प्रकार पिछले नौ भवों से यह मेरा विरोधी है। वैर की परम्परा कितनी लम्बी चलती है और कितना दुष्परिणाम उत्पन्न करती है, यह समझने के लिए कमठ और मेरे जीवन का इतिहास सहायक है।

व्यक्त करते थे, किन्तु जैन साहित्य के अब तक के प्रचार और प्रकाशन से उनकी शका दूर हो गई है और अब वे प्रायः निर्विवाद रूप से ऐतिहासिक महापुरुष माने जाते हैं। हमारा तो ख्याल है कि जैसे-जैसे जैनसाहित्य का प्रचार बढेगा, उसकी ऐतिहासिक परम्परा पुरातन से पुरातन सिद्ध होती जाएगी। किन्तु वणिक समाज को साहित्य की ओर जो उपेक्षावृत्ति है, वह खेदजनक है। उसने अभी तक साहित्य के महत्त्व को समझा ही नही है। यही कारण है कि आज हमारे समस्त आगम भी व्यवस्थित रूप से लोक भाषा में अनूदित होकर प्रकाश मे नही आये और जो प्रकाश मे आये वे सुलभ नही हैं!

विक्रम स० १९८४ मे, जब मैं यहां (पाली) आया था तो यहा की जनता ने चार अगते पलवाने का वचन दिया था और मुझे यह जानकर सन्तोष है कि वे अभी तक पाले जा रहे हैं। उन चार अगतो मे महावीर जयन्ती, पार्श्वनाथ जयन्ती, सवत्सरी और निर्जला एकादशी के अगते हैं। जैन और वैष्णव सभी भाई मिल कर इनका पालन करते कराते हैं। आज भगवान पार्श्वनाथजी की जयन्ती का अगता आपके यहाँ पाला जा रहा है। इसके लिए मैं पाली की धर्म प्रेमी जनता की सराहना करता हू।

भगवान पार्श्वनाथ का उपदेश बडा ही उत्तम, कल्याणकारी और प्रशस्त है। इहलोक और परलोक मे अत्यन्त मगलमय है। वह आत्मा को, मानव जाति को और विश्व को ऊँचा उठाने वाला है। उन्होने उपदेश दिया कि तुम अपने आपको सुखी बनाना चाहते हो तो जुआ मत खेलो, क्योकि जुआ खेलने वाला निरन्तर आर्त्तध्यान मे फसा रहता है और

उसका चित्त ईश्वर भजन मे नही लगता । सट्टा भी जुआ का ही एक अंग है । सटोरिया का मन रोटी खाने मे भी नही लगता तो भगवद्भक्ति मे कैसे लग सकता है ? वह अपने बाल बच्चो की भी चिन्ता नहीं करता तो ईश्वर की चिन्ता किस प्रकार कर सकता है ? सट्टेबाज एक रुपये के साथ सौ चिन्ताएं उपार्जन करता है और जब अपनी पूंजी गंवाता है तो सुख-शान्ति भी गंवाता है । उसे न लोभ मे सन्तोष और न हानि मे ही सन्तोष । जब देखो तभी हाय-हाय ! इस प्रकार जीवन की शान्ति को हरण करने वाले और आत्मा का पतन करने वाले जुए का परित्याग करना ही श्रेयस्कर है !

फिर भगवान ने मांसभक्षण का निषेध किया । मांसाहारी के अन्तःकरण मे करुणा का एक भी कण शेष नही रहता ! मांसभक्षण करना अत्यन्त घोर पैशाचिक कृत्य है । भगवान् ने मदिरापान करने का भी निषेध किया । परस्त्री की ओर बुरी नजर डालने का भी निषेध किया । शिकार करने और वेश्या-गमन का पाप न करने के लिए समझाया । भगवान् ने यह भी समझाया कि आपस मे प्रेम के साथ रहो– सब के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करो । किसी के साथ लड़ाई झगड़ा मत करो । संसार मे प्रेम बड़ी चीज है ! प्रेम मे परमात्मा का वास है । प्रेम का माधुर्य रसना को नही वरन् अन्तरात्मा को भी तृप्त करने वाला है । प्रेम मे ही सगठन है । प्रेम के अभाव मे सगठन नही होता और जहां सगठन नही होता वहां एकता नही होती । एकता के बिना कल्याण नही । जहां फूट पड जाती है वहां विनाश के सिवाय और क्या हो सकता है ?

भगवान पार्श्व कही जा रहे थे एक लड़का ठाकुर का

एक ब्राह्मण का, एक वैश्य का और एक नाई का था। मार्ग मे उन्हे ईख का खेत मिला। वे चारो खेत मे घुस गए और ईख तोड कर खाने लगे। खेत का मालिक किसान आया और उसने कहा क्या कर रहे हो? तब चारों अकड कर बोले कर क्या रहे है? ईख खा रहे हैं! चुपचाप खडा रह!

किसान ने सोचा-मैं अकेला हूं और यह चार हैं! यो काम नही चलेगा। युक्ति से काम लेना चाहिए! यह सोचकर उसने कहा-अच्छी बात है। यहां आइये, बैठिये! मैं अच्छी-अच्छी ईख तोडकर आपको देता हू। चारो लडके किसान के पास आ गए। तब किसान ने ठाकुर के लडके से कहा देखिए कु वर साहब! आप मालिक हैं, ब्राह्मण हमारे गुरु है और महाजन भी ठीक है, परन्तु यह नाई का लडका किस काम का है? मैं तो इसकी खबर लूंगा!

तीनो बोले—बात तो ठीक है, नाई का लडका किस काम का!

इतना सुनते ही किसान ने उसको पीटा और उसकी मुश्के बांध दी! तत्पश्चात् किसान आकर कहने लगा– और यह महा-महाजन का लडका भी किस काम का है? आप काम के और पुरोहित जी काम के हैं। यह तो ब्याज खाऊ है! मैं तो इसकी भी खबर लू गा? दोंनो लडको ने कहा हाँ, बात तो ठीक है! इच्छा हो सो करो!

बस, किसान ने महाजन के लडके की भी मरम्मत की और से भी बांध दिया। तत्पश्चात् किसान ने कहा-कु वर जी, आप मालिक हैं, परन्तु यह पुरोहित जी का छोकरा --

किस काम का है ? यह तो चोरियां करता-फिरता है । कभी काम पड़ता है तो पहले टका धरवा लेता है । मैं तो इसकी भी खबर लूंगा । ठाकुर के लड़के ने इस बात का विरोध नहीं किया तो किसान ने उसके भी हाथ बांध कर पटक दिया ।

अब रह गया अकेला ठाकुर का लड़का । किसान ने उससे कहा- अपना भला चाहो तो सीधे गांव मे चलो, अन्यथा तुम्हारी भी यही दशा करूंगा ।

किसान चारों को लेकर गांव मे आया । लोगों ने पूछा— अरे, यह क्या ? चारों को अकेला बांध लाया ? तब किसान ने हंस कर कहा— मैंने राजनीति से काम लिया है ।

किसान चारों लड़कों को ठाकुर के पास ले गया । ठाकुर ने सब वृत्तान्त जानकर किसान की बुद्धि की प्रशंसा की और कहा-तूने इन लड़कों को ही शिक्षा नहीं दी, किन्तु सारे गांव को शिक्षा दी है । वास्तव मे जहां एकता और संगठन है वहां शक्ति है, बल है, और विजय है, जहां फूट है वहां बर्बादी है, विनाश है और पराजय है । यह लड़के एक होते तो इनकी यह दशा न होती !

देवता निर्मित होते थे। देववृन्द द्वारा पुष्पवृष्टि होना भगवान के अष्ट महाप्रातिहार्यों मे से दूसरा प्रातिहार्य है। यह तीर्थंकर भगवान के प्रकृष्टतर पुण्य का फल है। भगवान् ऋषभदेव ऐसे महान् पुण्यफल से युक्त थे। उन्होने जगत् का लौकिक एव लोकोत्तर-दोनो प्रकार का अपूर्व कल्याण किया है। प्रभु ऋषभ-देव को हमारा बार-बार नमस्कार हो !

भाइयो ! फूल पाँच वर्ण के होते हैं—काले, नीले, पीले, लाल और श्वेत। देवता श्वेत वर्ण के पुष्पो की वर्षा करते हैं। यह पुष्प मानव-जगत को यह सन्देश देते हैं कि जैसे हम श्वेत-उज्जवल हैं, उसी प्रकार हे मनुष्यो ! तुम भी अपने अन्त करण को निर्मल धवल बनाओ। अन्तःकरण मे पाप की कालिमा या कषायो का रग मत चढने दो। उज्ज्वल भावना जिस अन्तःकरण मे होती है उसी मे भागवत प्रकाश प्रकट होता है। इसके विपरीत जिनके चित्त मे पाप की कालिमा होती है उन्हे नरक का अधिकारी होना पडता है। नीले रग के चित्त वाले तिर्यंच योनि प्राप्त करते है, पीत रग के हृदय वाले मनुष्य गति पाते हैं ! जिसका चित्त सर्वथा विशुद्ध हो जाता है, वह भवभ्रमण का अन्त करके मुक्ति को प्राप्त करता है। अतएव वीतराग भगवान का उपदेश है कि अपने चित्त को सदैव शुद्ध और पवित्र रखने का प्रयत्न करो। जिसके विचार पवित्र हाते हैं, उसका उच्चारण भी अच्छा होता है और आचार भी उत्तम होता है। और जिसका हृदय, वाणी और चेष्टा पवित्र होती है, उसका जीवन मगलमय बन जाता है !

भगवान ने दान, शील तप और भावना के रूप मे चार के धर्म का उपदेश किया है। भावना का अर्थ विचारों

अधिक दिन टिकने वाली नही है। नवजागरण बड़ा बलवान है और धनी-निर्धन के बीच का वृहद अन्तर अब रहने वाला नही है। अतएव पहले से ही समझ बूझकर अपनी सम्पत्ति को गरीबो की सेवा-सहायता मे समर्पित करो। उस पर से ममता घटाओ।

भगवान पार्श्वनाथ का सन्देश अमर है और महान उत्कर्ष करने वाला है। जो भव्य जीव उसके अनुसार आचरण करेगा, उसका जीवन इस लोक मे भी और परलोक मे भी महान और उत्कृष्ट बन जाएगा।

इतिहास वेत्ताओ का कथन है कि भगवान पार्श्वनाथ के समय मे, धर्म के सम्बन्ध मे सैकड़ो प्रकार की भ्रमणाएँ फैली हुई थी। जनता धर्म के मर्म को-धर्म की आत्मा को-भूली हुई थी। बाह्य क्रियाकाण्ड, कायक्लेश, अज्ञानतप और पशुहिंसात्मक यज्ञ-याग मे ही लोगो ने धर्म की कल्पना कर रखी थी ऐसे समय मे भगवान पार्श्वनाथ ने केवलज्ञान प्राप्त करके धर्म का वास्तविक स्वरूप समझाया। उन्होने अध्यात्म का शिक्षण देकर मनुष्यो को मोक्ष मार्ग मे लगाया।

पदवी पाता है और अनन्त, अव्याबाध, असीम आनन्दमय मुक्ति के सुखो का स्वामी बनता है।

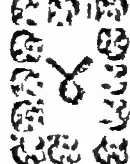
भावना एक साचा है और उसी साचे मे मनुष्य का जीवन ढलता है। स्पष्ट है कि साचा जैसा होगा, जीवन भी वैसा ही बनेगा। इसलिए कहा गया है कि—

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।

अर्थात्--जिसकी जैसी भावना होती है, उसे उसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है—

अन्य-अन्य धर्माचरण करने के लिए-कुछ द्रव्य खर्च करना पडता है या कष्ट उठाना पडता है किन्तु अपनी भावना को शुद्ध रखने के लिए न तो कानी कौडी भी खर्च करनी पडती है। और न कोई कष्ट उठाना पडता है। फिर भी आत्मा का अनन्त कल्याण हो जाता है। ऐसी स्थिति मे क्यो न अपने विचारो को पवित्र बनाने का निरन्तर प्रयत्न किया जाय?

आश्चर्य है कि मनुष्य अपने विचारो को व्यर्थ ही दूषित बनाते है। दूसरो के धन-जन की हानि का विचार करने से, पराया बुरा सोचने से क्या उसकी हानि हो जायेगी? उसका बुरा भला तो उसके कर्मो के अधीन है। उसके अशुभ कर्म का उदय होता तो उसकी हानि होगी और शुभ कर्म का उदय होगा तो तुम्हारे लाख बुरा सोचने पर भी उसका कुछ बिगडने वाला नही है। किंतु तुम व्यर्थ ही पापकर्मो का भार माथे पर चढा लोगे। भगवान ने इस प्रकार के चिंतन को अपध्यान कहा है और अपध्यान अनर्थ दण्ड मे गिना गया है। अपध्यान करके मनुष्य निरर्थक ही पापकर्म बध करता है।



भावना भयनाशिनी



: स्तुति :

मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात -
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥

समझ लेते है। किन्तु सूर्य देव वास्तव मे उस भवन मे निवास करने वाला देवता है और हजारो देवो का स्वामी है। वह अतीव तेजधार देव हैं!

हाँ तो भगवान महावीर स्वामो जब राजगृह नगर के गुणशील चैत्य मे पधारे तो सूर्य देव के मन मे आया कि मैं भी प्रभु के सत्सग मे चलू ! उसे अवधिज्ञान से ज्ञान हो गया कि प्रभु इस समय राजगृह मे विराजमान हैं।

इस प्रकार निश्चय करके उसने दूसरे विमान की विक्रिया की और उसमे बैठकर, दिव्य ऋद्धि के साथ भगवान् के चरणो मे उपस्थित हुआ। उसने अपना विमान ईशान कोण मे छोड दिया और प्रभु के पास पहुच कर, तीन बार प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया। तत्पश्चात सूर्यदेव नेभ गवान् से निवेदन किया प्रभो ! आप तो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। विश्व का कोई भी रहस्य आपसे छिपा नही है। किन्तु मैं इन मुनिराजो और आर्यिकाओं को दैविक ऋद्धि दिखलाना चाहता हूं और सर्व साधारण को यह बतलाना चाहता हू कि कैसे-कैसे सत्कर्म करके प्राणी इस ऋद्धि का अधिकारी बनता है !

यह कह सूर्यदेव ने बत्तीस प्रकार के नाट्य प्रदर्शित किये। बत्तीसवे नाट्य में उसने दिखलाया कि किस प्रकार प्रभु वर्द्धमान की आत्मा स्वर्ग से अवतरित हुई ? किस प्रकार त्रिशला माता की कुक्षि मे प्रविष्ट हुई ? किस प्रकार इन्द्रो ने भगवान का जन्म महोत्सव मनाया ?-सुमेरु पर ले जाकर अभिषेक किया ? तत्पश्चात भगवान का बाल्यकाल, अभिनिष्क्रमण, घोर परिषह-सहन, वलज्ञान प्राप्त करके धर्मोपदेशदान और अन्त में किस प्रकार गवान की आत्मा को शरीर त्याग कर निर्वाण लाभ

धान्य से सम्पन्न और बहुत सुखी थे। उसी नगरी मे सुप्रतिष्ठित नामक एक गाथापति निवास करता था। वह राजसम्मानित धनवान और देश विदेश मे भी प्रतिष्ठित था। वह मर्यादा के अनुकूल प्रवृति करने वाला तथा धर्मनिष्ठ था। इसी कारण सर्वत्र वह आदर का पात्र माना जाता था।

भाइयो ! अपने कुल की और समाज एव धर्म की आदर्श मर्यादाओ के प्रति गभीर आस्था और निष्ठा रखकर उनका अनुसरण करने वाला विवेकवान् व्यक्ति ही आदर-सन्मान का पात्र होता है। जो समीचीन मर्यादाओ को भग करके स्वैर आचार करता है और औचित्य अनौचित्य का विचार न करके व्यवहार करता है, जो अपने पूर्वजो की प्रतिष्ठा को। कलकित करने वाली प्रवृत्ति करता हैं और पुरखाओ के उपार्जित यश को मलीन बनाता है, वह जनता की दृष्टि मे सन्मान का भाजन नही बनता।

सुप्रतिष्ठित गाथापति या और गाथापति का पद उसी को मिलता है जो आचार-विचार और सम्पत्ति की दृष्टि से बडा आदमी गिना जाता हैं। गाव मे बडा आदमी कौन कहलाता है ? जो स्वय मर्यादा मे चलता है और दूसरो को चलता हैं ! मर्यादाशील पुरुष सर्वत्र सन्मान का पात्र होता है। धनवान होने पर भी जो मर्यादा के विरुद्ध व्यवहार करता है, जो धन के उन्माद मे पागल होकर दूसरों को नगण्य समझता है, गरीबो पर करुणा नहीं करता बल्कि उन्हे चूसने और लूटने का प्रयत्न करता है, लोग उसके सामने 'आइए, पधारिए' भले कह दें, किन्तु पीछे यही कहते हैं कि पाड़ा है ! घोडे की पूंछ बडी है तो किस को ? वह अपनी ही मक्खिया उड़ाने के लिए

जान लड देगा। सम्पूर्ण शक्तियां लगाकर भी अपने वचन का निर्वाह करेगा।

अकसर देखा जाता है कि कई लोग ऐसे वायदे कर बैठते हैं कि उन्हें पूरा करना उन्हे कठिन होता है। कई तो उन्हे पूरा करने की परवाह भी नही करते! किंतु ऐसा करना अपनी प्रतिष्ठा को आप ही भग करना है। सभव है, कुछ लोग थोडे समय तक उनकी बातो मे आ जाएँ और उनके कथन पर विश्वास भी कर ले किंतु बाद मे तो उसकी अप्रतीति होना निश्चय ही है। शीघ्र ही लोग समझ लेते हैं कि यह व्यक्ति कहने वाला है, करने वाला नही। यह ढपोरशख है जो सिर्फ वायदा करना जानता है, उसे पूरा करना नही जानता है, फिर उसकी साधारण से साधारण बात पर भी कोई विश्वास नही करता।

बडप्पन का मान पाने के लिए अनिवार्य है कि आप अपने वचन का मूल्य समझें। जो मनुष्य अपने वचन की स्वय प्रतिष्ठा नही करता, वह दूसरो से प्रतिष्ठा कराने की आशा किस प्रकार कर सकता है? जो कार्य तुम से नही हो सकता, उसके लिए साफ शब्दो मे इन्कार कर सकते हो। कौन तुम्हारी जीभ पकड ? किन्तु ऐसा न करके, और मन ही मन यह जानते हुए भी कि यह कार्य मुझ से नही हो सकेगा, करने की हाँ भर लेते हो और फिर उसे करने के लिये कुछ परवाह नही करते तो लोग कब तक तुम्हारे वचनो पर विश्वास करेंगे? क्यो इस प्रकार आत्मवचना करके अपनी वाचिक प्रतिष्ठा पर पानी फेरते हो? क्यों अपने आपको अप्रतीति का पात्र बनाते हो? स्मरण रखते तुम्हारे वचन तुम्हारी प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा के सब से बड़े साधन। अतएव जिस वचन को पूर्ति करने का

उसने गले मे पडी हुई फूलमाला उतार दी, और दोनो हाथ जोड लिये। वह भगवान के सन्निकट पहुचा और तीन प्रदक्षिणा देकर यथाविधि वन्दन-नमस्कार करके उचित आसन पर बैठ गया। प्रभु की वाणी का प्रवाह बहने लगा—

भव्य पुरुषो ! यह संसार असार है। आधियो,व्याधियो और उपाधियो से परिपूर्ण है। भाँति-भाँति की मानसिक चिन्ताएँ और शारीरिक वेदनाएँ, प्राणियो को व्याकुल बनाये रखती। तरह तरह की अभिलाषाएँ मनुष्य को शान्ति का स्वप्न भी नही देखने देती। क्षण-क्षण मे नवीन-नवीन उत्पन्न होने वाली यह अभिलाषाएँ मनुष्य को उसी प्रकार नाच नचाती हैं जैसे मदारी बन्दर को नचाता है। मनुष्य इनके चक्कर मे पड कर अपनी शान्ति और निराकुलता गँवा बैठता हैं और उनकी पूर्ति में लग जाता है। कदाचित कोई अभिलाषा पूर्ण हो भी जाय तो भी शान्ति कहाँ ? एक अभिलाषा की पूर्ति के साथ अनेक नूतन अभिलाषाएँ उत्पन्न होकर फिर नये सिरे से मनुष्य को परेशान करने लगती हैं। इस प्रकार अभिलाषाओ के वशीभूत हुआ मनुष्य कभी भी सुख-शान्ति प्राप्त नही कर पाता। असन्तुष्टि रूपी राक्षसी सदैव उसे अपने पजो मे दबाये रहती है। सासारिक सुख के प्रभुततर साधन मनुष्य को सुखी बनाने मे समर्थ नही हैं, यह बात अनुभव-सिद्ध है। यही नही, बल्कि तात्त्विक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात हुए बिना नही रहता कि जीवन को सुखमय और शान्तिपूर्ण बनाने के लिए ज्यो-ज्यों बाह्य पदार्थों को अपनाया जाता है, त्यो-त्यो सुख मृगतृष्णा सिद्ध होता है और शान्ति, घोर अशान्ति के महासागर मे विलीन हो जाती है। असल मे परपदार्थो का सयोग ही दु:खों की अनवच्छिन्न

मनुष्य, परिग्रह के प्रति अनासक्त हो जाता है। वह प्रथम तो परिग्रह का त्याग करके अकिंचन अनगार ही हो जाता है। यदि ऐसा न हो तो भी रुक्ष भाव से ससार मे रहता हुआ भी, जल मे कमल की तरह अलिप्त रहता है। वह कुटुम्ब-परिवार मे रहता है, उसका पालन पोषण करता है. कुटुम्बियो के प्रति अपना जो कर्त्तव्य है उसका समीचीन रूप से निर्वाह भी करता हैं, किन्तु मोह मे नही फसता। सयोग और वियोग होने पर हर्ष-विषाद मे पडकर परमार्थ को नही भुलाता। वह भले ही व्यापार-धन्धा आदि करके धनोपार्जन करता है किन्तु धन के लिए अनीति और अप्रमाणिकता का प्रयोग नही करता। छल-कपट करके, झूठ बोलकर या ऐसे ही किसी दूसरे अयोग्य उपाय से धन कमाने की अपेक्षा वह निर्धन रहना ही पसन्द करता है। वह अपने पडौसियों, सेवको तथा अन्य सम्पर्क में आने वालो के प्रति दयामय, प्रेमपूर्ण और मधुर व्यवहार करता है। वह एक आदर्श गृहस्थ का उदाहरण बन कर रहता है।

ऐसा सम्यग्दृष्टि सदाचारी गृहस्थ वीतराग प्ररूपित धर्म को अपने आचरण से दिपाता है। उसके गृह के भीतर और बाहर के व्यवहार को देखकर ही लोग उसके धर्म की प्रशसा करते हैं! कहते हैं—जिस धर्म के अनुयायी गृहस्थ भी ऐसे उज्जवल आचरण मे परायण हैं, उस धर्म की महत्ता का क्या कहना है। इस प्रकार वह प्रभावना अग का जीता-जागता नमूना बन जाता हैं।

इस प्रकार का गृहस्थ कभी राजदेय की चोरी नही करता, नकली वस्तु को असली कह कर नही बेचता, महारभ की जीविका नही करता। वह अल्पारभी, अल्पपरिग्रही और

कैसे हो सकता है ? वास्तव मे धर्म उसी का है जो उसका आचरण करता है। जो धर्म रूपी कल्पपादप की पावनी छाया मे आएगा, उसी का कल्याण होगा। धर्म के लिए दूसरी उपमा जहाज की दी जा सकती है। जैसे जहाज अतल जलधि के परले पार पहुँचा देता है, चाहे कोई भी बैठने वाला क्यो न हो, उसी प्रकार धर्म ससार सागर के पार पहुचा देता है, चाहे कोई भी उसकी आराधना करे। धर्म के लोकोत्तर पोत पर हरिकेशी आरूढ हुए तो वे भी पार हुए और अर्जुन माली जैसे सवार हुए तो वे भी छह महीने मे केवली होकर मोक्ष मे जा पहुँचे !

हाँ, तो भगवान पार्श्वनाथ ने धर्म का महात्म्य प्रकट करते हुए धर्मदेशना दी। धर्मदेशना सुनकर सुप्रतिष्ठित गाथापति को ससार की असारता का आभास होने लगा। उसने कहा—प्रभो ! हे पतित पावन ! हे जगदानन्दन ! मैं आपके पावन चरण-शरण मे आना चाहता हू ! ज्येष्ठ पुत्र को घर का भार सौंप कर आपके समीप मुनिधर्म अगीकार करना चाहता हूं। भगवान ने उत्तर मे कहा—'जहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।'

सुप्रतिष्ठित भगवान को वन्दना- नमस्कार करके अपने घर पहुचा। उसने बड़े लड़के को कह दिया कि अब यह घर तुम्हारे अधीन है। मैंने पूर्वजन्म मे जो सुकृत किये थे, उनके फल स्वरूप यह ऋद्धि प्राप्त हुई है। यह ऋद्धि भोगकर मैंने अपने पूर्व-पुण्य का व्यय किया है। अब यदि धर्म का आचरण न किया तो आगे क्या गति होगी ? अतएव शेष जीवन मे धर्म का आचरण करने मे ही व्यतीत करूंगा और प्रभु पार्श्वनाथ के चरणो का ... होकर मुक्ति की साधना करूंगा।

भावना से करे। साथ ही, सामायिक में जो पवित्र और उच्च संस्कार आत्मा मे संचित करते हैं, उन्हे स्थाई बनाकर जीवन व्यवहार मे भी प्रयुक्त करें। आपके जीवन मे सर्वत्र एक रूपता आनी चाहिये। समग्र जीवन उज्जवल भावना और पवित्र आचार से परिपूर्ण होना चाहिये अपनी भावना को निर्मल बनाऐंगे तो शीघ्र ही उस उच्चतम पद को प्राप्त कर सकेंगे जहा आनन्द ही आनन्द है ! और अव्याबाध, अक्षय और असीम आनन्द का अन्त नही है।

२६-१२-४८ }
पाली



भावना से करे। साथ ही, सामायिक में जो पवित्र और उच्च संस्कार आत्मा में संचित करते हैं, उन्हे स्थाई बनाकर जीवन व्यवहार मे भी प्रयुक्त करें। आपके जीवन मे सवत्र एक रूपता आनी चाहिये। समग्र जीवन उज्जवल भावना और पवित्र आचार से परिपूर्ण होना चाहिये अपनी भावना को निर्मल बनाएँगे तो शीघ्र हो उस उच्चतम पद को प्राप्त कर सकेंगे जहा आनन्द ही आनन्द है! और अव्याबाध, अक्षय और असीम आनन्द का अन्त नही है।

२६-१२-४८ }
पाली



घोषणा किया करते थे। देवदुन्दुभि को वह उच्चतर मधुर ध्वनि मानो धर्म के महान् राजा-प्रभु की-विजय की घोषणा करती थी और ससार के प्राणियो को चेतावनी देती थी कि धर्मतीर्थङ्कर ने इस क्षेत्र को पावन किया है। तुम्हे शुभ समागम का अपूर्व अवसर मिला है। देखो इस अवसर को व्यर्थ न गवाना! सर्वज्ञ सर्वदर्शी लोकपावन साक्षात् धर्मतीर्थंकर का समागम होना ससार मे सबसे बडा सौभाग्य है! इससे बड कर और कोई सौभाग्य नही हो सकता। इस प्रकार भगवान् के सर्वोत्कृष्ट यश को प्रकट करने वाली देवदुदुभि की घोषणा को सुनकर न मालूम कितने भव्य प्राणियो के अन्तःकरण मे आल्हाद की ऊर्मियाँ उमड पडती होगी। धन्य था वह काल और धन्य था वह क्षेत्र जिसमें धर्मतीर्थङ्कर साक्षात् विचरते थे। और धन्य थे वे प्राणी जिन्हें तीर्थङ्कर भगवान् के दर्शन करके अपने नेत्रो को, अपने जीवन को सफल बनाने का अवसर मिला!

ऐसे हैं भगवान् ऋषभदेव! उन्ही को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

देवदुन्दुभि की बात सुन कर कोई कह सकता है कि जब देवगण आकाश मे दुन्दुभिनाद करते हैं तो अयतना होती है अथवा नही? अगर अयतना होती है तो भगवान् मना क्यो नही कर देते? या जहा दुन्दुभिनाद होता है वहाँ जाते ही क्यो हैं? और यदि अयतना नही होती तो आज कल साधुओ के स्वागत मे ढोल आदि बाजे बजवाने मे क्या हानि है? इस सम्बन्ध में यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि तीर्थङ्करो की रीति और है और साधारण साधुओ की

भी निमित्त मिलने पर कषायो के उदय के अधीन हो जाता है। अतएव कषाय के निमित्तो से बचना ही उसके लिये लाभप्रद है। किन्तु तीर्थङ्कर भगवान् की महिमा निराली ! कोई भी निमित्त, चाहे वह कितना ही प्रबल हो, उन्हे अपने अभिभूत नही कर सकता । इसी कारण वह कल्पातीत है और सामान्य मुनि कल्पस्थित है।

किसी के स्वागत मे बाजा बजाना उसके अहकार को जागृत कर सकता है। अतएव अहकार वृत्ति के उद्रेक से बचने के लिए भी साधु अपने स्वागत मे बाजे बजवाने का निषेध करते हैं।

स्वय मेरे जीवन मे कई बार ऐसे प्रसग आए। एक बार पालनपुर मे मैंने कुछ मुनियो के साथ चातुर्मास किया। पालनपुर के नवाब भी व्याख्यान सुनने आए। सुनाने को मेरे पास क्या था ? वही भगवान की वाणी था ! उसी वाणी का आधार लेकर मैंने अपनी भाषा मे उन्हे और दूसरे श्रोताओ को उपदेश दिया। नवाब साहब प्रसन्न हुए। उन्होने मुझे भेट देने के लिए दुशाले का एक जोडा मगवाया। वे जैन मुनियो की आचार प्रणाली से पूरी तरह परिचित नही थे। मैंने उन्हे थोडे से शब्दो मे परिचय दिया और दुशाला लेने से इन्कार कर दिया ।

सम्भवतः इससे उनका मेरे प्रति अधिक आकर्षण बढा। उन्होने अपनी रियासत की तमाम तहसीलो मे आदेश भेज दया कि जहा कही महाराज महुँचे, उनका स्वागत किया । अब तो मैं जहाँ कही भी पहुचता, लोग बाजे वजाते हुए गत के लिए आते। मगर मुझे स्पष्ट कहना पडा कि वाजे ाओगे तो हमे लौट जाना पडेगा।



ज्ञानी की महिमा



स्तुति

गम्भीरताररवपूरितदिग्विभाग -
स्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः ।
सद्धर्मराजजयघोषणाघोषकः सन् ,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥

भगवान ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि - हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? प्रभो ! आपके गुण कहा तक गाये जाए ?

भगवान् ऋषभदेव इस भारत भूमि में, ग्राम, नगर आदि मे विहार करते थे जिस किसी भी नगर मे या ग्राम मे आपका पदार्पण होता था तो वहाँ आकाश में अत्यन्त गभीर, दशो दिशाओ को पूर्ण करने वाली देव-दुन्दुभि द्वारा देवतागण

प्रवाह मे अपनी आत्मा की मलीनता धो लो ! यह अपूर्व-एकदम अनूठा पुण्य-प्रसग है जगत् के जीवो ! जो तुम्हे अनन्त पुण्य क परिपाक से प्राप्त हुआ है !

भाइयो ! धर्मकृत्य करने के लिये दूसरो को प्रेरणा करना साथ मे लाना, उनका उत्साह बढाना और उन्हे यथाशक्ति सुविधा कर देना भी महान् लाभ का कारण है। प्रेरणा करके धर्म श्रवण करने के लिये ले जाने वाला पुण्य का उपार्जन करता है। एक व्यक्ति पचोले-पचोले की तपस्या करता है और दूसरा किसी को धर्म के मार्ग पर लगाता है तो इस व्यक्ति के बराबर तपस्या करने वाला नही है। यह बात पूज्य श्रीलालजी महाराज ने भी कही थी। साराश यह कि धम की दलाली करने मे बहुत बड़ा लाभ होता है।

चित्त प्रधान का आख्यान जैन साहित्य मे अमर है। उसने केशी स्वामी को आमन्त्रित किया और प्रदेशी जैसे निर्दयहृदय, घोर हिंसक एव नास्तिक राजा को बड़े कौशल के साथ मुनिराज के पास पहुँचाया। नतीजा यह हुआ कि अधर्मी राजा धर्मी बन गया। प्रजा को निरन्तर कष्ट देने वाला प्रजावत्सल हो गया ! वह दयालु और दानी बन गया !

कई लोग ऐसे आलसी होते हैं कि व्याख्यान मे आते समय अपने पडौसी को भी नही कह सकते कि चलो भाई, धर्मकथा सुन आएँ ! वे सोचते हैं कि क्या मालूम मेरे कहने पर ० चलेगा या नही ? पर ऐसा सोचने का कोई कारण नही किसी से धर्मकथा सुनने के लिये चलने को कहते हो और नही चलता तो भी तुम्हे तो एकान्त लाभ ही है ! तुम्हारी द्भावना का फल तुम्हे मिल ही जाएगा।

बात और है। तीर्थङ्कर भगवान् कल्पातीत हैं और हम लोग कल्पातीत नही हैं। भगवान् के लिए कोई निश्चित कल्प नही है। वे अपने विशिष्ट ज्ञान मे देखकर जो योग्य समझते हैं, उसी के अनुसार व्यवहार करते हैं, किन्तु सामान्य साधु तीर्थङ्कर भगवान् को बराबरी नही कर सकता। सामान्य मुनि मे न उतना ज्ञान होता है और उतना उत्कृष्ट चारित्र ही होता है। उसे तो भगवान् की वाणी के ही अनुसार चलना होता है, अपनी बुद्धि अथवा धारणा के अनुसार नही।

तीर्थङ्कर भगवान् आध्यात्मिक उत्थान की उच्चतर भूमिका पर पहुँचे होते हैं। उनकी रग-रग मे विरक्ति भरी होती है। इन्द्रियो के अनुकूल एव मनोज्ञ विषय उनके अन्तःकरण मे अणुमात्र भी अनुराग नही उत्पन्न कर सकते और इन्द्रियो के प्रतिकूल अमनोज्ञ विषय विषाद उत्पन्न करने मे असमर्थ हैं। गृहस्थो मे निवास करते हुए भी वे विषयो से अलिप्त रहते हैं। बडे स बडा सन्मान और बडे से बडा अपमान उनके चित्त मे किंचित् भी क्षोभ पैदा नही करता। वे 'सागरवरगम्भीर' होते हैं, सामान्य मुनि इस ऊचाई को प्राप्त करने का अभिलाषी अवश्य है और उसके लिये प्रयत्नशील भी है, किन्तु वर्तमान मे वहा तक पहुँचा नही होता। अतएव उसे विकारजनक निमित्तो से बच-बच कर चलना पडता है। तीर्थंकर भगवान् काजल की कोठरी मे प्रवेश करके भी विना कालिख की रेखा लगे बाहर निकलने मे समर्थ हैं, साधारण मुनि की आत्मा इतनी बलवान् नही होती।

साधारण मुनि अनादिकालीन काषायिक सस्कारो को निर्बल और निष्प्राण बनाने का पुन पुन प्रयत्न करता हुआ

धर्मोपदेशक देश-देशान्तर मे भेजे थे और धर्म की महती सेवा की थी।

भाइयो ! आप लोग महाजन है और यह धर्म आपके हाथ लग गया है। किन्तु आपको आदत है कि आप जो कमाते हो, उसे तिजोरी मे बन्द कर देते हो या जमीन मे गाड देते हो। इसी महाजन-सुलभ स्वभाव से आपने धर्म को भी तिजोरी मे बन्द कर रखा है ! आप किसको दिखलाना भी पसन्द नही करते। दूर नही जाना चाहते तो अपने नौकर को ही धर्म की बात क्यो नही बतलाते और उसे सही रास्ते पर क्यो नही लाते ?

तुम दस अन्य धर्मियों के साथ जा रहे होगे और सामने से कोई मुनिराज आते दिखाई देगे तो तुम्हे शर्म आ जाएगी। सोचोगे कि दूसरे क्या कहेगे ? और इसी विचार मे छतरी मे मुह छिपाकर निकल जाओगे और उन्हे वन्दना नही करोगे ! क्यो भाई, आखिर किस बात से तुम शर्माते हो ? अरे कलदार खरा है तो झनझनाहट करेगा ही। तुम्हे तो गौरव समझना चाहिए कि तुम ऐसे गुरु के शिष्य हो जो उच्च आचार-विचार मे, संसार मे अपनी सानी नही रखते। प्राणी मात्र पर जिनका असीम करुणा का स्रोत प्रवाहित होता है, जो लेशमात्र भी असत्य, अप्रिय और कटु शब्दो का प्रयोग नही करते, जिन्होने स्वेच्छापूर्वक अकिंचनता का महाव्रत अगीकार किया है, जो पूर्ण ब्रह्मचारी हैं और तृण मात्र भी अदत्त को ग्रहण नही करते ! जो गाव-गांव नगे पैरो और उघाडे सिर घूम घूम धर्म की अलख जगाते हैं, ऐसे त्यागी, तपस्वी और सयम-गुरु खोजने पर भी अन्यत्र नही मिलेंगे ! फिर सकोच बात का ? लज्जा कैसी ? झिझक क्यो ? ऐसे लोभ-लालच

एक बार हम जूनिया (अजमेर) गये तो वहाँ के राजा भी बाजा-गाजा लेकर सामने आए । हमे कहा पडा कि-भाई, बाजे बन्द कर दो तो हमारा आना सम्भव होगा, अन्यथा नही । बाजे उसी समय बन्द कर दिए गए और तब हम उनके साथ हो गए ।

तात्पर्य यह है कि तीर्थंकरो की आचारप्रणालिका दूसरी है और हमारी प्रणालिका दूसरी है। इसका अर्थ यह न समझा जाय कि दोनो के आचरण मे कोई महत्वपूर्ण या मौलिक अन्तर है । ऐसा नही है । दोनो का उद्देश्य एक ही है और मार्ग भी एक है, किन्तु जैसा कि अभी कहा जा चुका है, अधिकारी के भेद से दोनो मे अन्तर है ।

भगवान् के पधारने पर दुन्दुभि न बजे तो ४८ कोस लम्बी और ३६ कोस चौडी विशालकाय नगरियो मे जनता को कैसे पता लगे कि तीर्थंकर भगवान का पदार्पण हुआ है ? और किस प्रकार ज्ञात हो कि भगवान विहार करके अन्यत्र पधार रहे हैं ? बडे नगरो मे कौन किसे सूचना पहुँचाए और कहा-कहाँ और किस-किस को पहुचाय ? भगवान का अचानक ही गमन या आगमन हो जाए तो बहुतो के मन मे पछतावा रह जाय ! अतएव देव अपने परम्परागत आचार का पालन करते हुए आकाश मे दुन्दुभि बजाते हैं । वे दुन्दुभि द्वारा सूचित करते है कि-पधार गये हैं तीन लोक के तारणहार ! पधार गए हैं मुक्ति के मगल-द्वार अनावृत करने वाले पुरुषोत्तम ! भव्य जीवो ! उन्हे नमस्कार करके अपनी अपावन काया करो, अपने नयनो को सफल कर लो ! उनकी वा अपने कानो को पवित्र कर लो ! भगवद्भक्ति के

इस प्रकार ज्ञानी और अज्ञानी मे जो महान् अन्तर है, वह बाह्य पदार्थो की अभिज्ञता और अनभिज्ञता पर अवलम्बित नही, अपितु आत्मज्ञान होने और न होने पर निर्भर है। ससार मे सर्वत्र ज्ञानी और अज्ञानी जीव मौजूद हैं—नरकयोनि मे भी हैं, तिर्यञ्चगति मे भी हैं और मनुष्य एव देवपर्याय मे भो हैं। नरक मे जो सम्यग्दृष्टि एव ज्ञानी जीव हैं उन्हे भी दुःख सहन करने पडते है और अज्ञानियो को भी सहन करने पडते हैं। किन्तु दोनो की मानसिक स्थिति मे बडा अन्तर रहता है। अन्य योनियो के सम्बन्ध मे भी यही बात कही जा सकती है। कोई भी योनि क्यो न हो, उसमे रहे हुए ज्ञानी को जब दु:ख भोगने पडते हैं तो वह अपने सम्यग्ज्ञान के बल से उस दुःख के कार्य कारण-भाव को ठीक तरह समझ लेता है। वह दुःख के तात्कालिक निमित्त बने हुए किसी दूसरे व्यक्ति को अपने दुःख का उत्तर-दाता नही समझता वरन् अपने आपको ही उत्तरदायी समझता है। वह सोचता है कि दुःख का अकुर जब मेरी आत्मा मे उत्पन्न हुआ है तो दुःख का बीज भी-कारण भी-मेरी ही आत्मा मे होना चाहिए। जहा बीज होता है वही अकुर उत्पन्न होता है। बीज दूसरी जगह हो और अकुर दूसरी जगह हो, ऐसा कदापि सम्भव नही। इस प्रकार अपने दुःखो का कारण मैं स्वय ही हूं, कोई दूसरा नही हो सकता। मैंने पहले पाप कर्म का बध किया है, उसी के फलस्वरूप मुझे दुःखो की प्राप्ति हुई है। मैं अपने ही कर्मों का फल भोग रहा हू। इस फलभोग मे अगर कोई दूसरा व्यक्ति निमित्त बनता है, तो उस पर मेरा क्रोध या द्वेष करना निरर्थक है। वह तो मेरे ही अशुभ कर्मों से प्रेरित कर निमित्त बना है।

दुःख वास्तव मे क्या चीज है? क्या सचमुच दुःख ऐसी

भाइयो ! सुनो ! दलाली करना साधारण काम नहीं है। धर्मदलाली की थी श्रीकृष्णजी ने ! उनकी दलाली के परिणाम-स्वरूप थावच्चा कुमार के साथ एक हजार आदमी दीक्षित हो गए। अतएव जितना सम्भव हो, धर्म की दलाली करो न कर सको तो कम से कम दलाली करने वालों के बाधक तो मत बनो !

मान लीजिए, एक आदमी प्रतिदिन एक पाव मांस खाता है। आपने प्रेरणा करके उसे किसी मुनि-महात्मा के पास पहुँचा दिया और महात्मा का उपदेश सुनकर उसने मांस खाना त्याग दिया। तो महिने मे तीस पाव मांस की बचत होने से करीब एक बकरे के प्राण बचे ! इस प्रकार वर्ष मे बारह बकरे बच जाएंगे ! सम्भव है कि उसकी सन्तान और प्रसन्तान भी मांस खाना छोड़ दे तो और भी बड़ी हिंसा बच जाएगी। इस प्रकार दलाली करने से बहुत बड़ा लाभ होता है।

भाइयो दलाली कौन करेगा ? जिसकी खुद की श्रद्धा अच्छी होगी वही धर्म की दलाली करेगा। जिसे धर्म पर अचल विश्वास ही नहीं है, उससे धर्म-दलाली की क्या आशा की जा सकती है ? जहां विश्वास है वहीं धर्म है और वहीं कल्याण का स्थान है। जहां सम्यक्श्रद्धान है वहीं सम्यग्ज्ञान है और जहां सम्यग्ज्ञान होगा वहीं त्याग आएगा। त्याग होगा तो तपस्या होगी और तपस्या होगी तो मुक्ति मिलेगी। मुक्ति मिलेगी तो निर्वाण की प्राप्ति होगी। अतएव धर्म के प्रति विश्वास लाकर दलाली करो।

सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य भारत का एक प्रसिद्ध वीर सम्राट हुआ है। वह जैनधर्म का पालन करता था। उसने बड़े-बड़े

की निर्जरा अधिक और वध कम करता है। अतएव उसकी आत्मा हल्की होती चली जाती है और उसका भविष्य उज्ज्वल से उज्ज्वलतर बनता जाता है। साराश यह है कि ज्ञानी पुरुष विकट से विकट सकटपूर्ण प्रसग को भी अपनी आत्मा के लिए हितकर बना सकता है।

अज्ञानी दु ख के प्रसग पर क्या करता है ? वह ज्ञानी पुरुष की भाँति कार्यकारणभाव विचार नही करता और अपने दु ख के लिए अपने आपको उत्तरदायी न ठहरा कर दूसरो को उत्तरदायी समझता है। वह सोचता है–अमुक व्यक्ति ने मुझे अमुक हानि पहुँचा दी, फला ने मेरा यह अनिष्ट कर दिया और उसने मेरा वह काम बिगाड दिया ! वह बाह्य निमित्तो को ही उपादान कारण समझ लेता है और इस प्रकार दूसरो पर द्वेष-भाव धारण करता है। उसकी कषाय से रगी हुई आत्मा पर और गहरा कषाय का रग चढता है और परोक्ष रूप मे वह अपने दु:खो मे वृद्धि करता जाता है। इसी आशय को लक्ष्य मे रखते हुए श्रीमद् आचारागसूत्र मे कहा है:—

जे आसवा ते परिसवा,
जे परिसवा ते आसवा।

अर्थात्—ज्ञानी पुरुष आस्रव के कारणो को भी निर्जरा के कारणो के रूप मे परिणत कर लेता है और अज्ञानी निर्जरा के कारणो को भी आस्रव के कारण बना लेता है।

जरा गम्भीर भाव से विचार करो कि ज्ञानी और अज्ञानी स्थिति मे कितना महान् अन्तर है। दोनो एक-सी परिस्थिति । दोनो पर एक सरीखा दु:ख आया है। परन्तु ज्ञानी ने

से विहीन गुरु को पाकर तुम्हे मानना चाहिये कि हमने परम सौभाग्य पाया है। ऐसे गुरु ही सच्चे गुरु कहलाते हैं। सद्-गुरु के विषय मे कहा है—

नाणदंसणसंपन्न, संजमे य तवे रयं।

सद्गुरु वे है जो समीचीन ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न तथा जो अपनी समस्त इन्द्रियो को नियन्त्रण मे रखते हैं, मन पर पूरा अंकुश रखते हैं और तपस्या मे निरत होते हैं।

सद्गुरु का पहला लक्षण ज्ञान सम्पन्न होना अर्थात् ज्ञानी होना है। ज्ञानी और विद्वान मे अन्तर है। बाह्य पदार्थों की सूक्ष्म और गम्भीर जानकारी प्राप्त कर लेने वाला, किन्तु आत्म-ज्ञान से विमुख व्यक्ति विद्वान कहला सकता है। किन्तु ज्ञानी वही कहलाएगा जो सम्यग्दृष्टि होगा और जिसने आत्मा के निगूढ़ रहस्यो का पता पा लिया होगा। बड़े बड़े वैज्ञानिक, जो एटम बम बनाने मे कुशल हैं, भौतिक पदार्थो का अधिक से अधिक ज्ञान रखते हैं, लेकिन वे आत्मज्ञान से सर्वथा शून्य है तो उन्हे ज्ञानी का पद प्राप्त नही हो सकता। आत्मा के प्रति प्रगाढ श्रद्धा के साथ जिन्होने ज्ञान प्राप्त किया हो और जो कल्याण अकल्याण के विवेक से विभूषित हो, वही वास्तव मे ज्ञानी कहलाते हैं। ऐसे ज्ञानी पुरुष ही सम्यक्-चारित्र के पात्र होते हैं और सम्यक् चारित्रवान् ही मोक्ष का अधिकारी होता है। जो मोक्ष प्राप्त करता है वही निर्वाण पद प्राप्त करता है। निर्वाण पद की प्राप्ति हो जाने के पश्चात् जन्म-मरण का अनादि कालीन चक्र बन्द हो जाता है। अजर-अमर स्थिति प्राप्त होती है।

परन्तु ज्ञानी सोचता है कि मैंने पापकर्मों का बन्ध किया था सो भोग रहा हूँ। अज्ञानी विचार करता है कि मेरा वश चले तो मैं यमदूतो को मार डालूँ! ज्ञानी सोचता है, हँस-हँस कर कर्ज लिया था तो खुश हो-होकर चुकाना चाहिए।

गृहस्थावस्था मे मेरी माता जब बीमार हो जाती तो कहा करती थी—कर्मों! ले लो। खुशी से बदला ले लो! मुझे तो कभी न कभी चुकाना ही है! अभी सही!

तात्पर्य यह है कि ज्ञानी पुरुष राग-द्वेष नही करता, जब कि अज्ञानी पत्थर की ठोकर लगने पर पत्थर को ही उखाड फेंकता है। कई लोग लिखते-लिखते, गुस्से मे आकर कलम को ही तोड़ बैठते हैं! यह सब अज्ञान का ही फल है!

एक साधु कही जा रहे थे। उन्हे देखकर एक आदमी बोला—देखो, पलीत गलीज, गुण्डा और बदमाश जा रहा है! मुफ्तखोर कही का!

यह शब्द साधु के कानो मे पड गये। उनके चेहरे पर तनिक भी रोष या आवेश न चमका। सहज स्मित के साथ उन्होने कहा—तुम ठीक कहते हो!

इतना कहकर साधु बिना रुके आगे चल दिये। गालियाँ देने वाला चकित और परेशान हुआ। साधु के प्रति उसका कौतूहल बढ गया। वह भी उनके पीछे-पीछे हो लिया। कुछ आगे चलने पर साधु के भक्त मिले। साधु पर दृष्टि पडते ही के हृदय हर्ष से नाच उठे। वे बोले—पधारिये, तारण-की जहाज ने घणी खम्मा!' साधुजी ने कहा—तुम ठीक हो!

चीज है जिससे बचने के लिए प्रयत्न करना चाहिए तो बचने का सही उपाय क्या है? अज्ञानी पुरुष पाप-कर्म से तो बचने का प्रयत्न नही करता किन्तु पापकर्म के फल से—दु ख से—बचने का प्रयत्न करता है। किन्तु ज्ञानी सोचता है कि विषफलो से बचने का ठीक उपाय यही है कि विषवृक्ष को जड से उखाड दिया जाय! न रहेगा बास न बजेगी बासुरी। जिस वृक्ष से दु खो के विषफल उत्पन्न होते हैं, उस वृक्ष को ही उखाड देने मे बुद्धिमत्ता है अर्थात् पापकर्म से उत्पन्न होने वाले दु खो को नष्ट करने के लिए पापकर्मों से दूर रहना ही उचित है।

जो पापकर्मो से बचता नही किन्तु दु ख से बचना चाहता है, उसका प्रयास बालचेष्टा के अतिरिक्त और कोई मूल्य नही रखता। वह सफल मनोरथ नही हो सकता। क्योकि जब तक दु खो का कारण विद्यमान रहेगा तब तक दु खो का प्रतिकार होना सभव नही है। जसा कि अभी कहा जा चुका है, दु खो का कारण अशुभकर्म है, अतएव दु खो से बचने का उपाय भी अशुभ-कर्मो से बचना है।

ज्ञानी पुरुष की विचारणा का यह एक उदाहरण है। इस प्रकार की विचारणा का फल अत्यन्त लाभदायक होता है। इसमे सचाई तो है ही, साथ ही शान्ति भी है, उपशम भी है। इस प्रकार की विचारणा से ज्ञानी घोर से घोर दु ख आ पडने के समय भी शान्त, सहनशील और अनुद्विग्न रहता है और इस प्रकार अपने दु खो को हल्का बना लेता है। दूसरे दु ख के निमित्त बने हुए व्यक्तियो पर द्वेष भाव न धारण करने के कारण उसका अन्त करण कलुषित नही होता। वह आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान से बचा रहता है और इसके परिणामस्वरूप कर्मों

बन गई हो- अर्थात् जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया हो। सम्यग्दर्शन के बिना ऐसा परमार्थभूत ज्ञान प्राप्त नही हो सकता।

कई लोग दूसरो के दोष–दर्शन मे ही अपने ज्ञान की महत्ता समझते है। वे बडे चाव से दूसरो की बुराइयाँ प्रकट करते है। परन्तु परछिद्रान्वेषी होना ज्ञानी का लक्षण नही है। ज्ञानी पर के गुणो को और अपने दोषो को देखता है। वह अपने मुख से अपनी प्रशंसा और दूसरो की निंदा नही करता।

अज्ञानी बडी चतुराई से कहते है कि तुम्हे रत्न और कंकर की पहचान नही है। तुम्हारे लिए तो गुड़ और गोबर समान है। इस प्रकार वे लोग तरकीब के साथ लोगो को भ्रम मे डाल देते है। दरअसल ऐसे व्यक्ति समझदार नही हैं। जो अपना कल्याण करे और दूसरे की निन्दा न करे वही ज्ञानी है।

जब सोमल ने रख दिये धधकते हुए अंगार माथे पर और महान् वेदना होने लगी तो गजसुकुमार मुनि ने क्या उस ब्राह्मण को बुरा-भला कहा था? क्या उसे अपना शत्रु समझा था? नही, उन्होने सोचा—मैने जो दुष्कर्म किये है, उनका फल भोग रहा हूँ। सोमल शत्रु नही, सहायक है। वह मेरे उद्देश्य की सिद्धि मे सहायता पहुचा रहा है। गजसुकुमार महामुनि ऐसा न सोच कर यदि सोमल को शत्रु समझते तो क्या इतनी जल्दी मुक्ति पा लेते? दूसरो को दोषी समझने वाला तो 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं' के महारोग का शिकार होता है।

भाइयो! खाता बढाने से बढता है और घटाने से घटता है। जरा सी दुर्भावना आई कि खाता बढ गया। इस बात को

करते, वे सत्य पथ ही प्रदर्शित करते है। भगवान् के कथन मे कुछ न कुछ मर्म अवश्य होना चाहिए। हम सर्वज्ञ की सब बातो को भली भाति नही समझ सकते।

आखिर भगवान् ने स्पष्ट करते हुए उन साधुओ से कहा— अयवंता मुनि बडे भाग्यशाली है। उन्होने कहा है—

नाव तिरे म्हारी नाव तिरे।

हे श्रमणो! उनका कथन सत्य है। उनकी नाव इसी भव मे तिरने वाली है। वे चरमशरीरी जीव हैं।

भाइयो, ऐसी-ऐसी घटनाओ का उल्लेख शास्त्र मे किस प्रयोजन से किया गया है? इनसे आपको क्या तथ्य ग्रहण करना है? आप किसी का कोई छोटा-सा छिद्र देखते है तो जगह-जगह उसकी बुराई करते है। उसे मिथ्यात्वी की पदवी देने मे सकोच नही करते। वास्तविकता को समझने का प्रयास नही करते। किन्तु इस घटना का वर्णन करके शास्त्रकार हमे समझा रहे है कि अवगुण देखने हैं तो अपने ही देखो, दूसरो के नही। दूसरो के अवगुण देखने जाओगे तो अपनी आत्मा को व्यर्थ ही कलुषित करोगे। ऐसा करके कुछ भी लाभ प्राप्त नही कर सकोगे, अपनी आत्मा को, गिरा लोगे। इस प्रकार ज्ञानी वह है जो अपने दोषो को जानता है और अज्ञानी वह है जो दूसरो के दोषो को देखने को उत्कठित रहता है, पर अपने दोषो को नही जानता।

अज्ञानी लोग स्वय डूबते है और दूसरो को डुबाते है। ऐसे भले वे कितने ही पवित्र आचार-विचार से सम्पन्न

वाला तो गिरता ही चला जाता है ! वह बीच मे रुकता नही। अज्ञानी का अविश्रान्त गति से पतन होता चला जाता है !

कोई अज्ञानी बडा आदमी हो गया है। वैसे तो पैसे से कोई बडा आदमी नही होता, किन्तु व्यवहार मे पैसे वाला बडा आदमी कहलाता है। तो उसे बडा आदमी समझकर कोई किसी सार्वजनिक सस्था के लिए चदा मागने आया। तब वह अज्ञानी अपना सौभाग्य नही समझता, बल्कि मन ही मन कुढता है। चँदा माँगने वाले से कहता है—क्यो, बडी गर्दन काटने के लिए होती है ? जब देखो तब चदा माँगने को आ पहुँचते हो। क्या मैंने तुम्हारे ही लिए धन कमाया है ?

अरे भाई, तुझे बडा आदमी समझा है तब तो तेरे पास आए हैं। मँगता समझा होता तो क्यो तेरे द्वार पर आते ? घर बैठे गगा आ गई है। हाथ धोना है तो धो ले। जो अवसर मिला है उससे लाभ उठा ले। जो साधन-सामग्री प्राप्त हुई है, उसका सदुपयोग कर ले। बार-बार न तो मनुष्य-जन्म मिलता है और न सचमुच सामग्री ही मिलती है।

हे मानव, बिजली की चमक मे मोती पिरोना है तो पिरो ले। पल भर ही यह चमक रहने वाली है। समय चूका कि चूका। यह मानव-जीवन ऊँचे चढने के लिए मिला है या नीचे गिरने के लिए ? डाक्टरी हाथ आई तो गरीबो से फीस नही लेगा तो क्या बिगड जायगा ? वकील बना है तो क्या दूसरो ` फँसाने के लिए बना है ? तेरे वकील बनने से जाति और को क्या लाभ पहुँचा है ? भाई, दैवयोग से तुझे जो कोई साधन-सामग्री मिली है, उससे कुछ भला काम कर ले। त है—'कर लिया सो काम, भज लिया सो राम' समय

निरन्तर ध्यान मे रखते हुए हृदय को निर्मल रखने का प्रयत्न करो। तत्त्व-परमार्थ की दृष्टि से विचार करो। धर्मशास्त्र के सिद्धान्तो को जीवन-व्यवहार मे उतारो। यह सर्वज्ञो के उपदेश सिर्फ सुनने के लिए नही, सुनकर व्यवहार मे लाने के लिए है।

अयवन्ताकुमार मुनि ने सचित्त पानी मे पात्री तिराई और बोले—

नाव तिरे म्हारी नाव तिरे !

कहो साहब, उनको छह कायो का नाम याद था या नही ? जलकाय मे जीव है, यह ज्ञात था या नही ? अगर ज्ञात होता तो कच्चे पानी मे पात्र क्यो तिराते ? तुम्हे थोडा भी ज्ञान है तो तुम कहते हो कि मैने सामायिक ग्रहण की है, कच्चे पानी का आरम्भ-समारम्भ नही करूँगा ! मगर अयवन्ता मुनि तो कच्चे पानी मे नाव तिराने लगे !

यह दृश्य देख कर दूसरे छद्मस्थ साधुओ के मन मे आया कि यह समकिती नही है ! उन्होने भगवान महावीर के पास आकर अयवन्ता मुनि की शिकायत की तो भगवान् ने कहा—अयवन्ता मुनि की निन्दा मत करो, उनकी वैयावच्च करो !

आजकल के चेले होते तो भगवान् को भी पक्षपाती होने का फतवा देने से न चूकते ! कहते—भगवान् तो बच्चे का पक्ष लेते है ! किन्तु वे शिष्य ऐसे नही थे। भगवान् के प्रति उनकी अटल-अचल श्रद्धा थी। वे जानते थे कि प्रभु वीतराग है किसी का पक्षपात नही करते, किसी पर अनुराग नही

कुँवर सुसराल पहुचा और कुछ दिन तक ठहर कर जब पत्नी समेत वापिस लौटने लगा तो उसके श्वसुर ने कहा—कुँवरजी, आप अकेले पधारे है, किन्तु अब कुछ सिपाहियो को साथ लेते जाइए। सुनसान जगल मे इस प्रकार अकेले जाना उचित नही है।

नौजवान बोला—मैं अपनी ही भुजाओ के बल पर आया हूँ और अपनी ही भुजाओ के बल पर जाऊँगा। आते समय मार्ग मे पचास चोर मिले थे। मगर मेरे सामने वे कुछ न कर सके! चुपचाप खिसक गए।

श्वसुर ने समझाया—कोई आदमी कितना ही वीर-बहादुर क्यो न हो, आखिर तो दो ही हाथ वाला है! बहादुर आदमी के भी हजार हाथ नही होते। दो हाथो से जितना काम किया जा सकता है, उतना ही तो कोई कर सकता है। ऐसी स्थिति मे अगर आप कुछ आदमियो को साथ लेते जाएँ तो हानि भी क्या है? साथ जाएँगे और आपको पहुचा कर लौट आएँगे।

नवयुवक—अगर आप ऐसा आग्रह करेंगे तो मैं ले ही नही जाऊँगा। आपको मेरी वीरता पर विश्वास नही है? क्या आप मुझे कायर समझते है? नही, मैं क्षत्रिय पुत्र हू।

नवयुवक ने अपने तरकश मे एक सौ बीस बाण ले लिये और पत्नी सहित रथ मे बैठ कर प्रस्थान किया। बीच मे वही ..मान घना जगल पडा। चोर उसकी टोह मे थे ही। मौका ..कर सामने आ गए और मुकाबला करने को तैयार हुए। ..र से तीर आया और इधर नवयुवक ने भी तीर चलाया।

यह एक नजीर है। आशय यह है कि उम्र के तीर खत्म हो रहे है। इन्हे निरर्थक मत फेंको। हम कहे वही करो। अवसर से लाभ उठाओ नही तो कौन जाने क्या गति होगी! इस अनमोल जीवन की कद्र करो। जरा विचार करके देखो कि जीवन की सार्थकता क्या करने मे और क्या न करने मे है! पुण्य के योग से तुम्हे वीतराग की वाणी सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। निर्लोभ और त्यागशील गुरु मार्गदर्शन के लिए मिले हैं। उनकी वात मानो। ज्ञानी बनने का प्रयत्न करो। ज्ञानी बनने से तुम्हारे सब सकट कट जाएँगे, तुम्हे इसी जन्म मे एक वचनागोचर सुख की अनुभूति होने लगेगी। ज्ञान इह परलोक-दोनो मे आनन्ददाता है।

अगर इस जीवन मे कुछ न करोगे तो कहाँ ठिकाना पाओगे? भगवद्वाणी के अनुसार पुरुषार्थ न करने वालो का कही कल्याण नही हो सकता। जिसने वर्तमान जीवन मे भविष्य का निर्माण नही किया वह शरीर त्याग कर जब अन्यत्र जाएगा तो उसकी क्या दशा होगी? गुमनाम वैरग चिट्ठी को कौन झेलेगा? अतएव पहले से ही अपना स्थान निश्चित कर लो। बम्बई तक जाने के लिए रेल मे पहले से स्थान रिजर्व करा लेते हो! लेकिन निश्चित रूप से जो महायात्रा करनी है और जहाँ जाकर लम्बे समय तक रहना है, वहाँ की कुछ भी चिन्ता नही करते! कितना आश्चर्य। ज्ञानी पुरुष तुम्हारी यह दशा देखकर आश्चर्य करते हैं। उनका हृदय दया से द्रवित हो जाता है! वे सोचते हैं—इन अज्ञान प्राणियो का उद्धार कैसे होगा? मोह की निद्रा मे मस्त हुए इन नादान जीवो का भला किस प्रकार ...गा? मगर भाई, स्वय पुरुषार्थ किये बिना तो कुछ काम बनने ... नही है।

चूकने पर पश्चाताप करने से भी कुछ हाथ नही आता। 'अण चूका बीसा सौ।' यह बीस और सौ क्या बला है? एक दृष्टांत द्वारा समझिए।

एक ठाकुर के कुँवर साहब आणा लाने को तैयार हुए। तब ठाकुर साहब ने कहा—दो-चार सरदार साथ मे लेते जाओ। बीच मे जगल पडता है। किन्तु नवयुवक कुँवर ने कहा—आदमी तो औरतो के पीछे रहते हैं। मुझे क्या आवश्यकता है?

यह कह कर वह हजारो के आभूषण पहन कर और घोडे पर सवार होकर चल दिया। रास्ते मे घना जगल था। वहाँ उसे पचास चोर मिल गए। नौजवान अकेला था। इसे देखकर चोरो ने 'राम-राम' किया और पूछा—कुँवर साहब, किधर पधार रहे है?

नौजवान—आणा लेने जा रहा हू।

चोर—साथ में जाब्ता नही है? लौट कर आओगे तब भी क्या अकेले आओगे?

नौजवान—मैं स्वयं जाब्ता हूँ। क्षत्रिय का पुत्र हूँ। दूसरो की रक्षा करना मेरा काम है। मै दूसरो की रक्षा का मुँहताज क्यो बनूँ?

चोरो ने सोचा—अभी यह अकेला है। लौटते समय औरत को भी साथ लाएगा। उसके शरीर पर भी जेवर होगे। अपना काम करने के लिए वही समय उपयुक्त होगा। अभी इसे जाने दें।

इधर नौजवान का घमड दुगना बढ गया। उसने सोचा—इन चोरो मे मेरा मुकाबिला करने की ताकत कहाँ?

यह एक नजीर है। आशय यह है कि उम्र के तीर खत्म हो रहे है। उन्हे निरर्थक मत फेंको। हम कहे वही करो। अवसर से लाभ उठाओ नही तो कौन जाने क्या गति होगी! इस अनमोल जीवन की कद्र करो। जरा विचार करके देखो कि जीवन की सार्थकता क्या करने मे और क्या न करने मे है! पुण्य के योग से तुम्हे वीतराग की वाणी सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। निर्लोभ और त्यागशील गुरु मार्गदर्शन के लिए मिले हैं। उनकी बात मानो। ज्ञानी बनने का प्रयत्न करो। ज्ञानी बनने से तुम्हारे सब सकट कट जाएँगे, तुम्हे इसी जन्म मे एक वचनागोचर सुख की अनुभूति होने लगेगी। ज्ञान इह परलोक-दोनो मे आनन्ददाता है।

अगर इस जीवन मे कुछ न करोगे तो कहाँ ठिकाना पाओगे? भगवद्वाणी के अनुसार पुरुषार्थ न करने वालो का कही कल्याण नही हो सकता। जिसने वर्तमान जीवन मे भविष्य का निर्माण नही किया वह शरीर त्याग कर जब अन्यत्र जाएगा तो उसकी क्या दशा होगी? गुमनाम बैरग चिट्ठी को कौन झेलेगा? अतएव पहले से ही अपना स्थान निश्चित कर लो। बम्बई तक जाने के लिए रेल मे पहले से स्थान रिजर्व करा लेते हो! लेकिन निश्चित रूप से जो महायात्रा करनी है और जहाँ जाकर लम्बे समय तक रहना है, वहाँ की कुछ भी चिन्ता नही करते! कितना आश्चर्य। ज्ञानी पुरुष तुम्हारी यह दशा देखकर आश्चर्य करते हैं। उनका हृदय दया से द्रवित हो जाता है! वे सोचते हैं—इन अज्ञान प्राणियो का उद्धार कैसे होगा? मोह की निद्रा मे मस्त हुए इन नादान जीवो का भला किस प्रकार होगा? मगर भाई, स्वय पुरुषार्थ किये बिना तो कुछ काम बनने का नही है।

सारांश यह है कि मानव-जीवन को कृतार्थ बनाने के लिए सर्वप्रथम सम्यग्ज्ञान और दर्शन प्राप्त करने की आवश्यकता है। इन्हे प्राप्त करके आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए। ऐसा करने वाले ही धन्य और पुण्य हैं। उनका भविष्य आनन्द-मय हो जाता है।

२८-१२-४८
पाली



छवि स्वत लोकोत्तर सौन्दर्यशालिनी होती है। अतएव कोई भी भौतिक पदार्थ उनकी शोभा नही बढा सकते, क्योकि वह स्वय बढी हुई होती है। अलवत्ता, उनके सम्पर्क मे आने वाले वाह्य पदार्थ ही भगवान् की छवि से सुशोभित होने लगते हैं। ये तीन छत्र एक दूसरे के ऊपर होते हैं। नीचे छोटा, उसके ऊपर उससे बडा और ऊपर सबसे बडा। तीनो छत्र शरद् ऋतु के निरभ्र गगन मे सुशोभित होने वाले चन्द्रमा के सदृश उज्ज्वल थे। उनके चारो ओर मोतियो की झालरे लटकी हुई थी। उन छत्रो के कारण भगवान् को सूर्य का आतप नही लगता था।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि भगवान् के मस्तक पर तीन ही छत्र क्यो होते है? यदि कहा जाय कि देवता तीन ही छत्रो की रचना करते हैं, अत. तीन छत्र ही होते हैं, तो भी प्रश्न हल नहीं होता। आखिर देवता न्यून या अधिक न बनाकर तीन छत्र ही क्यो बनाते हैं? यह प्रश्न ज्यो का त्यो स्थिर रहता है? वास्तविक बात यह है कि भगवान् ऋषभदेव तीनो ही जगत् के परमेश्वर हैं। ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक, यह तीन लोक है और इन तीनो लोको मे भगवान् का अप्रतिहत धर्मशासन प्रवर्त रहा है। इसी तथ्य को मूर्त्तिमान् रूप मे प्रकट करने के लिए भगवान् के ऊपर अतिशय मनोहर और उज्ज्वल तीन छत्र रहते हैं।

राजा के एक ही छत्र होता है, क्योंकि उसका शासन सिर्फ एक ही लोक मे होता है। परन्तु भगवान् का शासन जैसे ध्यलोक मे वैसे ही ऊर्ध्वलोक और अधोलोक मे भी होता है। गवान् तीर्थङ्कर विश्व के समस्त प्राणियों के उद्धार के लिए,

कौन नही जानता कि अपनी-अपनी वारी पर सब को महायात्रा पर जाना होगा ? बचपन चला गया और यौवन आया-अन्धड की तरह-तूफान की तरह। वह भी टिका नही। अब बुढापा आ गया है। तो क्या यह निष्प्राण बुढापा टिका रहेगा ? यह तो सूचना दे रहा है कि शीघ्रता करो, सामान जुटा लो यात्रा का समय सन्निकट आ रहा है ! अब बुढापे मे उपेक्षा से काम नही चलेगा। काले मे धोला पड जाय तो खट सकता है, अगर धोले मे धूल पड गई तो सारा खेल विगड जाएगा ! अर्थात् यह पिछली अवस्था भी बिगड जाएगी तो फिर पता नही लगेगा ! तो फिर क्या करना चाहिए !

थारी सारी उमरिया, बातो मे बीती जाय अब तो सोचरे ।।टेर।।
वक्त खरीदी का है मित्रों ! सोच-समझ कर लेना,
जो कर्ज से मोल लिया तो, मुश्किल होगा देना ।

भाइयो ! यह वक्त खरीदने का है। मगर सोच-विचार कर खरीदना। जो कर्ज ही कर्ज करते जाओगे तो आगे पछताना पडेगा। फिर तुम्हारी रक्षा करने वाला कोई नहीं मिलेगा।

याद रक्खो जो सो गया उसने खो दिया। सोता कौन है और जागता कौन है ? ज्ञानी जागता है और अज्ञानी सोता है। जागते रहना है तो सम्यग्ज्ञान प्राप्त करो विवेक प्राप्त करो। आत्मा को पहचानने का प्रयत्न करो और उसे विशुद्ध बनाने का उद्योग करो। जो जागेगा वह आत्मकल्याण मे प्रवृत्त होगा। इसके विपरीत, जो सोता रह जाएगा, उसके लिए फिर वही चौरासी का चक्कर तैयार है !

स्वास्थ्य कहते है और विषम-अवस्था को बीमारी कहते है। साख्यदर्शन के अनुसार सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण की साम्यावस्था प्रकृति कहलाती है और विषमावस्था विकृति कहलाती है।

आत्मा को भी तीन रोग लगे हुए है—(१) मिथ्यात्व (२) मोह और (३) अज्ञान। इन तीनो रोगो की तीन औषध हैं, जिन्हे अभी रत्नत्रय कहा जा चुका है।

समदर्शन मिथ्या रोग हरे, रोगों से ज्ञान बचाता है।
नित पुष्टि करता है चारित्र, वीतराग वैद्य जतलाता है।।

भाइयो! सब बीमारियो मे मिथ्यात्व की बीमारी बडी जबर्दस्त है और उसे शात करने की शक्ति सम्यग्दर्शन मे ही है। मिथ्यात्व ही जन्म-मरण का मूल, ससार परिभ्रमण करने वाला, आत्मा के स्वाभाविक गुणो को विकृत करने वाला और सभी अनर्थों का मूल है। मिथ्यात्व की विशेषता यह है कि इसके कारण आत्मा की विचारधारा ही विपरीत रूप ग्रहण कर लेती है। विचार उलटे हो जाते है और दृष्टि दूषित हो जाती है। इस दोष के प्रभाव से आत्मा अपने स्वरूप को भूल जाता है। जब तक दोष दोष समझा जाता है और बुराई को बुराई समझने का विवेक होता है, तब तक मनुष्य उससे शीघ्र मुक्त हो सकता है, किंतु जब दोष दोष ही मालूम नही होता तब उसके दूर होने की सम्भावना ही क्या की जा सकती है? सम्यग्दृष्टि अपनी दुर्बलताओ को समझता है, अपने दोषो और पापो को दोष और पाप समझता है और उनसे बचने की भावना रखता है।



सम्यग्दर्शन का चमत्कार



स्तुतिः—

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त—
मुच्चैः स्थित स्थगितभानुकरप्रतापम् ।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभम्,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? प्रभो ! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएँ ?

जब भगवान् ऋषभदेव समवसरण मे विराजमान होते थे तो उनके मस्तक पर तीन छत्र सुशोभित होते थे। हाँ, वे सुशोभित होते थे, सुशोभित करते नही थे। भगवान् वीतराग की

ठीक है, सम्यग्दृष्टि अठारहवाँ पाप नही करता । भव-स्थिति पक जाने पर सम्यग्दर्शन आता है और भवस्थिति का पकना बडा कठिन है ।

एक बार बनारस नगरी मे दो भाई रहते थे । उनके नाम जयघोष और विजयघोष थे । दोनों भाई बडे पण्डित थे । वेद, इतिहास, निघटु, न्याय और साहित्य आदि विविध विषयो मे पारगत थे । एक बार जयघोष प्रात काल गगा-स्नान करने गये । उनकी चोटी बडी लम्बी थी । जब स्नान किया तो चोटी खोल कर उसे खूब धोया ! वापिस बाँधने लगे तो उसमे एक मछली भी बँध गई और तडप-तडप कर मर गई । स्नान के पश्चात् बाहर आकर धूप मे चोटी सुखाने लगे तो वह मछली नीचे गिर पडी !

मरी मछली को देख कर जयघोष के हृदय को बडी चोट पहुँची । वह अपनी असावधानी के लिए पछताने लगे और सोचने लगे—करने चले थे धर्म और हो गया अधर्म ! फिर सोचा—इसे गगाजी मे डाल दूँ तो इसकी गति सुधर जायगी !

जयघोप पण्डित ने मरी मछली उठाई और उसे स्वर्ग मे पहुँचाने के विचार से गगाजी मे डाल दी ! गगाजी मे डालना था कि एक बडा मच्छ उस पर झपटा और उसे निगल गया !

जयघोप के विषाद का पार न रहा । वह सोचने लगे मैं मछली का उद्धार करना चाहता था, मगर मच्छ उसे बीच ही मे निगल गया ! अब मेरा कल्याण कैसे होगा ? हाय, मेरे कल्याण का क्या उपाय है ? मुझे क्या करना चाहिए ?

इस प्रकार विचार करते-करते वह घर की ओर तो नही गये, जूते और वस्त्र वही छोडकर जगल की ओर चल पडे ।

उनके रक्षण और पोषण के लिए समान रूप से उपदेश देते हैं। प्रश्नव्याकरण सूत्र मे कहा है —

सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए,
पावयणं भगवया सुकहियं ।।

अर्थात् भगवान् ने समस्त जगत् के जीवो की रक्षा और दया के लिए प्रवचन का उपदेश दिया है।

अतएव तीर्थङ्कर भगवान् तीनो लोको के पालक, रक्षक, और उद्धारकर्त्ता हैं। इस कारण उन्हे जगन्नाथ, जगदीश्वर और तीन लोक के नाथ भी कहते हैं। यही कारण है कि देवता भगवान् के मस्तक पर तीन छत्रो का निर्माण करते हैं तो जिनके मस्तक पर सुशोभित होने वाले तीन छत्र त्रिलोक सम्बन्धी परमेश्वरता को प्रकट करते हैं, उन ऋषभदेव को ही हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो ! भगवान् ने ठाणाग सूत्र मे फर्माया है कि मनुष्य का उत्थान तीन ही बातो पर निर्भर है। यह तीन हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। इन्हें रत्नत्रय (तीन रत्न) भी कहते हैं। यही तीनो सम्मिलित होकर मोक्ष के मार्ग होते हैं। इनके विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र यह तीन ससार के मार्ग हैं।

किसी मनुष्य को कोई शारीरिक व्याधि हो जाती है तो वैद्य उसे तीन चीजो की फाकी देता है। हरड, बहेडा और आंवला, यह तीनो क्रमशः कफ, पित्त और वात को शात करने वाले हैं। इन तीनो से उक्त तीन तरह की बीमारी दूर हो जाती है। वात, पित्त और कफ इन तीनो की सम-अवस्था को

एव पुरुषार्थ से प्रकट हो सकेगी। क्या जैनशास्त्र और क्या अन्यशास्त्र सभी एक स्वर से ही यही सदेश देते हैं कि दूसरो की टागो से तुम नही चल सकते; जब चलोगे, अपनी टागो से चलोगे। कहा भी है—

उद्धरेदात्मनाऽत्मानम् ।

अर्थात्—अपना उद्धार आपसे ही करना चाहिए। दूसरो की सहायता के भिखारी बन कर तुम उठ नही सकते। दीनता अपने आप मे पतन है। पतन से उत्थान नही होगा। जैनशास्त्र इस सबंध मे बहुत स्पष्ट हैं और उसके शब्द-शब्द से यही सन्देश टपकता है—

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा में कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणु, अप्पा मे नंदणं वणं ।।
अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय–सुपट्ठिओ ।।

—उत्तराध्ययन, अ २०

अर्थात्-प्रत्येक प्राणी का आत्मा ही वैतरणी नदी है, कूट शाल्मली वृक्ष है, आत्मा ही कामधेनु है और आत्मा ही नन्दनवन है।

प्रत्येक प्राणी आप ही अपने सुख और दुःख का स्रष्टा और सहारक है, स्वय ही अपना मित्र और शत्रु है। जब वह सन्मार्गगामी होता है तो मित्र और जब उन्मार्गगामी होता है शत्रु बन जाता है।

वह सोचता है कि कौन शुभ समय आएगा कि मै सब प्रकार की बुराइयो से बचने मे समर्थ हो सकूँगा ! पर मिथ्यादृष्टि अपनी वर्त्तमान स्थिति मे सन्तुष्ट रहता है और इस कारण वह उसमे कुछ भी सुधार की आवश्यकता नही समझता ।

आप सोच सकते हैं कि जो रोगी रोग मे ग्रस्त है, किन्तु अपने को रोगी नही समझता, उसकी क्या हालत हो सकती है ? यही हाल मिथ्यादृष्टि का होता है ।

भाइयो ! मिथ्यात्व की बीमारी बडी अद्भूत बीमारी है । यह वह बीमारी है जो बीमार को बीमारी का भान भी नही होने देती । यह बीमारी उस समय मिटती है, जब कोई सद्गुरु रूपी चतुर वैद्य मिल जाता है और अन्तरग की कुछ शुद्धता होने लगती है । सम्यक्त्व इस बीमारी की अचूक रामबाण औषध है । सम्यग्दर्शन के होने पर मिथ्यात्व नही ठहर सकता । दोनो परस्पर विरोधी हैं । मिथ्यात्व का उदय होने पर सम्यक्त्व समाप्त हो जाता है और सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व नष्ट हो जाता है । मिथ्यात्व की महाबीमारी हटी कि शेष समस्त बीमारिया भी अधिक काल नही टिक सकती । जैसे सेनापति का पतन होने पर सब सैनिक तितर-बितर हो जाते हैं, उसी प्रकार मिथ्यात्व के नष्ट होते ही अनेक शत्रु-सैनिक भाग खडे होते है ।

भाइयो ! बतलाइए, श्रावक को अठारह पापो मे से कितने पाप लगते हैं ?

उत्तर मिला—'सत्तरह पाप लगते है ।'

मै कौन हू ? इस प्रश्न के उत्तर मे अपने आपको पहचानने की बात है। अपने उद्धार की चिन्ता करने वाले को सर्वप्रथम अपना स्वरूप समझना चाहिए। दूसरा प्रश्न इससे मिलता-जुलता है, किन्तु उसमे आत्मा के गुणो के सबध मे विचार करना पड़ेगा। कई लोग समझते है कि आत्मा चार भूतो का ही पिण्ड है और इससे अतिरिक्त और कुछ नही है। न तो कही से आता है और न कही जाता है ? जैसे दीवार पर बनाया हुआ चित्र न कही से आया है, न कही जाता है, वह वही बनता और अन्त मे वही मिट जाता है, इसी प्रकार देह मे चेतना उत्पन्न होती है और देह मे ही नष्ट हो जाती है। किन्तु वास्तव मे ऐसी बात नही है। आत्मा अनादिनिधन है। उसकी स्वतत्र सत्ता है। वह भूतो का पिण्ड नही है, शरीर नही है। वह ज्ञान-दर्शनमय ज्योति है। शरीर जुदा है आत्मा जुदी है। यह तो सब जानते है कि घर अलग है और घर मे रहने वाला अलग है, इसी तरह शरीर और आत्मा न्यारे-न्यारे है। यही नही, आत्मा के अन्दर उत्पन्न होने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ, रूप, कषाय, कृष्ण नील कापोत तेजो पद्म और शुक्ल लेश्याएँ आदि-आदि भी आत्मा से विभिन्न है। राम झरोखे बैठ कर सबका मुजरा लेते हो, किन्तु झरोखा न्यारा है या नही ?

इन प्रश्नो पर विचार किये बिना मनुष्यपन का ज्ञान भी होना कठिन है।

इसीलिए मुनिराज कहते हैं कि तू कौन है, कहाँ से आया है और कहाँ का टिकिट कटाएगा, इन बातो का विचार करो।

कहाँ जाओगे ? जोधपुर, ब्यावर, उदयपुर या जयपुर ओगे ? कहाँ जाकर बेठोगे ? सोचो कि जब आये थे तो साथ

कुछ दूर चले थे कि सामने से शनै शनै. पैर आगे बढाते हुए एक निर्ग्रन्थ मुनिराज आते दिखाई दिये। सन्निकट आये तो जयघोष ने उन्हे नमस्कार किया और हाथ जोड कर कहा—महात्मन्! मेरा उद्धार कैसे होगा ?

मुनिराज—तेरा उद्धार तू ही करेगा!

जयघोष—सो कैसे महाराज ?

मुनिराज—सर्वज्ञ प्रभु का आदेश है कि —

'अप्पा ! तुममेव तुमं मित्तं, किं बहिया मित्तमिच्छसि ।'

अर्थात्—हे आत्मन्! तू अपना मित्र–सहायक–आप ही है; क्यो दूसरे सहायको की अभिलाषा करता है ?

प्रभु की इस वाणी मे निराश, हताश और अपने आपको अकिंचत्कर समझने वालो को अपूर्व सान्त्वना है, प्रबल प्रेरणा है, स्फूर्ति है, जीवन है और गति देने की क्षमता है। यह एक ही वाक्य साहसहीनो के हृदय मे साहस का स्रोत बहा देता है।

जयघोष—साहस, सान्त्वना और प्रेरणा होने पर भी सचाई तो होनी चाहिए महात्मन्! यह किस प्रकार सत्य है कि मैं अपना उद्धार आप ही कर सकता हूँ ?

मुनिराज—उद्धार का अर्थ है तेरी आत्मा मे जो शक्तियाँ स्वाभाविक हैं, किन्तु बाह्य पदार्थों के सयोग के कारण वे छिप गई हैं, दब गई हैं, उन्हे अपने असली रूप मे लाना ही उद्धार का अर्थ है। वह शक्तियाँ तुम्हारे अज्ञान, वासना या कषाय आदि से छिपी या विकृत हुई हैं और तुम्हारे ही ज्ञान

तू कौन है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र है ? ब्राह्मण आदि किसी के नाम हैं ? सचेतीजी, कोठारीजी, मूथाजी और बालियाजी किसको कह रहे हो ? हाथ को या नाक को ? कहो, स्त्री और पुरुष कौन है ? कागज को थूक लगा कर दीवार से चिपका दो तो वह कितनी देर टिकेगा ? वह तो थोडी ही देर में खिर जाएगा। दीवार से चिपका देने पर भी कागज दीवार से अलग है। इसी प्रकार ब्राह्मणत्व आदि और जाति तथा गोत्र आदि सब चीजें आत्मा से भिन्न है। आत्मा इन सबसे निराला है। वह शरीर से ही भिन्न नही है, कर्मों से और कर्मोपाधि-जनित समस्त पर्यायो से भी भिन्न है। वह औदयिक भावो से औपशमिक और क्षायोपशमिक भावो से भी भिन्न है। और जब इन सब से भी भिन्न है तो महल, मकान, दास-दासी, हाथी-घोड़ा, पुत्र कलत्र आदि से अभिन्न कैसे हो सकता है ?

एक कुम्हार ने मटके बनाए और बाजार मे बेचने बैठा है। उन मटके पर किसी का नाम नही लिखा है कि यह ब्राह्मण का मटका है, यह क्षत्रिय का मटका है, यह वैश्या का और यह शूद्र का मटका है। किन्तु जो जिस मटके को खरीद कर ले जाता है, वह उसी का मटका कहलाता है। यद्यपि सभी मटके एक-सी मिट्टी के बने है, एक ही कारीगर ने बनाए है और एक साथ बेचने के लिए रक्खे हैं, किसी मटके पर किसी का नाम नही लिखा है, फिर भी वह खरीददार का कहलाने लगता है। जिसे ब्राह्मण ने खरीदा वह ब्राह्मण का, जिसे चमार ने लिया वह चमार का कहलाया। एक मटका महतरानी ने खरीदा और पानी भर कर उसने कही रास्ते मे रख दिया। ब्राह्मणी उधर से निकलती है तो अपने कपड़े बचा कर निकलती हैं। समझती मटका छू गया तो मैं अपवित्र हो जाऊंगी ? किन्तु यह

तात्पर्य यह है कि जैसे वैतरणी नदी नरक का शाल्मली वृक्ष दुःख का कारण होता है उसी प्रकार अशुभ परिणति वाला आत्मा स्वयं अपने दुःख का कारण है। और जैसे कामधेनु तथा नन्दनवन सुख का कारण होता है, उसी प्रकार शुभ परिणति वाला आत्मा भी अपने सुख का कारण आप ही है।

हम से भिन्न कोई दूसरा हमे सुखी या दुखी बना सकता है, यह भ्रम मात्र है। ससार की कोई दूसरी सत्ता तुम्हे सुख-दुःख पहुँचाने मे समर्थ नही है। तुम और केवल तुम ही अपने आपको सुखी-दुखी बनाते हो। ऐसा समझ कर जो सुख के लिए योग्य साधना करता है; वही सुखी होता है।

इस प्रकार मुनिराज ने बतलाया कि अपने उद्धार के लिए पराया मुँह ताकने से काम नही चलेगा। दूसरे के द्वारा किया हुआ उद्धार तुम्हारे काम नही आएगा। अतएव स्वय उठो और प्रयत्न करो।

जयघोष—महात्मन्, तो आत्मोद्धार के लिए क्या करना चाहिए?

मुनिराज—भव्य, यो तो इस प्रश्न का उत्तर लम्बा है, किन्तु सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि—

कोऽहं कीदृक् कुत आयातः ?

अर्थात्—(१) मैं कौन हूँ? (२) मेरा स्वरूप कैसा है? (३) मैं कहाँ से आया हूँ? इन तीन प्रश्नो का समीचीन उत्तर प्राप्त करने से तुम्हारे भीतर दिव्य दृष्टि जागृत हो जाएगी और फिर तुम अपने उद्धार का मार्ग आप ही खोज निकालोगे।

भाइयों ! ये बाते मैं अपनी ओर से नही कह रहा हूँ आत्मा की बीमारियो के ज्ञाता वीतराग भगवान् रूपी महावैद्य ने यह दवाई बतलाई है । उन्ही की बतलाई हुई दवाई मैं आपको बतला रहा हूँ । इसका सेवन करोगे तो सब बीमारियो से छुटकारा पा जाओगे ।

मतलब यह है कि सम्यग्दर्शन मिथ्यात्व को हरेगा, सम्यग्ज्ञान नयी बीमारी नही होने देगा और चारित्र स्वास्थ्य को पुष्ट करेगा । तुम पौषध करते हो और कहते हो कि आज हमारे चौदस का पौषध है, मगर तुम्हे यह भी जानना चाहिये कि वास्तव मे पौषध किसे कहते है ? वास्तव मे तुम्हारी वह क्रिया, जो आत्मा के गुणो को पुष्ट करने वाली हो, पौषध कहलाती है । आत्मा के गुण ज्ञान-दर्शन आदि हैं । इन्हे मजबूत बनाना ही असली पौषध है । पौषध हो या और कोई भी क्रिया हो, सम्यग्दर्शन के बिना उसका मूल्य नही है । एक जन्म मे एक मिनिट के लिए भी सम्यग्दर्शन आ गया तो बेडा पार हो गया समझो ! अन्तमुंहूर्त्त जितने अल्प काल तक रहने वाले सम्यग्दर्शन मे भी इतनी आश्चर्यजनक शक्ति होती है कि वह जन्म-मरण की असीमता को समाप्त करके सीमित कर देता है । वह कृष्णपक्षी से शुक्लपक्षी बना देता है और मोक्ष की एक निश्चित काल-मर्यादा कायम कर देता है । सम्यग्दर्शन होने के पश्चात्, भले ही वह विद्यमान न रहे, फिर भी आधे पुद्गलपरावर्त्तन से अधिक जन्म-मरण नही करना पडता ।

इसलिए भाइयो ! आने दो, आत्मा के इस सरोवर मे एक लहर सम्यग्दर्शन की आने दो । एक ही लहर तुम्हारे ...त्त ताप को शान्त कर देगी, अनिर्वचनीय शीतलता उत्पन्न

स्थिति भी कब तक रहती है ? जब तक वह मटका फूट नही जाता, तभी तक वह अस्पृश्य है। महतरानी उस मटके को लेकर चली। ठोकर लगी और मटका फूट कर टुकडे-टुकडे हो गया। वह टुकडे रास्ते मे बिखरे हैं। ब्राह्मणी आती है और निस्संकोच उन पर पैर रखती चली जाती है। अब वह परहेज नही करती। क्यो ? इसलिए कि जब तक मटका अक्षत था तब तक महतरानी का उसके प्रति अपनापन था। अब उसका अपनापन नही रहा तो ब्राह्मणी को परहेज भी नही रहा।

सार यह है कि अपनापन ही नाना प्रकार की कल्पनाओ का कारण है। अपनापन अर्थात् ममत्व हटा कि सकट कटा, अज्ञान का पर्दा हटा और मिथ्यात्व मिटा। जब तक ममत्व की मिथ्यादृष्टि बनी है तभी तक चौरासी का चक्कर चल रहा है। मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दर्शन से नष्ट होती है।

सम्यग्दर्शन में ऐसी अपूर्व शक्ति है कि वह मिथ्याज्ञान को भी सम्यग्ज्ञान बना देता है। सम्यग्ज्ञान नयी बीमारी पैदा नही होने देता और पुराने रोगो को मिटाता है। अज्ञानी जीव करोडो वर्षों तक घोर तपश्चरण करके जिन कर्मों को नष्ट कर पाता है, ज्ञानी उन्हे क्षण भर मे समाप्त कर देता है। सम्यग्ज्ञान की महिमा अपूर्व है। ज्ञान वह उज्ज्वल और पवित्र प्रकाश है जिसमे स्व-पर का भेद दिखलाई देता है और जिसके अभाव मे, हजारो दीपक प्रज्वलित होने पर भी घोर अन्धकार ही अन्धकार है। ज्ञान के अभाव मे की जाने वाली समस्त क्रियाएँ बन्ध का ही कारण होती है। वही चारित्र मे प्राण-शक्ति उत्पन्न करता है। ज्ञानपूर्वक की जाने वाली क्रियाएँ ही मुक्ति का कारण बनती है।

करने मे देरी नही करता। जब तक ज्ञान नही होता तब तक ही सपने में भूत और भूतनी नाचा करते है। वास्तव मे मिथ्यात्व भूत के समान ही है। जैसे भूत के आवेश मे मनुष्य कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, औचित्य-अनौचित्य आदि को भूल जाता है और यद्वा-तद्वा बकता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व के आवेश में भी सत्-असत् का विवेक भूल जाता है। जगत् मे नाना प्रकार की भ्रमपूर्ण विचारधाराएँ प्रचलित हैं। उन सब के मूल को खोजने के लिए चलेगे तो स्पष्ट मालूम हो जायगा कि वह मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व से प्रेरित मनुष्य असत् को सत् और सत् को असत् प्रतिपादित करने लगता है। कोई अजर-अमर आत्मा के अस्तित्व का निषेध करता है कोई स्वर्ग-नरक आदि परलोक का निषेध बतलाता है, कोई रागी-द्वेषी व्यक्तियो की देवाधिदेव के रूप मे उपासना और अभ्यर्चना करते हैं कोई कचन-कामिनी के क्रीत दासो को गुरु बना लेते है और उनके प्रसाद से अपनी लौकिक कामनाएं पूर्ण करने की आशा रखते है। कोई भैरो-भवानी के सामने पुत्र-पौत्र पाने की इच्छा से मस्तक रगडते है, कोई-कोई वीतराग देव की उपासना धन-दौलत पाने की अभिलाषा से करते है! कहा तक कहे और कहा तक गिनाएँ! मिथ्यात्व तो ऐसा भूत है कि उसने सहस्रो रूप धारण कर रक्खे हैं। कोई किसी रूप से और कोई किसी रूप से मूढ बना हुआ है। सारे ससार मे इस भूत का दौरदौरा है। स्वर्ग-नरक और मर्त्यलोक सभी मे उसका प्रवेश है। यह भूत ससार को चक्कर मे डाले है। वह अत्यन्त प्रचण्ड है।

जब सद्गुरु रूपी महामात्रिक का सयोग मिलता है . अनन्तानुबन्धी चौकड़ी तथा दर्शनमोहनीय की तीनो

करेगी ! उस लहर मे स्नान करके तुम कृतार्थ हो जाओगे ! हे प्राणी ! तेरे अन्त करण मे सदैव लवणसमुद्र भरा रहता है तो एक लहर गगा की भी आने दे ! गगा की एक ही लहर तेरे अनादिकालीन कल्मष को धो देगी, तेरा अन्त करण विमल और विशुद्ध बन जाएगा ! तेरी साधना और तेरी तपस्या पवित्र हो जाएगी ! हे आत्मन् ! उपदेशक तुझे मार्ग बतला सकता है, किन्तु चलना तो तुझको ही पडेगा ! अपना उद्धार तो तुझे आप ही करना पडेगा ।

हाँ, तो मुनिराज का यह सुधास्यन्दि उपदेश सुनकर जयघोष पण्डित के नेत्र खुल गये ! उसका पाडित्य चमक उठा ! आज ही उसे ज्ञान का सार प्राप्त हुआ । इतने दिनो तक वह पण्डिताई का भार ढो रहा था, अब उसकी पण्डिताई उसके लिए पख बन गई ! ऊँचा उडने का कारण बन गई । जयघोष को आत्मा की शक्ति का भान हो गया । वह सोचने लगा—ओह, मैं स्वय ही अपना उद्धार कर सकता हूँ ! मेरा कल्याण मेरे ही द्वारा होगा ! अपने श्रेयस् के लिए मुझे किसी के सामने भिखारी की तरह भीख नही मांगनी है । मेरे कल्याण की चावी मेरे ही हाथ मे है ! तब फिर आत्मकल्याण की साधना मे क्यो विलम्ब करना चाहिए ? 'शुभस्य शीघ्रम' करना ही योग्य है ।

अन्त करण मे उच्च भावना की ऊर्मियाँ उठने लगी और जयघोष ने उसी समय अठारह पापो का त्याग करके भागवती दीक्षा धारण कर ली । उन्होने मासखमण की तपस्या भी आरम्भ कर दी ।

भाइयो ! आत्मोन्मुख ज्ञान चाहिए । जब इस प्रकार का ज्ञान प्रकट हो जाता है तो मनुष्य कल्याण-मार्ग मे प्रस्थान

मुनि को देख कर, दूसरे पण्डितो ने कहा—'महात्मन्' यहाँ आपकी कोई आवश्यकता नही है ! इस प्रकार जब आपस मे वार्तालाप होने लगा तो विजयघोष भी भीतर से बाहर आ गये ! विजयघोष ने दृष्टि पडते ही अपने ज्येष्ठ भ्राता को पहचान लिया। उसने कहा—महात्मन् ! भोजन ग्रहण कीजिए। दीक्षा ग्रहण करने की सूचना भी आपने नही दी !

मुनिराज बोले—मै भोजन लेने यहाँ नही आया हूँ, मैं तो तुम्हे तिरने का मार्ग बतलाने आया हू। जिस उपाय से मैं तिरा, वही उपाय तुम्हे बतलाना चाहता हूँ।

भाइयो ! ससार मे कौन मित्र और कौन शत्रु है ? वास्तव मे जो हमारे धर्म का सहायक हो वही सच्चा मित्र है और जो कुमार्ग की ओर ले जाय वही शत्रु है। धर्म के पथ पर चलाने वाले से बढ कर और कोई मित्र तथा सहायक नही हो सकता ! जम्बूकुमार की जीवनी मालूम है ? उनकी सद्य.परिणीता पत्निया उन्हे गृहस्थाश्रम मे रखना चाहती थी और जम्बू कुमार उन्हे सयम के पथ पर ले जाना चाहते थे। आपस मे लम्बा वार्त्तालाप चला। आखिर जम्बूकुमार की विजय हुई। उनकी पत्नियो को जब ज्ञान हुआ तो वे कहने लगी–ससार के दूसरे पति डूबाने वाले हैं ! हम बडो भाग्यशालिनी हैं कि हमे आप सरीखे तारने वाले पति मिले हैं !

अभिप्राय यह है कि वास्तव मे अपना प्यारा वही है जो अपने को धर्म की सहायता दे। किसी जगह साधुजी विराजमान थे और सतियाँ भी विराजमान थी। वहाँ एक देव आया उसने साधु-साध्वियो को नमस्कार न करके सब से पहले महिला को नमस्कार किया। तब लोग कहने लगे—महा-

प्रकृतियो का उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम होता है, तब कही इस भूत की शक्ति ढीली पडती है और इससे पिण्ड छूट पाता है। परन्तु ऐसा सुयोग सब को नही मिलता। इसके लिए तीन करण करने पडते है। उनके पश्चात् ही सम्यग्दर्शन का लाभ होता है और सम्यग्दर्शन ही मिथ्यात्व रूपी भूत को भगाने की रामबाण दवा है।

हाँ, तो जयघोष मुनि मासखमण की तपस्या करते हुए, गुरु के चरणो मे निवास करने लगे और पूर्वश्रुत का अध्ययन करने लगे। जब श्रुत का अध्ययन समाप्त हो गया तो गुरु से पृथक् भी विचरण करने लगे।

उधर जयघोष का भाई विजयघोष, बहुत देर तक अपने भाई को घर लौटा न देख कर गगाजी के घाट पर आया। विजयघोष ने देखा—जयघोष के जूते और कपडे पडे हैं किन्तु उसका पता नही है। उसे निश्चय हो गया कि मेरा भाई गगा मे डूब कर मर गया है। उसके चित्त मे घोर सन्ताप हुआ, परन्तु मनुष्य ऐसी जगह एकदम असहाय और निरुपाय है!

विजयघोष अपने भाई का सामान लेकर घर लौटा और सारा क्रियाकर्म सस्कार किया। उसने कुछ समय के अनन्तर अपने भाई के नाम से एक यज्ञ का अनुष्ठान किया। सयोगवश उधर यज्ञ हो रहा था कि जयघोष मुनि वहाँ जा पहुचे। वह मासखमण का पारणा करने के लिए, भिक्षा के अर्थ, तीसरे पहर मे गोचरी को निकले। चलते-चलते अपने भाई विजयघोष के घर पहुँचे। उन्होने देखा कि यहाँ तो यज्ञ का समारभ चल रहा है।

ा बाई के पूर्वभव का पति युगबाहु है। युगबाहु को उसके ई भाई ने जब तलवार से घायल कर दिया तब वह न रोई, चिल्लाई और न हाय-हाय करने बैठी। इसने हृदय को दृढ़ रके, धैर्य तथा साहस रख कर, घायल पति का सिर अपनी ोद मे रख लिया और उसे नमस्कार मत्र सुनाने लगी। साथ प्रतिबोध दिया कि—तलवार मारने वाले का अपराध नहीं । उस पर रोष या द्वेष मत धारण करना—चित्त मे द्वेष की ल्की सी लहर भी न आने देना। जो भी घटता है, सब अपने र्म के उदय से ही घटता है। अपने सुख-दुःख के लिए प्रत्येक ाणी आप ही उत्तरदायी है। ऐसा सोचकर समभाव धारण रो और परमेश्वर के साथ आत्मा को जोड दो! ऐसा करने आपका अन्तिम समय सुधरेगा। मन मे कषाय लाने से भविष्य ागड जाना निश्चित है।

बहिनो! पत्नी का क्या कर्त्तव्य है, इस घटना से सीखो। गर तुम अपने पति की सच्ची हितैषिणी हो तो अपने पति को र्म के मार्ग मे प्रेरित करो। ऐसे नाजुक प्रसग पर भी जो बाई ीरज रखकर पति के धर्म मे सहायक होती है, वही वास्तव धर्मसहायिका पत्नी है। इसी अभिप्राय से शास्त्र मे पत्नी को म्मसहाया' कहा गया है।

हंस जाता है इसकी सलाह ले,
इसके हाथ से सुकृत करा ले ॥

भाइयो! यह हंस निकल कर जा रहा है, इसे सँभालो अन्त समय मे इससे कुछ सुकृत करा लो। बहिनो! तुम्हारे ने तुम्हे अनेक आभूषण पहनाए है। एक आभूषण तुम भी

राज मनुष्य तो भूल जाते हैं किन्तु क्या देवता भी भूल जाते हैं ? इस देव ने आप जैसे केवलज्ञानी को छोडकर पहले एक बाई को नमस्कार किया ! इसका क्या कारण है ?

केवलज्ञानी बोले—इस देवता पर बाई का महान् उपकार है। कहा भी है —

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किसके लागूं पाय ?
बलिहारी गुरुदेव को, गोविन्द दिया बताय ।।

भक्त सोचता है—गुरु और देव दोनो सामने उपस्थित है। पहले किसको नमस्कार करना चाहिए ? इस प्रकार का सकल्प-विकल्प होने पर उसकी बुद्धि निर्णय देती है कि गुरु न होते तो कैसे पता चलता कि यह देव है और हमारे आराध्य हैं ? गुरुजी ने ही तो भगवान् का स्वरूप समझाया है। अतएव मेरे आसन्न उपकारी गुरु महाराज ही हैं। इन्ही के अनुग्रह से मैंने परमात्मा का स्वरूप समझा है।

देखो, णमोकार मत्र मे पहले अरिहन्तो को और फिर सिद्धो को नमस्कार किया गया है। पद तो सिद्धो का बडा है। उन्होने आठो कर्मों को खपा कर मुक्ति प्राप्त कर ली है। अरिहन्त चार कर्मों का ही क्षय करते है। फिर भी पहले अरिहन्तो को क्यो नमस्कार किया गया ? कारण यही कि अरिहन्त भगवान् न होते तो सिद्धो का स्वरूप बतलाने वाला इस जगत् मे कोई न होता !

तो मुनिराज ने कहा—देवता ने भूल नही की है। इस बाई मदनरेखा का इस देवता पर महान् उपकार है। यह देवता

जगत में वो ही सच्ची नार,
पति का देवे जन्म सुधार ।।टेर।।

ं जनो को यह घटना सुनकर विस्मय हुआ । ने कहा—सचमुच इस ससार मे सच्ची अर्द्धाङ्गिनी कारिणी वह नारी है, उसी को 'धर्मपत्नी' का दिया जा सकता है, जो अपने पति के आत्मिक सहायिका बनती है और अवसर आने पर पति को सुधार देती है। 'भोगपत्नी' तो सभी होती का पद पाना सरल नही है। भोगपत्नी स्वय अपने पति को भी डुबाती है। वह अपने पति के ने वाली है। धर्मपत्नी अपने और पति के भी क होती है।

साधारण स्त्री होती तो ऐसे दारुण अवसर पर कर रोती, बिलखती और अपने सुख के भग ; शोक करती। वह अपने स्वार्थ के लिए सताप सती मदनरेखा एक असाधारण महिला थी। न समय उपस्थित होने पर उसने अपने नही किया। वह अपना सुख छिन जाने के बल्कि पति के कल्याण की चिन्ता की। वह पडी, विवेक का आश्रय लेकर पति को तत्त्व लगी। उसने यही कहा—पतिदेव, होनहार है। भगवान् केवली ने अपने ज्ञान मे जो देखा त नही हो सकता। यह तो इसी प्रकार अतएव आप मणिरथ के कृत्य का विचार क मत होने देना। आत्मा अखण्ड और

उसे पहना दो ! अन्तिम समय मे धर्म का साज दे दो ! रोने बैठोगे तो क्या होगा ? दुनिया को भले दिखला दो कि तुम्हे पति से प्रेम है, मगर इससे न पति का कल्याण होगा, न तुम्हारा कल्याण होगा। तुम मोह मे पड कर मरणासन्न पति के चित्त मे भी मोह उत्पन्न करोगी और उसके अन्तिम जीवन को बिगाड दोगी। यह धर्म मे सहायक होना नही है। अगर तुम शास्त्र के अनुसार सच्ची पत्नी हो तो ऐसे प्रसग पर पति को णमोकार मत्र सुनाओ, सथारा कराओ, वैराग्यमय भजन सुनाओ और ससार की अनित्यता समझाओ। कहो कि हमारी चिन्ता मत करना। हम अपने कर्म भोगेंगे, आप शुभ भावना लेकर पधारो। झूठी मोह-ममता मे मत फँसो ! इतने काल का ही सयोग था। सयोग के बाद वियोग तो होना ही था, अब हो रहा है। इसमे कोई अद्भूत बात नही है। यह तो अनादि की रीति है।

तो मदनरेखा ने अपने परलोकप्रयाण के लिए उद्यत पति से कहा—पतिदेव ! किसी पर द्वेष न करना। हृदय मे समभाव की तरगें उठने दो। ससार को भूल जाओ और परमात्मा के चरणो मे अपने आपको अर्पित कर दो !

युगबाहु ने मदनरेखा का कथन मान लिया। उनने अपने चित्त को निष्कषाय बना लिया और नमस्कारमत्र मे ध्यान लगा लिया। उसके परिणामस्वरूप वह प्रथम देवलोक मे देवता के रूप मे उत्पन्न हुआ है और वही देवता इस समय यहाँ आया है ! देवता अपने अवधिज्ञान के बल से जानता है कि मदनरेखा ने धर्म की सहायता देकर मेरा महान् उपकार किया है। अतएव कृतज्ञता से प्रेरित होकर इसने पहले मदन-रेखा को नमस्कार किया है। कहा भी है —

तो ज्ञानी कौन और अज्ञानी कौन है ? जो दूध
है वह अज्ञानी है और जो दूध मे मिसरी घोलता
अर्थात् दूध के समान मनुष्य जीवन मे विषय-
मिलाने वाला अज्ञानी और धर्म की मिसरी
वास्तव मे ज्ञानी है ।

ने अपने जीवन मे धर्म की मिसरी घोल
भाई को भी उसका मधुर स्वाद चखाना।
वे विजयघोष से बोले—पाडित्य की सार्थकता
मे हैं । उद्धार चाहते हो तो निकल पडो घर
साधु दीक्षा ! याद रक्खो, रेती का लड्डू
पर मारोगे तो रेती चिपकेगी नही, किन्तु चिकनी
वही चिपक कर रह जाएगा । तुम्हारे चित्त में
ता होगी तो चौरासी के चक्कर मे पडे रहोगे
रूक्षवृत्ति होगी तो चक्कर मे नही पडोगे ।

वचन सुनकर विजयघोष को प्रतिबोध प्राप्त
समय सर्वस्व त्याग कर साधु बन गया । दोनों
के, केवलज्ञानी होकर सिद्ध-बुद्ध हुए ।

है कि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान आने पर
मे बहुत विलम्ब नही लगता । अतएव अपने
र्मल और सुदृढ बनाओ । मानवजीवन की यही
है । इस प्रकार की सफलता जिन्हे प्राप्त होती है,
आनन्द ही आनन्द हो जाता है !

अविनाशी है। शरीर नाशवान् है। दोनो का शाश्वत साहचर्य सम्भव नही है। कोई किसी निमित्त से और कोई किसी निमित्त से इस शरीर का परित्याग करता है। कोई-कोई तो चलते-चलते ही ठोकर खाकर गिरता और प्राण छोड देता है। कोई मकान आदि ऊँची जगह से गिरकर मर जाता है। कोई मोटर के 'एक्सीडेंट' से चल देता है तो कोई रेलो के लडने पर अन्तिम विदाई ले लेता है। किसी-किसी के प्राणो को हवाई जहाज उडा ले जाते है। कोई-कोई मनुष्य के द्वारा शस्त्रो से मारे जाते हैं और कोई सर्प, सिंह आदि हिंसक जीव-जन्तुओ के शिकार बन जाते हैं। किसी के हृदय की धडकन सहसा बंद हो जाती है और बाते करते-करते प्राणहीन हो जाता है। इस प्रकार इस जगत् मे मृत्यु के असख्य कारण विद्यमान हैं। इन मौत के प्रचुर और सुलभ निमित्तो को देखते हुए आश्चर्य हो सकता है तो इसी बात का कि मनुष्य इतना भी कैसे जीवित रह जाता है! उसके मरने मे तो कोई आश्चर्य है ही नही। फिर भी आत्मा अजर-अमर है। ससार के समस्त निमित्त एकत्र होकर भी आत्मा को नही मार सकते। मणिरथ ने युगबाहु के शरीर को समाप्त कर दिया, पर क्या वह आत्मा का अन्त कर सका? युगबाहु की आत्मा तो देवता बन कर चमकी!

मुनिराज के द्वारा देवता का जो वृत्तान्त सुना तो मदन-रेखा को अतीव हर्ष हुआ। वह खडी होकर कहने लगी—अब आप मुझे आज्ञा दीजिए, मैं साध्वीदीक्षा लेना चाहती हूँ।

देवता ने कहा—खुशी से लो!

सती मदनरेखा महासती बन गई।

कार शोभायमान होते थे जैसे सुमेरु पर्वत के
पर उदीयमान चन्द्रमा के समान स्वच्छ निर्झर
भित हो रही हो ! ऐसे भगवान् ऋषभदेव को
नमस्कार हो ।

ह चामर क्या सूचना देते हैं ? वे जगत् को
देखो, जैसे हम पहले नमते है, तब कही ऊपर
तुम भगवान् के चरणो मे नमोगे तो स्वर्ग
हो जाओगे । वस्तुत नम्रता या विनय
आधार है । विनय खीच-खीच कर अन्य सद्-
है । कहा भी है —

विहीनस्य, व्रतशीलपुरस्सराः ।
निःशेषा, गुणा गुणवतां मताः ॥

× × ×

मुक्तेर्विनयः कारणं श्रियः ।
प्रीते-र्विनयः कारणं मतेः ॥

और विनय दोनो के गुण-अवगुण पर प्रकाश
विनय से क्या हानियाँ होती हैं ? जिसमें
व्रत, शील आदि-आदि सभी गुण, जिनकी
करते है, निष्फल हो जाते है । अविनय
बना देती है । इसके विपरीत, विनय
को प्रदान करती है, विनय से सब प्रकार
विनय से प्रीति की उत्पत्ति होती है और
ज्ञान का लाभ होता है ।

७

पाँच आस्रव

स्तुतिः—

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभम्,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार,
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान् पुरुषोत्तम, ऋषदेव भगवान् ! कहा तक आपकी स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! कहा तक आपके गुण गाये जाए ?

जब भगवान् समवसरण मे विराजमान् होते थे तो उनके दोनो तरफ दो श्वेत चामरो के जोडे होते थे। आचार्य महाराज ने चामरयुगल का अत्यन्त सुन्दर रूप मे वर्णन किया है। भगवान् का शरीर स्वर्ण के समान उज्ज्वल वर्ण का था और उस पर

असीम शक्ति को अच्छादित कर दिया है। तेरी
न शक्ति और दर्शनशक्ति केवलज्ञान दर्शन की तुलना
। तू इन्द्रियो का गुलाम बन रहा है। इन्द्रियो
ो जानता और देखता है। फिर भी अभिमान

प्रकार चक्रवर्ती की तुलना मे अपने वैभव का
। कितना तुच्छ है तेरा वैभव ! चक्रवर्ती को जाने दे
मे आज भी बडे-वडे वैभवशाली है, उनसे अपनी
के देख ले ! क्या तेरे अभिमान के लिए कोई
?

ति और कुल का अभिमान करता है ? परन्तु
है —

न दीसइ जाइविसेस कोवि ॥

जाति की कोई विशेपता मनुष्य मे दृष्टिगोचर नही
हाथ, पैर, पेट, दिमाग आदि अवयव तेरे हैं, वैसे
न के होते है। तुझ मे कौन-सी विशेपता है, जिससे
हीन और अपने को विशिष्ट समझता है ?

कार जव विचार किया जाता है तो विदित होता है
पास गर्व करने के लिए कुछ भी नही है। फिर
के वशीभूत होकर अपनी क्षुद्रता को नही समझता
का, वैभव का, कुल का, जाति की एवं विद्या-
का अभिमान करता है। अभिमान मनुष्य के विकास
है। जिस विपय का अभिमान हुआ कि उस

जायगा ऐसी स्थिति हो। तव कोई साधु विचार करे कि
ज्ञान सीख लेना चाहिए। ऐसा विचार कर वह उनके
चाहे तो भगवान् ने चौमासे मे भी विहार करके ज्ञान
लिए जाने की आज्ञा दी है। कितनी महत्त्वपूर्ण वात
की ऐसी अपूर्व महिमा है! वास्तव मे ज्ञान
नेत्र है और जव वह खुल जाता है तो मगन का महान्
जाता है।

यो! ज्ञान की ऐसी अद्भुत महिमा होने पर भी आज
प्रति खेद जनक उपेक्षा का भाव देखा जाता है। आज
मे कोई विद्वान् साधु विराजमान होगे तो लोग यही
हमारा सम्प्रदाय न्यारा है और उनका सम्प्रदाय न्यारा
नके पास ज्ञान सीखने कैसे जाएँ।

उदयसागरजी महाराज एक वार कोटा मे पधारे।
मे एक ज्ञानी साधु विराजते थे। पूज्यजी के मन मे
न ज्ञान सीखे। अतएव वे स्थानक के द्वार पर खडे
है—मुझे ज्ञान सीखना है। पास ही, कही दूसरी
कर ज्ञान सिखाने की कृपा कीजिए।

साधुजी बोले—मुझे अवसर नही है!

दूसरे दिन फिर गये, किन्तु फिर वही उत्तर मिला।
प्रतिदिन फिरते-फिरते ग्यारह दिन हो गए, किन्तु
पूर्ण न हो सकी। अब बारहवी बार गए और
क्षा माँगी, तब वह साधु बोले—अच्छा, अब
मैं आपकी जिज्ञासा, उत्कठा एव लगन देखना
की परीक्षा करना चाहता था। आप इस
हुए।

मे अनेक प्रकार के साधक दृष्टिगोचर होते हैं। वे सयमी भी कहते हैं, परन्तु जीव-अजीव का ज्ञान न होने वनस्पति, अग्नि, जल आदि के जीवो का निरन्तर समारभ करते रहते हैं। वे निर्दोष अचित्त भोजन के रा कन्द, मूल, फल-फूल आदि का भक्षण करके जीवो की विराधना करते हैं।

हो सकता है कि ऐसा क्यो करते है? उनका उद्देश्य कल्याण करना ही है, फिर वे अकल्याणकारी कार्य है? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि उनका अज्ञान ही त प्रवृत्ति मे नियोजित करता है। उन्हे जीव और ज्ञान हो जाय तो वे भी कदाचित् सयम का पालन योकि कहा है :—

वि वियाणाइ, अजीवे वि वियाणइ।
वियाणंतो, सो हु नाहीइ संजमं ॥

—जो जीवो को भी जानता है और अजीवो को भी जीव-अजीव को जानता हुआ सयम के वास्तविक है। अभिप्राय यह है कि सयम को समझने के ज्ञान की आवश्यकता है तो सयम का पालन विना प्रकार हो सकता है?

ज्ञान की इस महत्ता को समझ कर ज्ञान-सम्य- करने का उद्यम करो। निरन्तर ज्ञान के अभ्यास मे ला मनुष्य उत्कृष्ट रसायन आने पर तीर्थङ्कर बध कर लेता है। ज्ञान की यह महिमा क्या

इसके पश्चात् उन साधुजी ने उन्हे ज्ञान सिखलाया। जरा विचार कीजिए, पहले की क्या रचना थी और आज क्या रचना हो गई है ? वे साधुजी स्थानक मे ठहरे हुए थे और उनकी प्रवृत्ति जैसी थी वैसी थी। फिर भी उदयसागरजी महाराज जैसे महापुरुष बार बार उनसे ज्ञान सीखने गए।

भाइयो ! वास्तव मे ज्ञान की बडी महिमा है। इसी कारण भगवान् ने फरमाया है कि :—

पढमं नाणं तओ दया।

अर्थात्—चारित्र या संयम का अनुष्ठान करने से पहले ज्ञान होना चाहिए। जिसे सत्-असत् का ज्ञान नही है, जिसकी अन्तरात्मा मिथ्याज्ञान से मलीन हो रही है, वह सयम का भलीभाति पालन नही कर सकता। वह श्रेयस्-अश्रेयस् को नही समझ सकता। जिसे जीव और अजीव का भी विवेक नही है वह साधु की चर्चा का पालन किस प्रकार कर सकता है ? कहा भी है —

जो जीवे वि न याणइ, अजीवे वि न याणइ।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं नाहीइ संजमं॥

अर्थात्—जो व्यक्ति जीव के स्वरूप को नही जानता, जीव की नीना अवस्थाओ और योनियो से परिचित नही है, वह अजीव को भी नही जान सकता और जीव तथा अजीव को जाने विना सयम को किस प्रकार जाना जा सकता है ? किस प्रकार सयम का अनुष्ठान किया जा सकता है ? आखिर जो जानेगा वही छोडेगा। जो खुद को नही जानता वह खुदा को कैसे जान सकता है ?

नही। वह इस भौतिक आँख के समान है जो
ो की ओर देखती है, पर अपनी ओर नही
दिन विज्ञान का मुख अपनी ओर हो जायगा,
ाने की तरफ झुकेगा, उस दिन वह अभिशाप
वन जाएगा।

ादिकाल से है और आत्मा अनादि काल से ही
रहा है। एक-एक योनि मे अनन्त-अनन्त बार
र नाना प्रकार की दुस्सह व्यथाएँ भोग चुका
रण लोग यह नही जानते कि इस स्थिति का
है? कौन वह शक्ति है जो आत्मा को अपने
रके नचा रही है।

ने बतलाया कि ससार का मूल कारण आस्रव
व बन्ध का कारण है। आस्रव का निरोध
भी रुक जाता है। आस्रव पाच कारणो
वह पाँच प्रकार का कहलाता है। आस्रव के
(१) मिथ्यात्व (२) अविरति (३) प्रमाद (४)
। इन पाँच आस्रवो मे से मिथ्यात्व का
ले किया गया है। किन्तु इस विषय पर
उतना ही थोडा है। यह आत्मा का सब से

ह आस्रव ससार रूपी विषवृक्ष का मूल
जगत् के जीवो को कष्ट भुगतने पडते है।
ा जनक है। हे मुमुक्षु! अगर तू आत्म-
ा करता है तो आस्रव को नष्ट करने का
आस्रवो मे पहला आस्रव मिथ्यात्व है।

ज्ञान के अभाव मे जीव, अपने भीतर जो विराजमान है उसे भी नही समझ पाता। अतएव कम से कम अपने को तो समझो! दूर क्यो भटकते हो? जिन्होने भगवान् के वचनों का पान किया है, उन्होने क्या पाया है? उन्होने अपने आपको पा लिया है! और अपने आपको पा लेना बहुत कुछ पा लेना है। जो आत्मा को पा लेता है उसे परमात्मा को पाने मे विलम्ब नही लगता है।

जब चिदानन्द को पा लोगे, अपने आपको समझ लोगे तो समझ लो कि चौरासी का चक्कर समाप्त हो गया। अपना स्वरूप समझ लेने पर गडकडा (कुत्ता) और गवेडा नही बनना पडेगा और नरक का मुह भी नही देखना पडेगा। जिस दिन अपने को पा लोगे उस दिन सब झगड़े खत्म हो जाएँगे।

आश्चर्य यह है कि लोग दुनिया भर का ज्ञान प्राप्त करने को उद्यत रहते हैं अर्थशास्त्र सीखते हैं, काव्य, कोष, छन्द और अलकार पढते हैं, भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र और न जाने क्या-क्या पढते, सीखते और जानते हैं, किन्तु इस जानने वाले को-अपने आपको-समझने का प्रयत्न ही नही करते! मैं कहता हूँ, तुम भले इतिहास, भूगोल और विविध विषयो का ज्ञान प्राप्त कर लो, किन्तु जरा ज्ञाता-आत्मा-को ही पहचानने का प्रयत्न करो! आत्मा को जाने बिना समस्त ज्ञान निरर्थक ही नही, अनर्थकर भी है। आज के विज्ञान की बदौलत ससार को सुख के बदले दु:ख क्यो मिल रहा है? विज्ञान ससार के लिए अभिशाप क्यो साबित हो रहा है? इसीलिए कि वह बहिर्मुख बना हुआ है। उसका मुख पर-पदार्थो की ओर है,

ात्व हट जाएगा तो एकदम दस हजार का कर्जा अदा
। ।

२ आस्रव अविरति है। मिथ्यात्व के हट जाने पर और चौथे गुणस्थान मे आ जाने पर भी चरित्रमोहनीय की ।। वरण चौकडी का जब तक उदय रहता है तब नही हो पाता। सयम न होना ही अविरति ।

। कितने शक्तिशाली होते है? किन्तु चारित्रमोहनीय इतना गहरा प्रभाव है कि वे सर्वविरति तो दूर रही, ., भी धारण करने मे समर्थ नही हो पाते। किन्तु लिए यह बात नही है। मनुष्य आध्यात्मिक उत्थान से देवयोनि के जीवो से आगे है। वह पुरुषार्थ नो को श्रद्धापूर्वक श्रवण करे, सतसमागम करे तो ोय कर्म को भी नष्ट कर सकता है। वह जब ..रण चौकडी को नष्ट कर देता है तो उसे देशविरति ... है। उस समय भी अविरति का आस्रव पूरी सकता। जब प्रत्याख्यानावरण चौकडी को ा है, तब सर्वविरति चारित्र को पाता है और रति आस्रव से पिण्ड छूटता है। इस प्रकार अर्थात् सर्वविरति धारण करने पर पूर्वोक्त सख्या क निकल जाता है और कर्जा घटकर सिर्फ ३४५

ास्रव प्रमाद है। जिस क्रिया के प्रभाव से जीव विचार करने मे उपेक्षा करता है और जिसके

मिथ्यात्व मनुष्य की आँखो पर पर्दा डाल देती है और सम्यग्ज्ञान को भी मिथ्याज्ञान के रूप मे परिणत कर देता है। बडे–बडे विद्वान् भी मिथ्यात्व के चक्कर मे पडे रहते हैं। यह उन्हे भी अपने चगुल मे फाँस लेता है। मिथ्यात्व जीव की दुर्गति करता है।

यह मिथ्यात्व अनन्त चेतना के घनी इस आत्मा को अपने पाश मे ऐसा फँसाता है कि मनुष्य होकर भी वह पशुओ से गया–बीता हो जाता है! पागल बन जाता है! मिथ्यात्व के प्रभाव से जीव की मति विपरीत हो जाती है! कोई किसी को स्नान कराने ले गया हो और वहाँ ले जाकर कुए मे धक्का दे दे और जिसे धक्का दिया गया है वह बडी कठिनाई से बाहर निकले, तो क्या वह दोबारा उसके साथ स्नान करने जाएगा ? कभी नही। किन्तु जो चौरासी मे डाल रहा है, असख्य बार मौत के मुँह मे भेज रहा है, उसकी आप बार-बार सगति करके भी नही अघाते! यही तो मिथ्यात्व के भूत का प्रभाव है! वह मति को फेर देता है। जीव समझ कर भी नही समझता।

मिथ्यात्व आस्रव के हटते ही जीव सम्यग्दृष्टि हो जाता है। जब तक मिथ्यात्व मे रहता है तब तक पहला गुण स्थान ही रहता है। कल्पना करो आपने १२३४५ यह पाँच अक लिखें। उन्हे पढेंगे तो बारह हजार तीन सौ, पैतालीस हो गए। समझ लीजिए कि आपके उपर इतना ऋण है। अब अगर आप पहले गुणस्थान को लाघ कर चौथे मे आ गये तो एकदम दस हजार का एका मिटने से कर्ज कम हो गया। इस प्रकार

मे ईन्धन डालते जाने से जैसे वह उत्तरोत्तर बढती ही
ी है, उसी प्रकार भोग भोगने से भोग की अभिलाषा
न होकर बढती जाती है। ऐसी दशा मे बुद्धमत्ता का
यही है कि भोगो के प्रति अनुराग का भाव न
ाय।

तक शरीर है और यह जीवन है, तब तक इन्द्रियाँ
पन काम तो करेगी ही। आँख सामने आये पदार्थों को
नही रह सकती और कान बोले हुए शब्दो को सुनगे
ि प्रकार अन्य इन्द्रियाँ भी अपने-अपने विषय को ग्रहण
नही सकती। तो फिर विषयो का परित्याग कैसे
? और किस तरह विषयप्रमाद से बचा जाय? इस
यह है कि विषयपरित्याग का अर्थ यह नही है
कसी भी वस्तु का स्पर्श न करे, किसी चीज को जीभ
, नाक, बन्द कर रक्खे, आँखो पर पट्टी बाध कर रहे
से कोई भी शब्द न सूने। विषयो के परित्याग का
कि मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयो मे राग-द्वेष धारण
य। कोमल और सुखद स्पर्श मिलने पर राग न
कर्कश एव दुखप्रद स्पर्श को सयोग होने पर द्वेष
न होने दे। स्वादिष्ट भोजन मिलने पर हर्ष न माने
भोजन पाकर नाक-भौह न सिकोडे। सुगध मिलने
न हो और दुर्गंध का योग होने पर अप्रसन्न न हो।
आकर्षक रूप देखकर उसमे युद्ध न हो और
प रूप देखकर नाराज न हो। मधुर और प्रशमा
र राग न करे और गाली सुन कर विषाद न करे।
. मे समभाव मे रमण करना और भले बुरे

वशीभूत होकर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूप मोक्ष मार्ग मे उद्यम करने मे शिथिल हो जाता है, वह प्रमाद कहलाता है। प्रमाद पाच प्रकार का है —

मज्जं विषय कसाया, निद्दा विगहा य पंचमी भणिया।
एए पच पमाया, जीवं पाडेंति संसारे॥

अर्थात्—(१) मद्य (२) विषय (३) कषाय (४) निद्रा और (५) विकथा, यह पाच प्रमाद जीव को ससार-परिभ्रमण कराते हैं।

मदिरा तथा मदिरा की जाति के अन्य मादक पदार्थों का सेवन करना मद्यप्रमोद है। गाजा, भग, चरस, अफीम आदि का सेवन इसी प्रमाद के अन्तर्गत है। मादक द्रव्यो के सेवन से किस प्रकार जीवन नष्ट हो जाता है, किस प्रकार समस्त सद्गुणो का विनाश हो जाता है, यह कौन नही जानता? अतएव यहाँ उस पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

दूसरा विषय प्रमाद है। पाँच इन्द्रियो के स्पर्श, रस, गध, रूप एव शब्द रूप विषयो का सेवन करना विषयप्रमाद कहलाता है। विषय लोलुपता मे मनुष्य का पतन हो जाता है। एक-एक इन्द्रिय के अधीन होने वाले हाथी, हिरण आदि पशुओ को भी अपने प्राणो की आहुति देनी पडती है तो पाँचो इन्द्रियों के वश मे होने वाले मनुष्य की भला क्या दुर्गति नही होगी?

भाइयो! आखिर भोग भोगने से कभी तृप्ति नही होती।

, के लिए और थकावट को मिटाने के लिए निद्रा का त्याग नही किया जा सकता, किन्तु अनावश्यक का तो करना ही चाहिए। कई लोग प्रातःकाल आठ बजे ...र पर पडे रहते हैं। यह अनावश्यक सोना है। ...ल धर्मक्रिया करने का उत्तम अवसर है। परन्तु ऐसे पुरुष उसे व्यर्थ सोने मे व्यतीत कर देते है। भगवान् ने ... मे षडावश्यक क्रिया करने का विधान किया है, ... समय मे खर्राटे लेने वाले किस प्रकार इस विधान न कर सकते है ? असमय मे सोने से शरीर के को भी हानि पहुँचती है और आत्मा की स्वस्थता ...ोती है। अतएव अनावश्यक निद्रा का त्याग करना है।

...ा प्रमाद विकथा है। स्त्री आदि के विषय मे निरर्थक ...ा विकथा कहलाता है। विकथा चार प्रकार की है— भोजनकथा, देशकथा और राजकथा। इन सब के संबंध ...ाते करना, गप्पें मारना और समय को नष्ट करना इसी ...न्त ...त है।

... ने एक समय भी प्रमाद मे व्यतीत न करने की ...ो है। गौतम स्वामी को संबोधन करके सभी को है कि—

समयं गोयम ! मा पमायए।

—हे गौतम ! एक पल भर भी प्रमाद न करो।

... मे गहराई से विचार किया जाय तो ज्ञात ...ाल के सूक्ष्मतम अंश 'समय' का भी जीवन मे

इन्द्रियो मे विषम भाव धारण न करना, यही विषयप्रमाद के त्याग का अर्थ है।

भाइयो ? मत समझना कि इस प्रकार का समभाव साधुओं के लिए ही है। नही, समभाव जैसा साधुओ के लिए आनन्ददायक है, उसी प्रकार गृहस्थो के लिए भी है। समभाव धारण करने अन्त करण मे एक प्रकार की अपूर्व मस्ती आ जाती है और क ऐसे सुख का स्रोत फूट निकलता है, जिसे शब्दो द्वारा व्यक्त रना सभव नही है। समभाव से आपका परलोक तो सुधरेगा , इह लोक भी सुधर जाएगा। इसलिए इन्द्रियो के विषयो मे भाव धारण करने का अभ्यास करो।

कई लोगो का मिजाज इतना नाजुक होता है कि भोजन मे कुछ थोडी-सी भी कसर रह गई तो आग बबूला हो है। शाक मे नमक कम रह गया तो त्योरियाँ चढ गई ! । कम पड गया तो थाली उठाकर फैंक दे ! इस प्रकार दन उन्हे परेशान करने वाली है, सुखी बनाने वाली नही। का अभ्यास करने वाला व्यक्ति थाली मे परोसे नये या सरस आहार को समान भाव से ग्रहण करता है और जन उसके लिए अमृतमय परिणमता है। तात्पर्य यह है न की प्रत्येक परिस्थिति मे समभाव धारण करने से ाद से बचाव हो सकता है।

रा कषाय प्रमाद है। कषाय आत्मा का प्रबल शत्रु है। पाँच आस्रवो मे अलग ही किया गया है। इसके आगे विचार करेगे।

ो क्रिया निद्राप्रमाद कहलाती है। यद्यपि शरीर

पा आने पर पुरुषार्थ थक जायगा; फिर आत्मकल्याण सकेगा। जब झोंपडी मे आग लग जाय और झोपडी , उस समय तू कुआ खुदवाने बैठेगा तो क्या प्रयोजन ? समझदार और होशियार आदमी ऐसा नही करते। नी आने से पहले ही पाल बाँध लेते हैं। तू बुढापा हले ही परलोक का सामान जुटा ले, फिर जुटाना जायगा। प्रमाद मे यह महत्त्वपूर्ण समय नष्ट मत कर।

समझ कर जो प्रमाद का परित्याग कर देते हे वे स्थान मे पहुच जाते हैं और पूर्वोक्त सख्या मे से तीन का भी अक निकल जाता है। अर्थात् ३४५ ४५ का ही कर्ज रह जाता है।

। कीजिए, एक बालक पाठशाला मे पढने जाता उसको क, ख, ग, घ, ङ सिखलाता है। इतना ठोठ ए है कि उसे पाठशाला मे जाते-जाते दो साल ु जब कभी शिक्षक पूछता है कि पाठ याद हो वह यही उत्तर देता है कि अभी तो याद नही है। अब आप बतलाइए कि ऐसे लड़के को मे रक्खेगा? क्या वह लड़का ऊँची शिक्षा प्राप्त जीवन का विकास कर सकेगा? मगर आप छोड कर अपने सम्बन्ध मे ही विचार कीजिए। ा, घ ही याद करते रहोगे कि आगे भी बढोगे? , ख मे ही बने रहे तो चौरासी मे ही रुलते बहिनो की ४०-५०-६० वर्ष की उम्र हो गई है, मान, मायाचार आदि कम नही किये हैं! जब म्र दिनो दिन कम होती जाती है तो आत्मा के

कितना अधिक महत्त्व है। वास्तव मे एक समय मात्र का प्रमाद भी जीव को अत्यन्त दु खदायी हो जाता है। एक समय मे ही जीव अनन्तानन्त कर्म पुद्गलो को ग्रहण कर लेता है। अगले भव की आयु इस भव मे कब बँधती है, यह हम लोगों को मालूम नही होता। मान लो कि हम थोड़ी देर के लिए प्रमाद के वशीभूत हुए और उसी समय आयु का बध हो गया तो कितना अनर्थ हो जाएगा ? कितने लम्बे समय तक उस प्रमाद का फल भोगना पडेगा। कदाचित् नरक की आयु का वन्ध हो जाय तो उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम तक एक समय का प्रमाद घोर यातनाओ का निमित्त बन सकता है। इसलिए भाइयो। प्रमाद का परित्याग करके आत्महित मे लगो। जीवन का एक-एक क्षण अनमोल है। कवि ने यथार्थ ही कहा है—

जौ लौं देह तेरी काहू रोग सों न घेरी,
जौ लौं जरा नाहि नेरी जासौं पराधीन परि हैं।
जौ लौं जम नामा वैरी देय न दमाया,
जौ लौं माने कान रामा बुद्धि जाइ न विगरि है।
तौ लौं मित्र ! मेरे निज कारज सँवार लै रे,
पौरुष थकेंगे फेर पीछे कहा करि है ?
अहो आग आएँ जब झोंपरी जरन लागी,
कुआ के खुदाएँ तब कौन काज सरि है ?

जब तक शरीर बीमारियो से ग्रस्त नही होता, बुढापा नजदीक नही आता, जब तक यमराज अपने नगाड़े नही वजाता, जब तक बुद्धि सठिया नही गई है, तब तक अपना काम सँवार

बलदेव को मिला है, वही भाग्ययोग से तुमको भी मिल । करोडो रुपया खर्च करके भी मनुष्य की जिंदगी नही ती ! अतएव इसे पाकर प्रमाद न करो । इस उत्तम । अप्रमत भाव से सदुपयोग करो जहा तक प्रमाद रहेगा, आपको नही पहचान सकोगे ।

।अ आस्रव कषाय है । कषाय ससार की वृद्धि करने वाला ध, मान, माया और लोभ, यह चार कषाय हैं । इन्हे द्वेष भी कहते हैं । क्रोध और मान, द्वेष मे तथा माया राग मे अन्तर्गत है । जो चाहे कषाय कहो, चाहे राग हो, यह आत्मा के स्वरूप को विकृत करने वाले कषायो के सम्बन्ध मे अभी अधिक कहने की त नही है ।

इयो ! कषाय भवभ्रमण का प्रधान कारण है । कषाय त से ही बधने वाले कर्मो मे स्थिति और अनुभाग त्पन्न होती है । कषाय ही कर्मो मे फल देने की शक्ति करते है । जब कषायो का सर्वथा क्षय हो जाता है तब निमित्त से आस्रव होता है, किन्तु वह आस्रव विशेष नही होता । उस समय कर्म आते है और प्रदेशोदय मे से, जीर्ण हो जाते हैं । वे ठहर नही सकते, क्योकि ठहराने है और वह रह नही जाता है । कषाय का पूर्ण ही आत्मा वीतराग दशा प्राप्त करके बारहवे गुण-पर पहुँच जाती है और फिर कभी उसका प्रतिपात नही, ! एक ही अन्तर्मुहूर्त्त मे तेरहवा गुणस्थान पाकर वह ोर सर्वदर्शी पद को प्राप्त कर लेती है । इस सैद्धान्तिक का सार यही है कि कषाय आत्मा को अपने शुद्ध स्वरूप आने देते ।

विकारो को भी कम करना चाहिए, पापो से निवृत्ति करनी चाहिए। किन्तु जब देखो तभी 'धुर मोची के धुर मोची' ही बने रहते हो। हमेशा क, ख, ग, ही सीखते रहते हो। कभी सोचा है कि आज यह धर्माचरण किया है तो कल इससे आगे क्या तरक्की करेंगे? कभी तरक्की की बात नही सोचते। थोडा-थोडा आगे बढो, रोज दो कदम चलो तो भी कभी अहमदाबाद पहुँच सकते हो। मगर आपका तो वही का वही रङ्ग-ढङ्ग है। वीतराग की वाणी सुन कर तो खान, पान, रहन-सहन, चाल-चलन आदि सभी प्रवृत्तियाँ बदल जानी चाहिए। दूसरी ही रगत आ जानी चाहिए।

भाइयो। कागज के फूल कितने ही सुन्दर क्यो न बनाओ, उन पर भौंरे नही मडराते। उनमे तुम्हारे समान बुद्धि नही है, फिर भी वे समझते हैं कि यह कागज के नकली फूल हैं। कपड़े का हरे रग का हूबहू तोता बनाया जाय कि जिसे देखकर मनुष्य चक्कर मे पड जाय, किन्तु क्या बिल्ली उस पर झपटती है? नही, क्योकि वह जानती है कि यह नकली है। पत्थर के शेर के पास से कुत्ता निर्भीक होकर निकल जाता है, डरता नही है। वह अच्छी तरह समझता है कि यह नकली शेर मेरा क्या बिगाड सकता है? जब जानवर भी इतना जान जाते हैं तब तू तो मनुष्य है! तू मनुष्य होकर अपने आपको भी नही समझता और इधर-उधर भटकता फिरता है। क्या मनुष्य कुत्ते और बिल्ली से भी गया-बीता है? मैं आपके कोट, धोती, पगडी, अगरखी या दाढी-मूछ से नही कह रहा हूँ, बहिनो के गोखरू से नही कहता हूँ, मेरी बातें तो अन्दर वाले से हो है! आपने छाछ ही छाछ पीई है, अब मक्खन हूँ। याद रक्खो, जो मनुष्य जन्म तीर्थंकर,

लेप से भारी होने के कारण नीचे चला जायगा। मगर -धीरे जल के संयोग से जब मिट्टी गल कर तूंबे से अलग हो ी, तब तूंबा निर्लेप होकर हल्का हो जायगा और हल्का ही वह पानी के ऊपर आ जायगा। इसी प्रकार आत्मा कर्मों के लेप के कारण भारी होकर ऊपर नही जाता, जब कर्म हट जाते हैं तब वह हल्का हो जाता है और के अग्र भाग तक चला जाता है। आगे गतिसहायक धर्मा-काय द्रव्य न होने के कारण उसकी गति रुक जाती है।

साराश यह है कि संसार-परिभ्रमण का मूल कारण है और आस्रव का प्रथम कारण मिथ्यात्व या अज्ञान है। मनुष्य चाहता है कि उसके जन्म-मरण की अनादिकालीन का विराम हो और वह ससार के विविध सन्तापों से पाकर अपने परमात्मस्वरूप को प्राप्त करे तो उसे का निरोध करना चाहिए और आस्रव का निरोध करने अज्ञान एव मिथ्यात्व का परित्याग करना चाहिए। मानव जीवन की सार्थकता है। यही सयम का उद्देश्य है इसलिए भगवान् ने देशना दी है। भगवान् की इस देशना पु... करेगा, उसे आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

१२-४८
७)

इस प्रकार जब कषाय आस्रव भी नष्ट हो जाता है तो ४५ की संख्या में से चार का अंक भी निकल जाता है और सिर्फ ५ ही शेष रह जाते हैं। बारह हजार तीन सौ पैंतालीस में से पांच रुपये का ही कर्ज रह जाना न रह जाने के ही समान है।

इसके बाद चौदहवें गुणस्थान में जब आरोहण होता है तो योग का भी निरोध हो जाता है। मन वचन, काय के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में एक प्रकार की चंचलता बनी रहती है। उसी चंचलता को योग कहते हैं। चौदहवें गुणस्थान में योग के सर्वथा निरुद्ध हो जाने से आत्मा शैल-शृंग के समान निश्चल बन जाती है। बस, उस समय पाँचवां आस्रव भी बन्द हो जाता है। यह स्थिति थोड़ी ही देर रहती है। अ, इ, उ, ऋ और लृ इन पाँच ह्रस्व स्वरों को मध्यम रूप से उच्चारण करने में जितना काल लगता है उतने काल तक चौदहवें गुणस्थान में ठहर कर अशरीर-अवस्था प्राप्त करती है और फिर ज्योति में ज्योति मिल जाती है।

मुक्त जीव लोक के अग्रभाग में विराजमान होते हैं। प्रश्न हो सकता है कि मुक्तात्मा को ऊपर कौन ले जाता है? इसका उत्तर यह है कि आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगमन करने का ही है। जैसे हवा का स्वभाव तिर्छा चलना है, उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ऊपर जाने का है। जैसे अग्नि की शिखा स्वभावतः ऊपर की ओर जाती है, वैसे ही मुक्तात्मा भी ऊपर जाती है।

मान लीजिए, किसी तूंबे पर आठ बार चिकनी मिट्टी का लेप कर दिया जाय और उसे पानी में छोड़ दिया जाय तो

था। ऐसे सिंहासन पर प्रभु का स्वर्ण-वर्ण का शरीर सुशोभित होता था जैसे प्रचुर किरणो से समन्वित बिम्ब, ऊँचे उदयाचल पर्वत पर सुशोभित होता है। प्रभु आदिनाथ का शरीर उस सुरनिर्मित सिंहासन पर भला दिखाई पडता था, जैसे उदयाचल पर बालसूर्य र होता है!

आदिनाथ इस अवसर्पिणी काल में आद्य धर्म- हुए हैं। वह धर्मतीर्थङ्कर ही नही एक महान् आद्य यवस्थापक भी थे। उन्होने राज्य शासन की नीव डाली, ाम।जिक व्यवस्थाओ को जन्म दिया, लिपि नाना कृषि, व्यापार आदि जीवन के साधनो की भी शिक्षा ी के परम, अनुग्रह से आज मानवजाति पशुओ से लाती है। मानव जगत् पर ऋषभदेव भगवान् का कार है। वे प्रथम जगद्गुरु, जगत्पिता, जगदबन्धु धर्मप्रवर्त्तक हैं। मनुष्य इधर-उधर भटकता हुआ उन्ही के प्रदर्शित पथ पर चल कर अपने जीवन की को स्थिर रक्खे हुए है।

ान् ऋषभदेव का वर्णन भागवत के पाँचवे स्कन्ध मे । यही नही, मुसलमानो के कुरान के पहले पारा दम के नाम से इनका जिक्र किया गया है। इस प्रकार देन सर्वमान्य लोकोत्तर पुरुष हैं। ऐसे भगवान् ो हमारा बार-बार नमस्कार हो।

अन्यान्य तीर्थङ्करो का उल्लेख तो प्राय जैन- मिलता है, दूसरे शास्त्रो मे क्वचित् ही किसी-किसी , किन्तु ऋषभदेव का उल्लेख जैनेतर ग्रन्थो मे भी

समताभाव



स्तुतिः—

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं,
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं–हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! कहाँ तक आपकी स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएं ?

जब भगवान् ऋषभदेव इस धरातल पर विचरण कर रहे थे, तब देवतागण मणिरत्नो से जटित अतीव मनोरम सिंहासन आकाश मे लेकर चलते थे। इस उस सिंहासन मे जो विविध वर्ण की मणियां जड़ी थी, उनकी किरणो से वह झिलमिल–झिलमिल

दिशा से आया हूँ या उत्तर दिशा से आया हूँ ?
ऊ˘ ˊ दिशा से आया हू या अधोदिशा से आया हूँ ?

प्रकार आत्मज्ञान से शून्य जीव अनादि काल से
न कर रहा है। वह अनन्तानन्त जन्म-मरण कर चुका
उसके जन्मो और मरणो का कोई मूल्य नही हुआ।
-मरण व्यर्थ ही साबित हुए। इनसे आत्मा के किसी
। की सिद्धि नही हो सकी। हे जीव ! निगोद-पर्याय
तू ने एक-एक श्वासोच्छ्वास मे ही अठारह बार
किये है। वे जन्म-मरण किस गिनती मे आये ?

थो ! यह तो आपको विदित ही है कि वनस्पतिकाय
। आज तो वनस्पति की सजीवता विज्ञानसम्मत होने
हो चुकी है, किन्तु जब विज्ञानवेत्ताओ को पता
वनस्पति में भी उसी प्रकार जीव विद्यमान है, जैसा
र.र मे है, तब भी जैनशास्त्र स्पष्ट रूप से उसकी
घोषणा करते थे ! आज भी जैनशास्त्रो मे वनस्पति
जितना सूक्ष्म, गभीर और सागोपाग वर्णन मिलता
।नको को पता नही है। प्रत्येक सचित वनस्पति
छोटे बेरो मे भी वही सच्चिदानन्द विराजमान है।
मे कितने बेर आ जाते हैं ? जितने बेर आते है,
व आ जाते है। पैसे को जाने दो, एक कौडी मे भी
।ते है ? इनका जन्म एक कौडी के बराबर भी मूल्य
किसी ने कहा है —

। योनि में, भमियो अनंति बार ।
बिक गयो, थारी गिनती नहीं लगार ।।

बड़े सुन्दर रूप मे मिलता है। शीतलनाथ भगवान् के समय तक ब्राह्मण लोग भी भगवान् ऋषभदेव का नाम लिये विना भोजन नही करते थे। माता मरुदेवी ने भी कैसे विलक्षण पुत्र-रत्न को जन्म दिया! जिन्होने समग्र ससार को सत्यमार्ग दिखलाया और सत्य के मार्ग पर आने का आह्वान किया! उन्होने बतलाया कि जहाँ तक अपने आपको नही पहचाना वहाँ तक कैसे समझा जाय सयाना? खुद को न समझने वाला खुदा को नही समझ सकता, क्योकि खुद और खुदा का रूप एक ही है। अतएव खुदा को पहचानने का मार्ग खुद को पहचानना है। खुद को पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए। मैं कौन हूँ? क्या हूँ? कैसा हूँ? कहाँ से आया हूँ? कहाँ जाऊँगा? क्यो आया हूँ? क्यो जाऊँगा? इस आने-जाने का कारण क्या है? इसका अन्त कब और कैसे आएगा? जब अन्त आएगा तब क्या स्थिति होगी? इत्यादि प्रश्नो पर विचार करना चाहिए और अपने आपको समझना चाहिए। श्रीमदाचारागसूत्र मे, पहले-पहल यही वर्णन किया गया है। वहाँ भगवान् फर्माते है-

'इहमेगेर्सि णो सण्णा भवइ, तंजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, दाहिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि।' आदि।

अर्थात्—ससार मे किन्ही प्राणियो को यह सज्ञा होती कि मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, दक्षिण दिशा से आ

साधारण दुपट्टे मे भी ममता नहीं उतार सकते।
सुनने आये और कदाचित् पुराने जूते भी चोरी चले गये
.न मे आना ही छोड देते हो। आपको इतनी-सी ममता
ा मुश्किल हो रहा है।

ज ।ह पूज्य श्रीलालजी महाराज धर्मोपदेश दे रहे थे।
एक बाई का जेवर चला गया तो वह गडबड और
।ने लगी। तब पास मे बैठी हुई दूसरी बाई ने पूछा—
क्यो हल्ला-गुल्ला मचा रही हो? उसने कहा—मेरा
जेवर चला गया। यह सुन उस बाई ने अपना सोने
ार कर उसे दे दिया और कहा—'लो बहिन' पर
। वीतराग की वाणी की सुधा का पान करने दो,
। होकर सुनो।'

कितनी श्रद्धा! कैसी भक्ति! प्रभु की वाणी के
अनुरक्ति है! उसने किस प्रकार ममता उतार कर
की?

। समता धारण करना बहुत कठिन है। घर पर
ादा आ जाते है तो भी ममता नही रहती। मगर
रने का मार्ग वीतराग देव की वाणी को श्रवण
सने श्रद्धापूर्वक जिन वचनो का श्रवण किया है
भोगो को मैल के समान समझ कर त्याग दिया।
सभव है जब श्रवण के साथ मनन भी हो,
और जीवन के उत्थान की कामना भी हो। यह
र के उत्तम से उत्तम भोगोपभोग भी अशुचि के
ही जान पडते है। मगर जब तक यह स्थिति
क जीव की कौडी के बराबर भी कीमत नही

हो मारी मानो मानो, मानो मानोजी ।।टेक।।

ओह ! यह जीव कितना अहकार करता है ! हमे यो कह दिया ! हमको कुछ भी नही समझा ! हम कौन हैं ? आदि-आदि विचार करता है और अहकार का मारा आकाश मे सिर ऊँचा उठाता है ! अपने आगे दूसरो को तुच्छ, नगण्य और अपदार्थ समझता है और अपने को सभी कुछ समझता है। किन्तु अरे जीव ! क्यो मिजाज करता है ? जब तूने बेर की गुठली मे जन्म लिया था तो तेरी क्या कीमत थी ! लोगो ने कौडी मे खरीदा और खाकर थूक दिया था ! फिर रास्ते मे पडा-पडा आने जाने वालो की लाते खाता रहा ! उस समय क्या इज्जत थी तेरी ? एक बार नही, हजार बार भी नही, अनन्त बार ऐसी स्थिति मे तू रह चुका है। इससे भी बुरी सैकडो अवस्थाएँ तूने धारण की हैं और आज जब पुण्य का किंचित् उदय हुआ है तो अभिमान करने बैठा है ! तेरे अभिमान का क्या मूल्य है ? अभिमान करेगा तो याद रखना, फिर वैसी ही तुच्छ योनियो मे जन्म लेना पडेगा !

बडे बडे चक्रवर्ती राजा और विशाल साम्राज्य के अधीश्वर जब भगवान् की वाणी को श्रवण कर लेते थे और अपने आपको पहचान लेते थे तो चौदह रत्नो नव निधियो, सहस्रो रानियो और अतुल वैभव को नाक के मैल के समान उपेक्षा पूर्वक त्याग देते थे और फिर आँख उठा कर भी उसकी ओर नही देखते थे ! कहो, चक्रवर्ती कितना पुण्य लेकर आते है ? उनके समान पुण्य का उदय अन्य किसी मनुष्य मे सभव नही है किन्तु वीतराग के वचन सुनने के पश्चात् उन्हे सारी सम्पदा तुच्छ और दु ख का मूल नजर आने लगती थी। आज

, तक घोर अतिघोर सकटो के सागर पार करने
,ही उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हुआ था !

मुनिराज को प्रात.काल होने पर पुलिस का
की कचहरी मे ले गया। राजा ने ज्यो ही उन्हे
लिया और उसी समय चरणो मे गिर कर कहा—
,पक हूँ ! आप हमारे स्वामी है ! आप छत्र-
धिराज है ! भगवन् ! हमारी धृष्टता के लिए

राजा ने कोतवाल की ओर उन्मुख होकर कहा—
, कोतवाल ! उन पूजनीय महात्मा को क्यो
तुझे लुच्चो-लफगो को पकडने के लिए नियुक्त
ःतो को परेशान करने के लिए ? तू अपराधी है
,ाध की सजा मिलेगी।

मुनिराज का मौन भग हुआ। बोले—राजन् !
। इसका कोई अपराध नही है। उत्तर मॉगने
` वाले को पकड लेना पुलिस का नियोग है—
` ! इसने पूछा—कौन है ? मैं ने उत्तर नही
है तो मेरा ही अपराध हो सकता है !

भाव है ! कितनी दयालुता है ! अपने ऊपर
' तो मौन भग नही हुआ, पर दूसरे पर
. । मात्र से मुनि ने मौन भग कर दिया !
!

प्रकार की समता और सहिष्णुता नही
, ञ्श भी नही आती। वह वीतराग का

होती । अनन्त वार जन्म-मरण करने का कोई मूल्य नही मिला। हाँ, जब समतामयी भावना आती है, तभी जन्म का मूल्य मिलता है, तभी उस जन्म की गिनती होती है। फिर वहाँ अभिमान का भी क्या काम है? जिनको हजारो राजा हाथ जोडते थे वह जब मुनिराज बनकर जगल मे ध्यान धारण करते हैं या पुराने खण्डहर मे खडे होकर आत्मा मे तन्मय हो जाते हैं और उन चक्रवर्ती मुनिराज के पास रात्रि मे पुलिस के सिपाही आते है और कहते हैं—कौन है?

मुनिराज शान्त और मौन रहते है।

सिपाही अपनी कर्कश ध्वनि मे कहता है—अरे बोलता नहीं! तू कौन है? बता, किसलिए तू यहाँ खडा है?

मुनिराज फिर भी चुप! वे अपने ध्यान मे मग्न हैं!

पुलिस का सन्देह बढ जाता है। वह उन्हे पकडती है, पीटती है और गिरफ्तार करके हवालात मे बन्द कर देती है। मगर वे फिर भी शान्त और मौन रहते हैं। ध्यान मे लीन है! उन्हे कोई शिकायत नही, अपने बचाव की कोई चिन्ता नहीं। गिरफ्तार हो जाने का कुछ भी विषाद नही। जैसे खण्डहर मे थे वैसे ही हवालात मे खडे हैं।

भाइयो! केवलज्ञान क्या मुफ्त मे मिल जाता है? पाली के पसारी की दुकान पर मोल बिकता है कि पैसे देकर ले लोगे? नहीं, केवलज्ञान प्राप्त करने के लिए बडी दारुण तपस्या करनी पडती है, उग्र साधना करनी पडती है और कठोर से कठोर कष्ट झेलने पडते हैं। भगवान् महावीर जैसे सर्वोत्कृष्ट पुण्य-पुरुष को भी कितनी यातनाएँ सहनी पडी थी? बारह वर्ष से

सद्‌गुण है तो उसे देख कर प्रसन्न होना ज्ञानियो
। विवेकवान् व्यक्ति जब गुणी पुरुष को देखता है
। है कि यह पुण्यशील पुरुष है। इसने पूर्वभव में
कया है, इसलिए इसे धन-वैभव और मानमर्यादा
। जैसा करता है, वैसा ही भोगता है। ज्ञानी पुरुष
विवेकी पुरुष सोचता है-इसने पूर्वभव मे ज्ञान की
: राधना करके ज्ञानावरणकर्म का क्षयोपशम प्राप्त
नो के प्रति विनयपूर्ण व्यवहार किया होगा, ज्ञान
शास्त्रो और ग्रन्थो का दान दिया होगा, विद्या की
दिया होगा, विद्यावानो की सेवा की होगी और
सराहना की होगी. इसके फलस्वरूप आज यह
। मैं इसके प्रति ईर्षा क्यो धारण करूँ? धनी
द्वेप करने पर धन और विद्या की प्राप्ति मे बाधा

:ह है कि जीवन मे किसी प्रकार की महत्ता प्राप्त
चित प्रयत्न करना चाहिए। अभिमान या ईर्षा
प्राप्त नही होती। जब तीर्थंकर जैसे महापुरुषो
प्त करने के लिए कष्ट उठाने पडते है तो तुम
कैसे महत्ता प्राप्त कर लोगे ?

हा ने दीक्षा धारण की और जगल मे जाकर
उधर से कुछ गुवाल जानवरो को लेकर आये।
न् छद्मस्थ अवस्था मे थे। उन्हे देखकर गुवालो
है और हमारे पशुओ का ध्यान रख लेगा।
, जरा ध्यान रखना इन पशुओ का, हम थोडी
है।

मार्ग है। इस मार्ग पर न चलने के कारण अनन्त काल हो गया जन्म-मरण करते-करते। 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्' का चक्कर अनादि काल से चला आ रहा है। इसका अभी तक अन्त नही आया। अब तक के अनन्तानन्त भव खोगीर की भर्ती ही साबित हुए। खोगीर मे फटे-पुराने और सड़े-गले चीथडे भरे जाते हैं, वे निरुपयोगी समझे जाते है, उसी प्रकार जीव के यह जन्म निरर्थक ही हुए।

फिर भी आज मनुष्य मान-गुमान करता है। अरे जीव! समझ, जरा विचार कर और सोच कि तू कौन है, कहाँ से आया है और कहाँ जाएगा? यह परमार्थ का विचार न करके अपने शरीर का अभिमान करता है, अपनी ऋद्धि पर इतराता है, अपने महल का मद करता है और परिवार के गर्व मे चूर रहता है।

हाथी पहाड को देख कर ईर्षा की आग मे जलने लगता है। वह सोचता है-मैं सबसे बडा हूँ, पर यह पहाड मुझसे भी ऊँचा क्यो है? इसे अभी तोड कर जमीन मे मिला देता हूँ।

हाथी गुस्से मे आकर पहाड की ओर दौडता है और अपने दन्तशूलो से पहाड को खोदने का प्रयत्न करता है। मगर पहाड का तो कुछ बिगडता नही, उसी के दात टूट जाते हैं। सारा गर्व जाता है और लेने के देने पड़ जाते हैं।

इसी प्रकार लोग किसी बात मे दूसरे को बडा समझकर सोचते है-यह मुझसे अधिक धनवान् क्यो है? बुद्धिमान् क्यों है? इसे मुझसे ज्यादा मान-सन्मान क्यो मिलने लगा? परन्तु इस प्रकार की विचारधारा होना अज्ञानता है। अगर किसी में

ी के मन्दिर मे ही ठहर गए। एक साधु से कहा-
जाओ और कुछ मिले तो ले आओ। साधु वहाँ गये
, लग गए। किन्तु जब वहाँ के ठाकुर को मेरा नाम
तो वह दौडा-दौडा आया और बोला-मेरे बाप!
ले मे। जब महाराणा साहब भी आपकी बातें सुनते
ा चीज हूँ ?'

न यह है कि जब तक परिचय नही होता तब तक
दूसरी है, मगर जान लेने के बाद क्या कहना है!

महावीर का परिचय पाकर गुवाल अपने अपने
पश्चात्ताप करने लगे, किन्तु भगवान् तो हर हालत मे
विचरण कर रहे थे। उनका दूसरी ओर ध्यान
। वे अपना काम कर रहे थे। वास्तव मे जिसे
को पूरा करना है, उसे इस चीज पर ध्यान नही
कि कौन मेरी महिमा का गान कर रहा है और
र रहा है! महिमा की ओर ध्यान देगा तो अभि-
ायगा और निन्दा की परवाह करेगा तो उद्देश्य
ा। अपने उद्देश्य को पूर्ण करना है तो 'बके जिसे
अपना काम धकने दो।'

जो निन्दा करता है उसे करने दो। अपना निंदा
वह करता है और अपना धधा तुम किये
महावोर इस नाति पर चल रहे थे। उन्हे निंदा
रवाह नही थो। उनका एक महान् उद्देश्य था
को निरन्तर समक्ष रख कर वे महान् साधना
ात् का कोई भी व्यवहार और मनुष्य की कोई
उद्देश्य को दृष्टि से ओझल करने मे समर्थ नही

भगवान् ध्यान मे लीन थे और लीन ही रहे। उन्होने हाँ-ना कुछ भी नही कहा। गुवाल चले गये और जब लौटकर आये तो पशु वहाँ नही थे। उन्होने सोचा - यह कोई चोर है, उचक्का है! इसी ने पशुओ को इधर-उधर कर दिया है! वे भगवान् को डाटने-फटकारने लगे और रस्सियो से पीटने लगे। बीच-बीच मे कहते—ओ पाखडी धूर्त! हमारे पशु बता! चुप्पी क्यो साधे है? मगर महावीर मानो देह मे रहते हुए भी देह से अलग विचर रहे थे। मौन भाव से खडे थे। उन्हे गुवालो के व्यवहार से कोई सरोकार नही था!

सयोगवश उसी समय शक्रेन्द्र महाराज ने अवधिज्ञान से जाना कि सिद्धार्थ राजा के राजकुमार इतना वैभव त्याग कर तो तपस्या कर रहे हैं और यह अज्ञानी उन्हे कष्ट पहुचा रहे है! वह उसी समय दौडे-दौडे आये और गुवालो से बोले—अरे पापियो! यह क्या कर रहे हो? जानते हो यह कौन है? यह भगवान् सिद्धार्थ राजा के दुलारे, और ज्ञातवश के उजियारे है! यह तीन लोक के नाथ प्रभु वर्द्धमान है! तुम इनको यातना दे रहे हो? अरे, क्यो अपने सौभाग्य मे मेख ठोकते हो?

इन्द्र का प्रभाव और भगवान् वर्द्धमान का परिचय पाकर गुवाल काँपने लगे। गिडगिडा कर बोले—हमे मालूम नही था। अपराध क्षमा हो!

भाइयो! अनजान को क्या पता? अज्ञानी वस्तु के गुणावगुण को नही जानता। उसको क्या दोष दिया जाय!

हम विहार करते-करते एक गाँव मे पहुँचे। वहाँ ओसवालो के तीन घर थे, किन्तु वे अन्य मान्यता वाले थे। अन.

उतर रहे थे। उन्हे उतरते देखकर याज्ञिक विद्वान्
—'देखो, हमारे यज्ञ के प्रभाव से देवता भी आक-
र चले आ रहे हे !' यह सोचकर उनका अभिमान
र चढ गया।

यह क्या ? पण्डितो ने आश्चर्य के साथ देखा—देवता
ी ओर न आकर उसी उद्यान की ओर चले जा रहे है,
र स्वामी ठहरे हैं। मनुष्य भूले तो भूले, पर देवता
है ? इन देवताओ को क्या हो गया है।

ने कहा—यह सब महावीर की करामात है। यह
।प है। देवगण उन्ही के दर्शनार्थ जा रहे हे।

। तो इन्द्रभूति के पाण्डित्य का तेज चमक उठा।
यह महावीर कौन हें ? क्या उन्हे नही मालूम
। हू ? मेरे समक्ष आने का साहस उन्हे कैसे
बात है मैं उनके पास जाता हू और उनके पाण्डित्य
।कर रख देता हू।

विद्या होने पर अभिमान नही आना चाहिए।
होकर भी अभिमान करता है, समझना चाहिए
रस अभी तक नही आया है। उसने विद्या का
। नही चखा। इसी प्रकार धन-सम्पत्ति पाकर
ी करना चाहिए। कहा भी है—

खगेश विरला जग-माहीं,
भुता पाय जाहि मद नाहीं।

थी। एक-निष्ठ भाव से वे विस्मयजनक तपस्या मे तल्लीन थे। जो व्यक्ति अपनी समस्त शक्तियो को केन्द्रित करके अपने उद्देश्य की पूर्ति मे सलग्न हो जाता है सफलता उसे खोजती हुई आती है। भगवान् महावीर के सम्बन्ध मे भी यही हुआ। बारह वर्ष और एक पक्ष तक छद्मस्थ अवस्था मे रहने के पश्चात् उन्हे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी का पद प्राप्त हुआ। बालुकानदी के किनारे शाली वृक्ष के नीचे भगवान् गोदुहासन से विराजमान थे कि उसी समय आवरण समाप्त हो गए और उन्हे अरिहन्त पद प्राप्त हुआ। भगवान् के केवलज्ञान कल्याणक का महोत्सव मनाने के लिए स्वर्ग से इन्द्र और दूसरे देवगण आये। उन्होने अत्यन्त श्रद्धा, भक्ति और उत्साह के साथ महोत्सव मनाया। भगवान् वहाँ से विहार करके पावापुरी पधारे। देवता, राजा और अन्य नर-नारी प्रभु के दर्शन करके अपने जन्म को सफल करने के लिए उमड पडे।

उधर उसी ग्राम मे एक वृहत् यज्ञ का अनुष्ठान हो रहा था। उस गाव मे सोमल नामक एक ब्राह्मण था। उसकी ओर से यज्ञ हो रहा था और बडे-बडे ग्यारह विद्वान् यज्ञ के लिए आमंत्रित किये गये थे। इनमे इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति तीन सहोदर भाई थे। वे उस समय के प्रमुख विद्वानो मे गिने जाते थे। पण्डितगण यज्ञ करा रहे थे। किसी के साथ पांच सौ, किसी के साथ तीन सौ और किसी के साथ दो सौ शिष्यों का परिवार था। इन ग्यारह विद्वानो मे भी इन्द्रभूति प्रधान थे। वे बडे प्रचण्ड विद्वान् और चर्चावादी थे।

भगवान् महावीर स्वामी बस्ती से बाहर एक उद्यान मे विराजमान थे। हजारो देवता स्वर्ग से अपने अपने विमानो

इन्द्रभूति ने भगवान् का जो असाधारण तेजोमान्
रूप देखा तो उनका आधा अभिमान गल
सोचने लगे—काव्य मे ऐसे रूप की कल्पना हो
न्तु क्या वास्तविक जगत् मे भी यह दिव्य रूप
व है। यह ब्रह्मा है, विष्णु है या महेश ? इन्हे क्या
धन करूँ ? कुछ न कुछ तो कहना ही पडेगा।
? इनके लिए उपयुक्त कोई विशेषण ही नही
। ऐसी अद्भुत शरीर-सम्पत्ति मैं प्रथम वार ही

इस प्रकार सोच-विचार कर ही रहे थे कि भगवान्
र को दूर कर दिया। भगवान् ने मधुसिक्त स्वर
म ी, आ गए !'

का गोत्र गौतम था। भगवान् के मुखारविन्द से
ना तो उनका अभिमान फिर कुछ बढने लगा।
को कौन नही पहचानता ! ससार मे मेरा नाम
। यदि यह मुझे पहचानते है तो इसमे आश्चर्य ही
मन की बात कहे तो समझूँ कि यह ज्ञानी
:करण मे जो प्रश्न उठता रहता है और मुझे
विचलित करता है, उसका समाधान हो जाय
नी मानूँ।

भगवान् ने कहा—गौतम ! तुम्हे आत्मा के
और वह सन्देह वेद की कतिपय ऋचाओ के
है।

एव एतेभ्यो भूतेभ्य. समुत्थाय तान्येवानुविन-
ऽस्ति।'

प्रभुता अर्थात् ऐश्वर्य पाकर भी जिन्हे घमण्ड नही आता, ऐसे मनुष्य इस संसार मे विरले ही होते हैं। जो औरो का भला करे लेकिन मुँह से न कहे कि मैने भला किया है ऐसे लोग कम होते है। अकसर तो थोथा चना बाजे घना, तथा ऊंची दुकान फीके पकवान वाली कहावत ही चरितार्थ करते हैं।

यद्यपि इन्द्रभूति प्रथम श्रेणी के विद्वान् थे, किन्तु अभिमानी थे। वह कहने लगे - मैं महावीर के पास जाता हूँ और एक ही प्रश्न मे उन्हे निरुत्तर कर दूँगा।' वे अपने ५०० विद्यार्थियो को साथ लेकर चले। 'सरस्वतीपुत्र की जय!' विद्यावाचस्पति की जय' के नारे लगने लगे। वे भगवान् के पास पहुँचे। उधर परमवीतराग शान्तिमयी मुद्रा वाले भगवान् विराजमान थे। भगवान् के समक्ष जब इन्द्रभूति पहुँचे तो उनकी दिव्य मुद्रा और अलौकिक तेज देखकर चकित और स्तम्भित रह गए। मन ही मन सोचने लगे—मैने इन्हे साधारण व्यक्ति समझा था, किन्तु बात ऐसी नही है। यह तो अतीव तेजस्वी है।

कतो। उसमें वर्ण नही, रस नहीं, गंध नही, स्पर्श ही। इस कारण वह इन्द्रियों से अगोचर है। मन से। क्योंकि जो वस्तु इन्द्रियगोचर नही हो सकती, वह नही हो सकती।

! सब से पहले गिनती मे एक की आवश्यकता है। रा खेल निर्भर है। एक मे एक मिलाओ तो दो ओ तो तीन होते हैं। आगे के समस्त अंक भी के मिलाने से बनते हैं। एक न हो तो सारी संख्या। इसी प्रकार जगत् मे जो असंख्य व्यवहार चल का मूल आत्मा है। आत्मा न होता तो सारे के हो जाते।

है तो घर मे रहने वाले भी होते हैं। इसी प्रकार मे रहने वाला भी कोई होना चाहिए। जो है वही जीव है। जब शरीर में जीव नही रहता ही वह इतनी बदबू देने लगता है कि लोग कहते। जल्दी करो। अब जरा विचार करो कि है? यह सब जीव की महिमा है!

कहा—मकान तो अच्छा है, पर इसमे रहने है या नही? उत्तर मिला—पत्थर फेंक कर जब पत्थर फेंका तो लोग बाहर आये और पत्थर फैंके? इसी प्रकार इस शरीर मे सुई ा, यदि जीव होगा तो झट हाथ पकड लेगा यह क्या करता है! और यदि जीव नही लक्कड़ लगा कर जला दो, तो भी कुछ नहीं

इस ऋचा को तुम आत्मा के निषेध के अर्थ मे समझते हो, परन्तु यह आत्मा की निषेधक नही, समर्थक है। तुम इसका अर्थ समझते हो कि विज्ञानघन अर्थात् आत्मा भूतो से उत्पन्न होती है और उन्ही के साथ नष्ट हो जाती है, परलोक नही है। किन्तु यह अर्थ विपरीत है। तुमने वेद को शब्दार्थ मात्र समझा है, उसका मर्म नही पाया। इसी कारण इस प्रकार के गलत अर्थ करते हो। इस ऋचा का असली एव तथ्य अर्थ है कि निक ज्ञान अर्थात् उपयोग ही भूतो के निमित्त से उत्पन्न होता है और उनके न रहने पर नही रहता है–आत्मा तो अजर–अमर है, वह भूतो से उत्पन्न नही होती। 'न प्रेत्यसज्ञास्ति' का अर्थ यह है कि उत्तरकालीन ज्ञान उत्पन्न होने पर पूर्वकालीन ज्ञान नष्ट हो जाता है, दो ज्ञान एक साथ नही होते। इस प्रकार जो ऋचा आत्मा के अस्तित्व को और नित्यत्व को प्रतिपादन करने वाली है उसे तुम निषेधक समझते हो। इस कारण तुम्हे आत्मा के नित्यत्व मे शका बनी रहती है।

चाबी भर दी और वह टन्-टन्-टन् करती है,
ड है और उसे खबर नहीं कि कितने बजे हैं। किन्तु
न है और वह जानता है कि मैं क्या बोल रहा हूं
व क्या बोलना चाहिए ?

बोले—गौतम! तुम आत्मा के विषय मे सन्देह
ौर प्रश्न करना चाहते हो, मगर यह क्यो नहीं
ह प्रश्न करने वाला कौन है ? सन्देह करने वाला
की आकाक्षा किसको होती है ? क्या यह किसी
हो सकता है ? किसी जड पदार्थ मे सन्देह, प्रश्न
होती देखी है ? अतएव जो आत्मा के विषय मे
है, वही तो आत्मा है। आत्मा ही अपने विषय
र सकता है। जड पदार्थों को अपने आपको समझने
ी होती। वे अपना विधान या निषेध करने मे
।

बातो को ध्यानपूर्वक सोचने से आत्मा का अस्तित्व
है। अब प्रश्न हो सकता है कि आत्मा कब से है ?
तर यह है कि जब से जगत् है तभी से आत्मा है।
? उत्तर होगा—जब से आत्मा है।

—यह तो चक्कर मे डालने की बात है! इस
ा की आदि का पता चलता है, न जगत् क
ठीक है, आदि हो तो मालूम होनी चाहिए,
की आदि ही नही है तो मालूम कैसे हो।
है और आत्मा भी अनादि है। मुर्गी कब से ?
डा कब से ? मुर्गी जब से। दोनो को कार्य-

रहेगा। भाइयो! देख कौन रहा है? सुन कौन रहा है? सुख-दुःख का अनुभव किसको हो रहा है? गुलाबजामुन खाकर स्वाद कौन मानता है? कडवी चीज जीभ से लगने पर कौन थू-थू करता है? यह सब जीव का ही काम है। किसी ने मुर्दे को चलते-फिरते, बोलते और सुख-दुःख का अनुभव करते देखा है? जीव न होता तो जिन्दे और मुर्दे मे अन्तर ही क्या रहता?

मकान को मालूम नही होता कि मेरे अन्दर कितने लोग रहते हैं, किन्तु रहने वालों को खबर है कि यह हमारा मकान है। कोई टूट-फूट हो जाती है तो फौरन कारीगर को बुलाकर मरम्मत कराते हैं। इसी तरह तुम इस शरीर मे रहते हो और जानते हो कि यह मेरा शरीर है। छोटा-सा गूमड़ा हो जाता है तो डाक्टर के पास जाकर इलाज कराते हो। लेकिन जब जीव नहीं रहता तो मुर्दे के गूमड़े का कोई इलाज कराता है? जब तक जीव अन्दर रहता है तब तक सब सार-संभाल की जाती है, लेकिन—

तन मन्दिर को खबर नहीं, अन्दर किसका उजियाला है।
पर आतमाराम तो जान रहा, जो खुद उसका रखवाला है॥

हिए और यह मानना चाहिए कि शुद्धात्मा भी कर्मा
लीन होकर नाना योनियों में भटकता है।

उत्तर दिया—जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि
और सादि भी है। कोई भी कर्म सत्तर कोड़ा-
से अधिक समय तक आत्मा के साथ नहीं
न्तु उनका प्रवाह अनादिकाल से चला आ रहा
है कि जीव पहले-पहले के कर्मों को भोगता
नवीन-नवीन कर्म बाँधता जाता है। कोई क्षण
ही होता कि जीव नया कर्मबन्ध न करे। अत,
का प्रवाह चला आ रहा है। उदाहरणार्थ—
पचास रुपया उधार लाया। उनमें से पच्चीस
पचास फिर ले आया। पचास फिर चुका दिये
आया। जैसे उसका खाता चुकता नहीं होता,
रहता है, उसी प्रकार कर्मों का लेनदेन भी चल
ार प्रत्येक कर्म की आदि तो है, परन्तु कर्मप्रवाह
, जैसे उधार लाने वाला जब नवीन ऋण लेना
और पुराना चुकाता जाता है तो कुछ दिनों में
ावर हो जाता है—वह अनृणी हो जाता है, इसी
के द्वारा आस्रव का निरोध कर दिया जाता है
। की तपस्या आदि के द्वारा निर्जरा की जाती है,
अवस्था प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार अनादि
।प्त हो जाता है।

और वृक्ष की परम्परा अनादि से चली आ
बीज को आग में जला दे तो अनादिकालीन
हो जाती है, इसी प्रकार कर्मों की परम्परा

कारण-परम्परा अगर अनादिकालीन है तो कोई आदि कैसे बता दे ?

तथ्य यह है कि जड़ और चेतन का समुदाय ही जगत् कहलाता है। जगत् की सत्ता है, यह सभी जानते हैं। और फिर यह एक सर्वसम्मत निर्णीत सिद्धान्त है कि असत् कभी नहीं बनता और सत् का सर्वथा विनाश होकर असत् रूप परिणमन नहीं हो सकता। सत् सदा सत् ही रहता है और असत् सदा असत् ही रहता है। यह ठीक है कि सत् की विभिन्न अवस्थाएं पलटती रहती हैं और एक अवस्था मिटकर दूसरी अवस्था उत्पन्न हो जाती है, परन्तु वह कदापि नहीं बन सकता, इसी प्रकार शून्य से कभी सद् नहीं होता। इस सिद्धान्त को सामने रखकर जब हम आत्मा के सम्बन्ध में विचार करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि जब आत्मा का अस्तित्व है तो वह सदा से ही सत् है और सदा ही सत् रहेगा। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आत्मा अनादि और अनन्त है।

पूछा जा सकता है कि आत्मा अगर नित्य है तो वह इधर-उधर नाना योनियों में क्यों भटकता फिरता है? इसका उत्तर यह है कि आत्मा का आवागमन कराने वाले, एक शरीर से दूसरे शरीर में और एक योनि से दूसरी योनि में ले जाने वाले कर्म हैं। आत्मा है और जगत् है ना, [illegible] कर्म तो



पुण्यस्मरण



स्तुतिः—

तए. श्रतमुन्मयूख—

म रूपममलं भवतो नितान्तम् ।

फ ,, े ि ़ ,

रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्त्ति ॥

मदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान् पुरुषोत्तम, आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? प्रभो ! । गाये जाएँ ?

ाँ पर भी विराजमान होने, खडे होते या ,, अशोक वृक्ष की छाया होती थी। वह वर्ण का तथा फलो और फूलो से सम्पन्न

है, क्योकि वह त्रैकालिक अभाव है। अर्थात्
का अनुभव करने की शक्ति ही नही है। उसमे
ै और न होगा। शोक जीव को ही होता है।
पहले सद्भाव होकर फिर जो अभाव होता
व कहलाता है। भगवान् मे शोक का प्रध्वसा-
शोक का अत्यन्ताभाव है उसे यहाँ अशोक
ाव है उसे वीतशोक कहा गया है। साराश
र्थ मे शोक का उद्भव ही नही होता अतएव
ाने मे कोई विशेषता नही है। विशेषता तो
होने शोक को, तपश्चर्या और साधना के
लिया है। इसी कारण वे वीतशोक कहलाते
शोक कहने मे भी कोई बाधा नही है। यह
ा गया है सो यह बतलाने के लिए शोक
होने पर भी उस अभाव के निमित्त मे

देव शोक से सर्वथा अतीत है, और उनकी
। शोकग्रस्त प्राणी उनकी शरण लेता है,
हित हो जाता है। उसकी समस्त चिन्ताएँ
ाती है, जिस प्रकार सूर्य का प्रखर प्रताप
ा है!

शोक या चिन्ता कोई मामूली चीज नही
णी पर इसका असर रहता है। किसी
लोगो को लगी ही रहती है। सभी
फँसे रहते है। चिन्ता सारी चतुराई को
के आगे पण्डिताई धरी रह जाती

व है, क्योंकि वह त्रैकालिक अभाव है। अर्थात्
क का अनुभव करने की शक्ति ही नही है। उसमे
न है और न होगा। शोक जीव को ही होता है।
का पहले सद्भाव होकर फिर जो अभाव होता
भाव कहलाता है। भगवान् मे शोक का प्रध्वसा-
स शोक का अत्यन्ताभाव है उसे यहाँ अशोक
प्रध्वसाभाव है उसे वीतशोक कहा गया है। साराश
पदार्थ मे शोक का उद्भव ही नही होता अतएव
होने मे कोई विशेषता नही है। विशेषता तो
है जिन्होने शोक को, तपश्चर्या और साधना के
जीत लिया है। इसी कारण वे वीतशोक कहलाते
को अशोक कहने मे भी कोई बाधा नही है। यह
किया गया है सो यह बतलाने के लिए शोक
मान होने पर भी उस अभाव के निमित्त मे

ऋषभदेव शोक से सर्वथा अतीत है, और उनकी
कि जो शोकग्रस्त प्राणी उनकी शरण लेता है,
से रहित हो जाता है। उसकी समस्त चिन्ताएं
हो जाती है, जिस प्रकार सूर्य का प्रखर प्रताप
कर देता है।

यह शोक या चिन्ता कोई मामूली चीज नही
री प्राणी पर इसका असर रहता है। किसी
की चिन्ता लोगो को लगी ही रहती है। सभी
ल मे फँसे रहते है। चिन्ता सारी चतुराई को
है। चिन्ता के आगे पण्डिताई धरी रह जाती

` भगवान् महावीर का सच्चा श्रावक है, उसे
ो। वह चिन्ता को अपने पास भी फटकने नही
पद्य मे तो कहा गया है —

सोचे नही, आगम वांछा नाहि।
र` सदा, सो ज्ञानी जगमाहि ॥

किसी इष्ट पदार्थ का वियोग होने पर शोक
विषय मे किसी वस्तु को पाने के लिए चिन्ता
वर्त्तमान मे जो सुख-दु.ख हो रहा है, उसमे
है। सुख मे हर्ष नही, दु ख मे विषाद नही,
.र.हट नही। वह सुख-दुख को समभाव के
एक रूप कर देता है। पहले धनवान् थे तो
टी कौडी पास मे नही है तो क्या! प्रत्येक
ुं है। उसे अपनी वर्त्तमान स्थिति के
ोई शिकायत नही है। ऐसी भावना वाला
। जहाँ ज्ञान है वहाँ चिन्ता का काम है?

अनर्थदण्ड मे गर्भित है। चिन्ता करने
जाता है। चिन्ता करने से कोई अनिष्ट
इष्ट प्राप्त होता तो समग्र ससार यथेष्ट
ी बन गया होता! फिर तो किसी
जाती! मगर ऐसा हो नही सकता।
पुण्य-पाप के उदय के अनुसार फल
फल को पलट देने मे समर्थ नही है।
कोई लाभ नही हो सकता। अलबत्ता,

है। चिन्ता मनुष्य जीवन का घुन है। घुन लगने पर अनाज का दाना धीरे धीरे नि सत्व होता जाता है और अन्त मे खोखला हो जाता है। इसी प्रकार चिन्ता मनुष्य के जीवन को नि सत्य और खोखला बना देती है। चिन्ता को जीवन का बडा दुर्भाग्य समझना चाहिए, अभिशाप कहना चाहिए। वास्तव मे वे धन्य हैं जो चिन्ता रूपी व्याघ्री के पजे मे नही फँसे हैं। चिन्ता के समान कोई अन्य शत्रु नही। चिता के साथ चिन्ता की तुलना करते हुए कवि कहता है—

चिन्ताचितयोर्मध्ये, चिन्ता एव गरीयसी ।
चिता दहति निर्जीवं, चिन्ता दहति सजीवकम् ॥

अर्थात—चिन्ता और चिता मे से चिन्ता अधिक भयकर है-जबर्दस्त है। चिता निर्जीव कलेवर को जलाती है तो चिन्ता सजीव को भी जला कर राख बना देती है।

यह कौन नही जानता कि चिन्ता से किसी अभाव की पूर्त्ति नही होती, चिन्ता किसी रोग की दवा नही है, चिन्ता निर्धन को धनवान् नही बना सकती, अशक्त को शक्ति नही दे सकती। वह तो उलटी हानि ही उत्पन्न करती है। बीमारी मे चिन्ता करने से बीमारी बढ जाती है, निर्धनता मे चिन्ता करने से बीमारी वढ जाती है, निर्धनता मे चिन्ता करने से धनोपार्जन करने की रही सही क्षमता भी चली जाती है। इस प्रकार चिन्ता मनुष्य की शक्ति का अपहरण कर लेती है। और इस बात को कौन नही समझता? सभी चिन्ताजन्य हानियो से परिचित हैं। फिर भी अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि सभी चिन्ता के चगुल मे फँसे रहते हैं।

प्रकृष्टतर पुण्य लेकर आई थी मरुदेवी माता।
लम्बी आयु मे उन्हे कभी शिरोवेदना तक नही
भी नही करना पड़ा। वे प्राणो, भूतो, जीवो
बहुत साता उपजा कर आई थी। बहुत जीवदया
पाला था।

का हलुवा खाते हैं तो झट गले उतर जाता
दामो के लिए पैसा कमाने मे खून का पसीना
खाने मे जोर नही लगता, कमाने मे जोर
प्रकार धर्म और पुण्य की क्रिया करने मे बहुत
परिणामो की लहरो का पार नही है। धर्म
आ जाती है दान देते-देते परिणाम बदल
मरुदेवी माता ने एकनिष्ठ भाव से पुण्य का
च मे परिणामो मे ठेस नही लगने दी थी।
हीं होता तो पति है तो पत्नी नही, पत्नी है
के फल भोगते-भोगते बीच मे अनेक विघ्न
र मरुदेवी भगवती ने कैसा विलक्षण पुण्य-

दो प्रकार के होते है। कोई पुण्य साधक
है। उसे शास्त्रीय परिभाषा मे पुण्यानु-
पानुबन्धी पुण्य कहते हैं। मरुदेवी माता
और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का बाधक था।
दत्त चक्री को नरक मे पहुँचा कर छोड़ा
माता मरुदेवी को मुक्ति के द्वार तक
पुण्य मोक्ष मे जाने से रोकता है। वह,
लेने देता, दान नही देने देता, लखपति-

चाले नंगे पांव कीड़ी को बचाय के ।'

लिए तृण और मणि तथा सोना और मिट्टी समान
भूषण का क्या करना था ? जैसे पत्थर पड़े थे
। भी पड़ा था ! तो साधुजी ने उसे देखा और
रुके आगे चले गए । कुछ ही आगे एक वृक्ष था ।
नीचे बैठ गए ।

एक भील लकड़ियों का भारा लेकर आ रहा था ।
—देखे, वह सोना इस भील के भाग्य में है या
. उसके भाग्य मे नही था । दस-पाँच पावडे
ी पगडंडी पर लग गया । इस घटना को देखकर
पद-पद पर खजाने भरे पडे हैं, पर उनकी
ी ही होती है !

। जूएँ मार कर आये हैं, बिना छना पानी
ारी करके आए है, ठगाई करके आए है और
आए है, वे चाहे अगर सुखी होना तो कैसे
ख ति और करोडपति बनना चाहे तो किस
?

बनो न करोडपति और अरबपति, कौन

, हमारे भाग्य मे नही हैं बनना !

ऐसे कर्म ही क्यो किये थे ? और पहले
सँभल सकते हो ! जो तीर छूट गया सो
। हाथ मे है उसे तो सँभाल सकते हो !

करोडपति होने पर भी सामायिक नही करने देता। पुण्य के उदय से सेठ हुआ, किन्तु वह सेठाई उसे पुण्य नही करने देती, रडी नचाने मे हजारो का पानी करा देती है, पर दीन-दुखिया और अनाथ के प्राणो की रक्षा के लिए एक पैसा खर्च नही करने देती।

ऐसे पुण्य के फल भोगकर जीव पापो का उपार्जन करता है और फिर नरक तथा निगोद का मेहमान बनता है।

साधक पुण्य या पुण्यानुबन्धी पुण्य इससे विपरीत होता है। जिस पुण्य के फलस्वरूप जीव यहाँ सुख भोगता है और धर्म का आचरण करके आगे स्वर्ग या मोक्ष के सुख प्राप्त करता है, वह पुण्यानुबन्धी पुण्य कहलाता है। शालिभद्र और मरुदेवी माता का पुण्य ऐसा ही महान् पुण्य था।

जिनागम का तत्त्वविवेचन बहुत सूक्ष्म और परिपूर्ण है। आप आगमो का स्वाध्याय करे तो पता चले। मगर आपको तो सवाये और ड्योढे करने की ही चिन्ता रहती है। आत्मा के कल्याण की बात सोचने और समझने को अवकाश कहाँ है?

स्त्री सोलह शृङ्गार सज कर ऊपर गई किन्तु पतिराज अधे बैठे है। वह अपना शृङ्गार बताए तो किसे बताए? यह शास्त्र सोलह शृङ्गार हैं, पर उन्हे आँखो वाले ही देख सकते है। 'भाग्यहीना न पश्यन्ति' इन वचनो को भाग्यहीन पुरुष नही देख सकते। पुण्यवान् पुरुष ही इनका अवलोकन, चिन्तन और मनन करते हैं।

एक साधुजी जा रहे थे। उन्हे रास्ते मे सोने का आभूषण पडा दिखाई दिया। किन्तु उन्हे उससे क्या प्रयोजन था?

हैं जिन्होने लाखो की सम्पत्ति को ठुकरा क
..ए की थी।

सकता है कि लाखो की सम्पत्ति त्यागने वाले
है, अधिकाश तो निर्धन ही साधु बनते हैं। पर
दीर्घदर्शिता का अभाव है। मनुष्य के लिए धन-
। से भी बडा प्रबल आकर्षण भोगोपभोगो
साधु बनने पर विषयभोगो का सर्वदा त्याग
। कोई रक हो या राजा, विषयो का आकर्षण
और उसका परित्याग करना हँसी-खेल नही
होने उसका परित्याग कर दिया, और सयममय
कर लिया, वे क्या कम प्रशसा के पात्र हैं?
र जिस प्रकार राजा को निरीहभाव धारण
उसी प्रकार रक को भी। जिस तरह राजा
एँ दबानी और नष्ट करनी पडती है, उसी तरह
जस प्रकार राजा को अपनी इन्द्रियो और मन पर
ी होती है उसी प्रकार रक को भी। बल्कि राजा
है, उसके मन मे एक तरह की सन्तुष्टि या तृप्ति
न मे यह बात नही होती। फिर भी वह भोगो
है इस दृष्टि से अकिंचन का त्याग राजा के त्याग
..ण है।

है कि कोई राजा हो या रक, जो सयम को
जितेन्द्रिय होकर, निष्काम वृत्ति ग्रहण करके
र..। है और आत्मविशुद्धि तथा जगत्कल्याण
न ध्येय बन जाता है, वह सर्वथा श्लाघ्य है,
आदर्श है, पूज्य है और उसका मार्ग जगत्

अतीत तुम्हारे हाथ मे नही है, वर्त्तमान तो है। उसे सुधार सकते हो। चतुर मनुष्य भूतकाल का रोना रोने नही बैठता। भूतकाल की भूलो से वह शिक्षा ग्रहण करता है और वर्त्तमान को सुधारने का प्रयत्न करता है। अगर तुमने भूतकाल मे पापाचरण किया और उसके फलस्वरूप कष्ट भोगना पड रहा है तो उसे समभाव से भोगो और पुण्य का आचरण करो। ऐसा करने से पाप कट जाएगा और भविष्य कल्याणमय बन जाएगा।

भाइयो! कष्ट भोगे बिना आत्मा पर चढा हुआ कर्ज नही उतरता। जो ऋण तुम ले चुके हो उसे चुकाये बिना काम नही चल सकता। उसे चाहे शान्ति और धैर्य के साथ चुकाओ, चाहे रो-धो कर चुकाओ। हर हालत मे चुकाना तो पडेगा ही। हाँ, शान्ति और धैर्य के साथ चुकाओगे तो आगे अच्छा फल पाओगे और रो-धो करके, हाय हाय करके चुकाओगे तो भविष्य के लिए और भी अधिक भार बढा लोगे। अतएव हाय-हाय न करो। समभाव से सब कुछ सहन करो।

अपना भविष्य सुधारना चाहते हो तो महात्मा पुरुषो के जीवन चरित पढो कि उन्होने किस प्रकार आए हुए कष्टो को सहन किया, यही नही, उन्होने कष्टो को आमन्त्रित भी किया और उन पर विजय प्राप्त की। वे थे महान् पुण्य के धनी। जैन-इतिहास ऐसे पुण्यशाली महापुरुषो की जीवनियाँ हमारे सामने प्रस्तुत करता है, जिन्होने आश्चर्यजनक कृत्य किये थे। बहुत प्राचीन इतिहास को जाने दीजिये, कुछ ही शताब्दियो पहले के इतिहास पर दृष्टि डालिए तो भी आपको एक से एक बढकर पुण्यपुरुष दृष्टिगोचर होगे। कई तो ऐसे

न करे तो अच्छा ही है। जो जितना त्याग करे , लाभ मे है। परन्तु मैं इसे इस कारण त्याग नही सरे साधु दूध पीएँगे तो यह उनकी निन्दा करेगा। शत है।

–विचरते पूज्यश्री नाथद्वारा मे पहुचे। व्याख्यान आसमान से रुपयो की वर्षा हुई। किसी-किसी ने ने नही उठाए और किसी ने सामायिक मे आसन ९। बाद मे सामायिक पार कर रुपया लेना चाहा था। उसमे का रुपया अभी तक मौजूद है।

पूज्य हुक्मीचन्द्रजी महाराज महाभाग्यवान् थे। '२५ हो चुके हैं। उन्होने अपने उच्चतर तप और , एक सम्प्रदाय को वरन् समस्त जैनसघ ाज भी उनका त्याग हमारे लिए एक पवित्र

मालवा मे धर्मदासजी महाराज हो गए हैं। उनके '। एक शिष्य ने धार मे सथारा कर तो लिया, की भावना बिगड गई। पूज्य धर्मदासजी महा- खबर लगी कि उसकी भावना गिर गई है और । कराने वाला है, तो वे बिहार करके धार की मे लोग बाटी-चूरमा बना रहे थे। उन्होने ना तो पूज्य श्री ने उनसे आहार लेकर आहार । नही पीया और यावज्जीवन चउविहार सथारा -धार मे पहुँच कर उन्होने अपने उस चेले से कायर हाथी की झूल गधे को नही सोहती!

को प्रशस्त बनाने वाला है। वे परम पुण्य के धनी हैं। ऐसे महान् पुरुषो का स्मरण, कीर्त्तन और गुणगान हमारी आत्मा को एक ऊँची प्रेरणा देता है और पवित्र बनाता है।

भाइयो ! तुम पुण्य का उपार्जन करना चाहते हो तो इसका सुगम से सुगम साधन सन्तो के गुणो का उत्कीर्त्तन करना है। द्रवित अन्त करण से सन्तो का गुणगान करो। इससे तुम्हारे पापों का क्षय होगा और पुण्य प्रकट होगा।

अपने इस बाईस सम्प्रदाय मे अनेक पुण्यशाली सन्त महात्मा हो चुके हैं। उनका त्याग और तप उच्च कोटि का था। विक्रम सवत् १८७९ मे पूज्य हुक्मीचन्द्रजी म० ने दीक्षा धारण की। वे टोडे गाँव के रहने वाले थे। लालचन्द्रजी महाराज के शिष्य थे। इन महात्मा ने २१ वर्ष तक बेले-तप किया और जीवनपर्यन्त मिठाई खाने का त्याग किया। इन्होने रसना-इन्द्रिय को ऐसा जीत लिया था कि आहार मे केवल तेरह चीजे रक्खी थी। पापड, बाटी, चूरमा आदि सबका त्याग था। बारह महीने एक ही चादर रखते थे। तली हुई वस्तु के भी त्यागी थे। २०० बार नमुत्थुण सूत्र का प्रतिदिन पाठ करते थे। वे स्वय स्थानक मे नही उतरते थे, किन्तु स्थानक वालो के प्रति किसी प्रकार का दुर्भाव नही रखते थे। कदाचित् कोई पूछता-जो स्थानक मे उतरते हैं, उनमे साधुपना है या नही ? तो वे उत्तर देते-अभी तो मेरे ही साधुपन का ठिकाना है या नही ? मैं दूसरे के विषय मे क्या कह सकता हूँ ?

एक साधु ने आपसे कहा-महाराज, जीवन भर के लिए दूध का त्याग करा दीजिए। तब आपने फर्माया-नही, अभी नही। पूछने पर आपने बतलाया दूध विगय मे है और साधु

वाहर वैठा है। महात्मा ने समझा–कोई गृहस्थ

ल उन्होने श्रावको से पूछा—कल रात्रि मे क्या कोई
.॰ पहन कर यहाँ आया था ?

कार करते हुए कहा—हम लोग तो आये नही,
,स प्रसग हो तो उसी समय पूछ लीजिएगा।

त्रि में सचमुच वैसा अवसर आ गया। महात्मा
तो फिर वही धवल वेषधारी पुरुष दृष्टिगोचर
महात्मा ने उससे प्रश्न किया—भाई, कौन हो

'देवता !'

उद्देश्य से वैठे हो ?'

। के लिए।'

क्षेत्र मे जा सकते हो ?'

नही !'

लिए तो नही, किन्तु वहाँ जाओ तो पूछ लेना
है।'

वक के रूप मे पाकर मनुष्य प्रायः सासारिक
की इच्छा करते हैं या चमत्कार कराते
। परन्तु नेतसिहजी ऐसे महापुरुष नही थे।
कोई लाभ उठाया तो आत्मकल्याण का
यह था कि उम्र का पता चल जाय तो अपने
धना कर सके।

न हि वारणपर्याणं वोढुं शक्तो वनायुजः ।

अर्थात्—हाथी का पलान गधा वहन नही कर सकता ।

आखिर वे स्वय उस चेले की जगह डट गए और समाधि मे विचरते हुए अन्त तक महासाधना करते रहे ।

मालवा मे ही एक नेतसिहजी महाराज हो गए है। वे भी वेले-वेले पारणा करते थे । वे छोटे से छोटे गाँव मे भी एक रात ठहरते थे । एक बार किसी छोटे गाँव मे उपयुक्त जगह न होने से एक पेड के नीचे ही ठहर गए । उस दिन अत्यन्त कडाके की सर्दी पड रही थी । वे रात को वृक्ष के नीचे ध्यान-मग्न होकर खडे थे कि शीत के प्रबल प्रकोप से बेहोश हो गए । प्रात - काल हुआ और सूर्य की धूप लगने से कुछ गर्मी पहुची तो होश मे आए । वहाँ से विहार करके आगे बढे तो एक देवता साथ मे हो गया । चलते-चलते जावद पहुचे । वे अपने पास किसी गृहस्थ को नही रहने देते थे । मगर पिछली रात मे श्रावक सामायिक करने आये तो दरवाजे पर सिह को देखकर वापिस भाग गये ।

दिन चढने पर वे श्रावक महात्मा के पास गये । महात्मा ने सहज भाव से पूछा—आज समय कैसे चूक गया ? प्रतिदिन तो जल्दी आया करते थे । आज इतनी देर से ?

श्रावक बोले - महाराज, समय तो चूके नही थे, पर द्वार पर शेर बैठा था । इस कारण वापिस भागना पडा ।

विहार करते-करते वे रतलाम पहुँचे । रात्रि के समय प्रयोजन विशेष से वे बाहर निकले तो उन्होने देखा—एक सफे

को गुस्सा आया। वह नीचे उतरा और
कर रास्ते से दूर पटक आया और गाडी लेकर

ने यावज्जीवन वहाँ से उठने का त्याग
न आगे चल कर रतलाम मे पहुँचा। उसने
ो को वतलाई तो गाँव वाले समझ गए—
हजी होगे।

बन्दूकधारी जवान उनकी रक्षा के लिए
धारी वहाँ पहुचे तो यह देखकर उनके
कि महात्मा के पास दो शेर वैठे है—
ौर दूसरा पैर की ओर। पास ही पेड पर
कि यह माजरा क्या है ? जो भी जान-
की ओर बैठा हुआ शेर उसे भगा देता था।

तो बहुत-से गृहस्थ और दस साधु आए।
के पिताजी म० भी थी। करीब १७ दिन

गुरु महाराज के गुरु महाराज और
महाराज थे। वे जावरा पधारे। वहाँ
आकर उनसे मागलिक सुनकर चला

महाराज हो गए हैं। वे दिन
करते, और एक बार पानी पीते थे।
आ रहे थे कि वर्षा होने लगी। पास
था। वे वर्षा से बचने के लिए उस

देवता गया और उसी समय पूछताछ करके वापिस लौट आया। उसने बतलाया कि पारणा करने पर जब वमन हो जाय तो समझ लेना कि अब मृत्यु सन्निकट आ गई है।

महात्मा अभी तक जीवन-सुधार मे सलग्न थे, अब मृत्यु से कुश्ती लडने और उसे सुधारने मे लग गए। वहाँ से विहार करके चले और जगल मे पहुँचे। भीलो से पूछा—शेर की गुफा कहाँ है ?

एक ने हाथ उठाकर गुफा बतला दी।

दूसरा भील बोला—क्यो बतलाता है ? यह तो महाजनो से लडाई करके आये हैं शेर की गुफा मे मरने जाना चाहते हैं !

महात्मा शेर की गुफा पर जा पहुँचे और ध्यान लगाकर बैठ गए। शेर आया किन्तु वह बकरी की तरह सीधा हो गया। उसने उन्हे कुछ भी हानि पहुँचाने का प्रयत्न नही किया।

वहाँ से चले और एक बार वे रास्ते मे बहुत गहरी गडारो मे चीलो के बीच सो गए। उधर से गन्नो से भरी गाडियाँ आ रही थी। गाडीवानो को पता नही था कि बीच रास्ते मे कोई सोता होगा। गाडी चल रही थी और महात्मा के सन्निकट आ रही थी पर मस्त महात्मा को अपने बचाव की कुछ भी चिन्ता नही थी। आखिर गाडी का एक पहिया गर्दन से और दूसरा पैरो से अड गया। गाडीवान ने पूछा—अरे कौन है ?

महात्मा—मेरे कुछ नही अटकता।

गाड़ीवान—दो-चार साठे लेले और रास्ता छोड दे।

महात्मा—मेरे कुछ नही अटकता।

., र खडे हलवाई की तरफ देखा। हलवाई जो
देखकर चकित हो रहा था, बोला-महाराज, हाथी
। बस हलवाई की आज्ञा मिलते ही स्वामीजी
बढाया और हाथी ने घेवर को पात्र मे

द एक साड पागल हुआ। स्वामीजी उसके
। साड ने गुड की भेलियो मे सीग मारा और
। स्वामीजी ने पात्र माडा और सॉड ने गुड

।. हजी महाराज एक बार जोधपुर आए तो
भाव रखने वालो ने उन्हे आसोप की हवेली मे
न्हे मालूम था कि उस हवेली मे कोई देवता
वालो ने सोचा—ये उसमे ठहरेगे तो इनका कुछ
।

हवेली मे ठहर गए। रात्रि मे शास्त्रों का
सुनकर देवता प्रसन्न हो गया। उसने प्रकट
आनन्द से ठहरिए!

मे एक दरगाह है। उसमे एक जिंद रहता
समय, उस दरगाह मे कोई रह जाता तो
नही बचता था। धर्मसिहजी नामक एक बडे
। उन्होने अपने गुरु से कहा—मेरी इच्छा
पालने की है। कृपया आज्ञा दीजिए। गुरुजी
करने के उद्देश्य से कहा—पहले रात भर
ओ!

मन्दिर मे चले गए। मन्दिर का पुजारी रुष्ट होकर कहने लगा—तुम यहा क्यो आए ? भैरोजी को छूत लग जाएगी। यहाँ से चले जाओ।

इस पर मान बाबा बोले—क्या भैरोजी तेरे हैं ? तेरे हैं तो तू बुला, नही तो मैं बुलाता हू।

पुजारी—अच्छी बात है, तुम्ही बुलाओ।

बाबा—सामने बुलाऊ या आड मे ?

पुजारी—आड मे बुलाइए।

बाबाजी ने चादर तान कर भैरोजी को बुला दिया। वह बालक के वेष मे छम-छम करते आ गए।

पुजारी मानमलजी महाराज की ऐसी महिमा देख कर उसी दिन से जैन धर्मी बन गया। आज भी उसकी सन्तान-परम्परा मे जैन धर्म का पालन किया जा रहा है।

मेवाड मे एक महात्मा रोडजी स्वामी हो गए हैं। उदयपुर मे उन्होने बडे विकट अभिग्रह किये थे। एक बार यह अभिग्रह किया कि हाथी और वृषभ आहार बहराएगा तो पारणा करूगा, नही तो नही।

थोडे ही दिन बाद महाराणा साहब का हाथी पागल हो गया और छूटकर बाजार मे आया। सब लोग डर के मारे घरो मे छिपने लगे। उधर स्वामीजी को यह समाचार मिला तो वे आहार का पात्र लेकर हाथी के सामने चल पडे। बाजार मे हाथी का स्वामीजी का आमना-सामना हुआ। स्वामीजी ज्योही हाथी के सामने पहुचे कि हाथी ने हलवाई की दुकान से घेवर उठाया।

`` पारणा करते थे। उन्होने ५२ वर्ष तक
ी लगाया !

बतलाऊँ और किन-किन के नाम गिनाऊँ ?
क महापुरुष हो चुके हैं। सभव है कोई भाई
घटनाओ पर विश्वास न करें, किन्तु जो
न् प्रभाव को जानते हैं और ब्रह्मचर्य की दिव्य
हैं, उन्हे सशय करने का कोई कारण नही
ध्यात्मिक शक्ति बडी जबर्दस्त है ! उनकी महिमा
चनागोचर है।

।णवगंधव्वा, जक्खरक्खसकिनरा।
। नमंसति, दुक्कर जे करेंति तं ॥

साधारण प्राणियो को जिसका पालन करना
ीत होता है, उस ब्रह्मचर्य की साधना करने
मे देव दानव, गधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर-
कते हैं।

आत्मा मे अनन्त बल है इस सत्य का
ऐसी ही घटनाओ से मिलता है। आत्मिक
से बडी-बडी अद्भुत घटनाएँ घटती हैं किन्तु
मे सलग्न मनुष्य उन्हे समझने का प्रयत्न नही
ोई घटना बलात् सामने आ जाती है तो उसके
का भाव धारण करता है।

आज जिन महात्माओ की जीवन घटनाओ का
या है, वे महान् पुण्यशाली पुरुष थे। आपको

धर्मसिंहजी को अपने आत्मबल पर विश्वास था। वे सचमुच शाम के समय दरगाह मे पहुचे। वहा के फकीर से उन्होंने कहा–मैं इस रात दरगाह मे रहना चाहता हूँ। आज्ञा दो तो रह जाऊँ।

फकीर–रहने को तो रह सकते हो, मगर सुबह जिंदा लौटना मुमकिन नही है।

धर्मसिंहजी महाराज तो पूरी तैयारी करके गये थे। उन्होंने सिर्फ यही कहा—आप मेरी चिन्ता न करें। ठहरने की आज्ञा मुझे दे दें।

फकीर ने ठहरने की आज्ञा दे दी और धर्मसिंह महाराज वही डट गए। रात्रि के समय उन्होंने अखण्ड ज्ञान-ध्यान करना आरम्भ किया। क्रूर जिंद प्रकट हुआ। मुनिराज के आत्मबल के प्रताप से वह सीधा हो गया। उसने कहा–साता मे विराजिए!

भाइयो! यह वही धर्मसिंहजी महाराज है, जिन्होंने शास्त्रो पर टब्बे लिख कर जनता का महान्‚उपकार किया है!

अम्बाला मे लालचन्द्रजी महाराज एक बडे साधक हो चुके हैं! जब उनका स्वर्गवास हुआ तो चन्दन की लकड़ियो से दाहसंस्कार किया गया। उस समय लोग यह देख कर हैरान हो गए कि मुनि का शरीर तो भस्म हो गया, मगर चादर और चोलपट्टा आज भी मौजूद हैं!

भाइयो! पूज्य जयमलजी महाराज और पूज्य रघुनाथजी महाराज आदि अनेकानेक तपस्वी और महान् सन्त हो चुके

१०

का सौरभ

`७

स्तुतिः—

ऽत्र यदि नाम गुणैरशेषं—
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
श्रय जातगर्वैः,
स्वाप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥

ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज
हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम,
। आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? प्रभो !
के गुण गाये जाएँ ?

ऋषभदेवजी मे अनन्त गुण थे और उनका प्रत्येक की सीमा पर पहुच गया था। वे अनन्त ज्ञानी थे, अनन्तशक्तिमान् थे, अनन्त क्षायिक सम्यग्दृष्टि भाव से सम्पन्न थे। भगवान् के समस्त गुण नही जा सकते !

उनसे महत्त्वपूर्ण पाठ सीखना है। आप तो पुण्य लेकर आए हैं उसका ऐसा सदुपयोग करो जिससे आपका भविष्य उज्ज्वल बने आप चिन्ताओं से बचें और पूर्ण निश्चिन्त होकर अक्षय आनन्द के भागी बन सकें।

१-१-४६
पाली



। चीज है ? सक्षेप मे कहा जा सकता है कि
मे निवृत्ति ही गुण है और अठारह पापो का
।। अथवा दोष कहलाता है ।

किम साहब आये और मुझसे पूछने लगे—धर्म
? मैने कहा—धर्म को समझने के लिए पाप को
ना चाहिये । पाप समझ मे आ जाएगा तो धर्म
कठिनाई नही होगी । हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभि-
पट, लडाई, किसी को कलक लगाना, किसी की
चुगली खाना, धर्म की बात सुन कर अप्रसन्न
बात सुनकर प्रसन्न होना, दूसरो को धोखा देना,
अपहरण करना, आदि-आदि पाप के काय हैं।
समझ मे आ गया ?

।राज ।'

धर्म को समझना आसान है। पाप कार्यों का
ना ही धर्म है। किसी भी प्राणी को मन से वचन
। से कष्ट न पहुँचाना, अर्थात् मन से किसी का
ना, दुख देने का विचार न करना अमुक को
।य या अमुक मर जाय या अमुक को मार डालूं,
मानसिक विचार न आने देना धर्म है। सत्य,
र प्रिय वचन ही बोलना और अप्रिय वचन न
। कार्य से किसी प्राणी के लिए कष्ट कर प्रयत्न न
सुख-सुविधा पहुँचाना धर्म है। इस प्रकार पहले
कार्यों के विपरीत शुभ कार्य करना धर्म है। जैसे
ना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना,
।, सन्तोष धारण करना, क्रोध न करना, मान-

भाइयो ! जिसमे गुण होते हैं वही पूजा का पात्र होता है, उसी की प्रशसा होती है, उसका ही आदर-सन्मान किया जाता है। कालिदास ने कहा है.—

गुणा पूजास्थान गुणिषु न च लिङ्गं न च वय ।

अर्थात्- गुण पूजा के पात्र होते हैं, न वेष पुजाता है और न उम्र पुजाती है।

मनुष्य की प्रतिष्ठा और महिमा का आधार उसके गुण ही हैं। जिसमे गुणो के बदले दोष होते हैं वह निन्दा का पात्र बनता है उसकी बदनामी होती है, अपयश होता है। गुणो मे एक ऐसी अद्‌भुत आकर्षण शक्ति होती है कि वे अनायास ही दूसरो के हृदय को अपनी ओर खीच लेते हैं। गुणी मनुष्य अगर किसी का शत्रु हो तो भी वह उसकी प्रशसा करता है। वास्तव मे गुणो की विशेषता यही है कि वे अपने विरोधी से भी प्रशसा करवा लेते हैं और शत्रु के हृदय मे भी अपना स्थान बना लेते हैं। इतिहास के जानकारो को भलीभाति मालूम है कि बादशाह अकबर के लिए महाराणा प्रताप सिर दर्द बने हुए थे। भारतवर्ष मे अगर कोई अकबर का प्रबल से प्रबल विरोधी था तो वह प्रताप ही थे। मगर अन्य राजाओ की अपेक्षा अकबर प्रताप का सब से अधिक आदर करता था। ठीक ही कहा गया है—

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति ।

अर्थात्—गुणज्ञ जनो के लिए ही गुण, गुण होते हैं। गुणो की कद्र गुणवान् ही करता है। जो गुणो की पहचान नही कर सकता, वह गुणी का आदर भी नही करता। कूजड़ा क्या जाने हीरे की पहचान !

प्रकार के लोग वह है जो अपनी अल्पज्ञता को
ते है, जो कल्याण का मार्ग समझना चाहते है, जो
मुमुक्षु हैं जिनके हृदय मे सर्वज्ञ वीतराग की
और समझने की अभिलाषा है, जिनमे भद्रता
ही धर्मोपदेश के पात्र हैं। उन्हे उपदेश देने से
है। मूर्खों और पापियो को उपदेश देना व्यर्थ
ा, बल्कि कभी-कभी तो अनर्थकर भी हो जाता है।
हते हैं—

शो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
ानं भुजङ्गानां, केवलं विषवर्द्धनम्॥

ो दूध पिलाओगे तो क्या अमृत पैदा होगा ?
जहर ही के रूप मे परिणत होगा। साप उस
विष बना लेगा। इसी प्रकार मूर्खों को उपदेश
तो वे उलटे कुपित होते है, शान्त नही होते। सुन्दर
२ भी उनके लिए अनर्थकर ही सिद्ध होता है।

मे एक किसान खेत मे लट्ठ लेकर खडा था।
पण्डित निकला। वह काशी से पढ कर और
को को बैल पर लाद कर जा रहा था। किसान ने
—तुम कौन हो ?

—मैं पण्डित हूं। काशी से पढकर आ रहा हू।

न—अच्छा, पण्डित किसे कहते हैं ?

—जो आगे-पीछे की सोचकर कहे वह पण्डित
।

अभिमान न करना, छल कपट न करना आदि पाप-विरुद्ध प्रवृत्ति धर्म है

कोई समझता हो कि महाराज के पास जाने मे ही धर्म है या अमुक स्थान मे जाने पर ही धर्म हो सकता है, अन्यथा नहीं यह बात नही है। धर्म तो आत्मा का गुण है। जहा कहीं आत्मा रहेगी वही धर्म रह सकता है। आवश्यकता है सिर्फ पाप व्यापार के परित्याग की। अगर तुम्हारा अन्त करण पापरहित है पवित्र है, कषाय के कालुष्य से कलंकित नही है, उसमे प्रशस्त भावनाओ की लहरें उल्लसित होती रहती हैं तो तुम कहीं भी न जाओ, तुम धर्मात्मा हो ! हमारा कभी यह दावा नही रहा कि हमारे पास आने से ही तुम धर्मात्मा बनोगे और अन्यथा नही बन सकोगे। हमारे पास पैर भी न रक्खो मगर पापो का परित्याग कर दो तो तुम्हारी मुक्ति हो जाएगी।

ससार में प्राय· तीन प्रकार के लोग होते हैं। पहले वे जो धर्म के मार्ग को जानते हैं और उसी के अनुसार आचरण भी करते हैं। ऐसे लोगो को उपदेश देने की आवश्यकता नही है। भगवान् ने भी आचारागसूत्र मे फर्माया है:—

उद्देसो पासगस्स णत्थि।

जो आत्मदर्शी हैं, जिन्होने तत्त्व के मर्म को पहचान लिया है, उनके लिए उपदेश की आवश्यकता नही है।

दूसरे प्रकार के लोग वह हैं जो जानते तो हैं, मगर पाप का आचरण करते हैं। जो जानते हैं कि यह जहर है, फिर भी उसे खाते हैं। ऐसे लोगो को उपदेश देना व्यर्थ है। उन पर उपदेश का क्या प्रभाव होने वाला है।

भजन सुना दूं ! मेरे पास और क्या है ? यह सोच-
न्दी ने अपना सितार सँभाला और कहा—अच्छा
भजन सुन लो वह गाने लगा—

प्रभु के भजन बिन कैसे तिरोगे ?
सच कहूँ फिर सोच करोगे !

न्दे भजन मे मस्त हो गया और एक के बाद
छेडने लगा। किसान उसका गाना सुनकर सोचने
राजी खुशी आया था ! भुट्टे खाए और पानी
र इसे क्या हो गया है कि इतनी देर से अर्राटे कर
चिल्लाए जा रहा है !

किसान ने कहा—मेरी भैंस को भी ऐसा ही रोग
। वह भी अर्राटे कर रही थी। तब उसे डाम लगाये
गाने से वह अच्छी हो गई थी !

विचार विमर्श करके भजनानन्दी को दाग देने का
लिया। यह भी तय हो गया कि कौन हाथ पकडेगा,
डेगा और कौन सिर पकडेगा ! भजनानन्दी को
कि उनकी चिकित्सा करने की तैयारियां हो रही
ने भजन मे मग्न था !

को ज्ञान सुनाओगे तो और क्या परिणाम

त हुई कि भजन की मधुर ध्वनि सुनकर एक
दमी उसी समय वहां आ पहुँचा। किसानो ने
के प्रति अतिशय सहानुभूति प्रकट करते हुए उसकी

किसान—ठीक। सोचकर उत्तर दो कि मैं यह लट्ठ तुम्हारी खोपड़ी मे, पीठ पर या पैरो मे लगाऊँ ? सोच लो, अगली-पिछली सब सोचकर बताओ।

पण्डित ने देखा बुरे फँसे! तब वह बोला—तू समझा नहीं। मैं तो पण्डित के पास रहने वाला आदमी हू।

किसान - अच्छा, तो पण्डित कहाँ है ?

पण्डित—वह थोडी देर मे आने वाला है, पीछे है। तू यही बैठ जा! इस प्रकार कह कर पण्डित ने अपना पिण्ड छुडाया।

भाइयो! अपना भला चाहने वाले पुरुष को मूर्खों से दूर ही रहना चाहिए। मूर्खों के चक्कर मे पड जाने पर निकलना कठिन होता है।

एक भजनानन्दी का कठ बडा ही मधुर था। वह सितार पर भजन गाता तो अन्तःकरण से भक्ति का झरना बहा देता था। एक बार वह घर से निकल कर किसी दूसरे गाव जा रहा था। रास्ते मे एक खेत मिला। वहा चार-पाच आदमी बैठे थे और मक्की उगी हुई थी। किसानो ने उसे देखकर आवाज दी और बिठलाया। भजनानन्दी विश्राम लेने के लिए उनके पास बैठ गया। किसानो के दिल मे, खास तौर से खेतो में जब फसल तैयार खडी होती है, उदारता विद्यमान रहती है। अतएव किसानो ने आग्रह करके भजनानन्दी महाशय को कुछ भुट्टे सेक कर खिलाए। भुट्टे खाकर और पानी पीकर वह बहुत प्रसन्न हुआ फिर सोचा-मेरी इनसे न जान न पहचान! फिर भी इन्होने मुझे भुट्टे खिलाए है और पानी पिलाया है तो

चार्य महाराज ने अत्यन्त रोचक शैली से किया है-दुनिया दोषो को बडी उमग के साथ अपनाती दोषो को रहने की जगह की कमी नही है । यह ो को घमड आ गया कि भगवान् ऋषभदेव हमे नही ने भीतर हमे स्थान नही देते तो न सही । हमारे ससार पडा है । हम कही भी रह जाएँगे । हमारा ने वालो की कमी नही है । हमे क्या जरूरत है कि ास जाएँ ! इस प्रकार अभिमान मे आकर दोषो ने फटकने की कोशिश नही की । वे भगवान् से दूर ही ्.म यह हुआ कि भगवान् गुणो से ही घिर गए । ामे एक भी नही रहा और समस्त गुण समा गये ।

नन्त गुणो से विभूषित भगवान् ऋषभदेव को ही -बार नमस्कार हो ।

ो । यह सृष्टि सारी गुण-दोषमय है । प्रत्येक वस्तु और कुछ अवगुण होते हैं । फिर गुण और दोष जक रेखा खीच देना भी बडा कठिन काम है । क। एक ही धर्म किसी के लिए गुण और दूसरे के न जाता है । लोक मे कहावत प्रसिद्ध है—'किसी ायडे किसी को बैंगन पथ्य ।' एक औषध एक को द्ध होती है तो दूसरे के हानिकारक भी हो जाती .के लिए लाभप्रद है उसके लिए उसमे गुण है और हानिकारक है उसके लिए वह दोष युक्त है !

अतिरिक्त वस्तु का एक ही धर्म किसी खास ो गुण माना जाता है और जब वही धर्म उस ागे बढ जाता है तो दोष माना जाने लगता है ।

बीमारी की कथा सुनाई और अपनी चिकित्सा प्रणाली का भी परिचय दिया। यह सुनकर उसने मन में सोचा--गजब हो जाएगा !

सोच--विचार कर उसने किसानों से कहा--डाम लगाने की आवश्यकता नहीं है। मैं इस बीमारी का मंत्र जानता हूं। कान मे फूंकते ही अच्छा हो जाएगा। यह कह कर उसने भजनानन्दी के कान मे कहा—

रे गायक ! ये गायन मे बड़े, तू गायन प्रवीण।
ये गाहक कडबीन के, तूं ले बैठा कर वीण॥

बावले, अपने भजन किसे सुना रहे हो ? लोग तुझे डाम लगाने की तैयारी में हैं। चुप्पी साध लो, अन्यथा दुर्गति होगी। यह तो गायों-भैंसों के प्रेमी हैं और तुम सितार लेकर बैठे हो !

ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ती को चित्तजी ने सारगर्भित उपदेश दिया, किन्तु परिणाम क्या निकला ? कुछ भी नहीं।

तो आशय यह है कि अयोग्य और अभद्र को उपदेश देने से कोई लाभ नहीं होता। जो कल्याण का मार्ग जानना चाहता हो, उसी को उपदेश देना उचित है। छोटे--से गांवडे मे बहुमूल्य हीरे और पन्ने लेकर बैठोगे तो कौन खरीदेगा ? इसी प्रकार दान, शील, तप और भावना का लोकोत्तर माल कोई बडा जोहरी ही खरीद सकता है। इस माल को खरीदने के लिए कुछ आवश्यक गुण होने चाहिए। जैसे सिंहनी का दूध सोने के पात्र मे ही ठहर सकता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी भी सद्‌गुणवान् सुपात्र मे ही ठहर सकती है। भगवान् ऋषभदेव अनन्त गुणों के भण्डार थे। भगवान् के सद्‌गुणों

बुराई करते थे । राम जैसे भद्रशील और
पुरुष का विरोधी रावण था । कृष्ण जैसे उत्तम
कस और जरासघ मौजूद थे ! जब सीता
लगी तो कुछ स्त्रियाँ उन्हे कलक लगाने को भी
ाधु-सन्तो को किसी से क्या लेना--देना है ?
म का अनुष्ठान करते है और विरक्त भाव से
` है । फिर भी लोग उनकी बुराई करने पर
है । कहा है –

।、 हिय अति ताप विसेखी,
、ह सदा परसपत देखो ॥

जी कहते हैं कि खल (दुर्जन) पुरुष के हृदय
, सन्ताप भरा रहता है कि वह पराई सम्पदा
ता है ।

,ार करो कि अगर दूसरे को पुण्ययोग से विपुल
है तो तुम्हारी क्या हानि हो गई ? दूसरा तुम्हे
वशाली नही बना है । उसने पूर्वभव मे पुण्यो-
होगा, दान दिया होगा, दीन--हीन जनो को
साता पहुचाई होगी तो आज उसका फल भोग
`मा बनने की इच्छा है तो तुम भी वैसे कार्य
ा करने से क्या लाभ है ? ईर्षा करके तो तुम
स्थति मे पहुँचोगे । अपनी अधिक हानि कर लोगे ।
'क्ति इस तथ्य की बात पर विचार नही करता ।
、।भाव का ठीक--ठीक विचार नही करता और
ो ग्रहण करता है ।

इस प्रकार गुणो और दोषो की कल्पना मनुष्यो की अपनी-अपनी इच्छा और परिस्थिति पर निर्भर है। इस स्थिति मे गुण और अवगुण का एक निश्चित विभाजन करना ही कठिन है। किन्तु वास्तविक दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो गुणो और दोषो को स्थिर करना कठिन भी नही है। औरो की बात जाने दें और सिर्फ आत्मा के ही सम्बन्ध मे विचार कर तो कह सकते हैं कि जो आत्मा का असली रूप स्वभाव है, जो परपदार्थ के सयोग से उत्पन्न नही हुआ है, जिसके द्वारा आत्मा का उत्थान और हित होता है, जिसके कारण मनुष्य अपने समाज मे आदर सम्मान या प्रशसा का पात्र बनता है, वह गुण कहलाता है। इसके विपरीत जो आत्मा का स्वभाव नही है, जो उपाधि से जनित है और जिसके कारण आत्मा की विशुद्धता घटती और मलीनता बढती है, जिसके कारण आत्मा का पतन होता है उसे दोष समझना चाहिए।

सद्गुण प्राप्त करना विवेकशील पुरुष का कर्त्तव्य है। सद्गुण प्राप्त करने का अर्थ है अपने असली स्वरूप की ओर आगे बढना। आत्मा का जो भी वास्तविक स्वभाव है उसे प्राप्त करनी ही इस जीवन का परम पुरुषार्थ है यही जीवन की परमसिद्धि है। इसी मे मानव जीवन की कृतार्थता है।

कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि दुर्गुणी लोग गुणवानो की भी निन्दा करते हैं। साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है, जगत् मे सर्वश्रेष्ठ सद्गुणो से सम्पन्न, लोकोत्तर महापुरुष परम वीतराग और सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तीर्थङ्कर भगवान् की भी निन्दा करने वाले निकल आते हैं। मंखलीपुत्र गोशालक और जमाली जैसे लोग भगवान् महा-

र कैसे होगा ? इस प्रश्न का उत्तर पहले ही है—

त गुणाः पुंसा, विकसन्त्येव ते स्वयम् ।
कस्तूरिकामोद शपथेन प्रतीयते ॥

मे गुण हैं तो वे अपने आप ही विकसित तूरी मे सुगन्ध है तो क्या वह आप ही आप ानी ? कस्तूरी मे गन्ध की विद्यमानता के लिए आवश्यकता नही होती इसी प्रकार गुणो को ए कोई प्रयास नही करना पडता ! अतएव चिन्ता मत कर। यह न समझ कि मेरे गुणो ही है तो वे गुण निरर्थक ही हो गए । तेरे के लिए हैं। उन तेरी आत्मा ऊँची उठेगी, , तुझे जीवन मे शान्ति प्राप्त होगी ! कोई द्र करता है तो करे और नही करता है तो न या बनता-बिगडता है ? निर्जन वन मे विक· कुसुम अपनी नैसर्गिक छटा से सुशोभित .ने मुचितर सौरभ को दिङ्मण्डल मे परि· । क्या उसने भी चिन्ता की है कि—हाय ! नही मिला ? नही वह ऐसी चिन्ता नही ‍ हो या न हो, उसका स्वभाव खिलना है .खेरना है । वह खिलेगा, वह मुस्कराएगा को प्रसन्न करने मे किंचित् भी कमी नही तुम भी अपने जीवन के सुमन को विका- ो के सौरभ से सम्पन्न बनने दो। तुम्हारे के लिए ही हैं। उनसे कोई लाभ उठाता

सारांश यह है कि खल पुरुष निष्कारण ही गुणी जनो से जलते और उनकी निन्दा करते है। किसी ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष को देखकर मूर्ख कहता है-- अजी, क्या जानता है यह! तुम नही जानते, इन्हे मैं जानता हू! पोथे घोट कर दिमाग मे भर लेन से क्या होता है?

उदार हृदय दानी की कीर्त्ति जब चारो ओर फैलती है तो ईर्षावान् उसे सहन नही कर सकता। कहता है-वह तो उडाऊ है उडाऊ? बाप-दादो का धन पानी की तरह बहा रहा है! खुद कमाए तो पता चले!

इस प्रकार अवगुणो और दोषदर्शी पुरुष किसी भी गुणवान् के गुणो को सहन नही करता है। वह गुणो मे अवगुणो का आरोप कर देता है और उनकी निन्दा करके सन्तोष मानता है। ऐसा करके वह अपने दोषो को बढ़ाता है। नीतिकार यथार्थ ही कहते हैं—

नागुणी गुणिनं वेत्ति, गुणी गुणिषु मत्सरी।
गुणी च गुणरागी च, विरलः सरलो जनः॥

अर्थात्--जो स्वय निर्गुण है, वह गुणवान् को समझ ही नही पाता और जो गुणी, है वह गुणी के प्रति मत्सरता का भाव रखता है। ऐसी स्थिति मे गुणी होना और गुणानुरागी होना बडा ही कठिन है। दोनो बात जिसमे पाई जाएँ ऐसा सरल हृदयजन कोई विरला ही होता है!

कहा जा सकता है कि जब निर्गुण गुणी का आदर नही करता और गुणी, गुणी के प्रति मात्सर्य रखता है, तो फिर गुणी को समझने वाला रहा ही कौन? फिर गुणी के

घन को अपने पास नही रक्खूँगा । रक्त के जीवन को कलकित नही करूँगा।

म आदर्श है ! लोग अपनी सन्तान के लिए -अन्याय की अवगणना करके, उचित-अनुचित करके, छल-कपट करके और भोलेभाले गरीबो ी चला करके घन इकट्ठा करते हैं। अगर पुत्र धर्मप्रिय हो तो वह अपने पिता से स्पष्ट कह ऐसे घन की आवश्यकता नही है। मै गरीबी ूँगा, पर अनीति की पूजी का उपयोग नही मेरे लिए अधर्म न कीजिए, अत्याचार न उपायो से द्रव्योपार्जन न कीजिए। ऐसा कह- अपने पिता को पाप से बचा सकता है ो के सामने भी सुन्दर सबक पेश कर सकता , अपने पिता के ऋण से किंचित् अश मे अपने जीवन को भी पवित्र और आदर्श

वक ऐसा ही विचारवान् पुत्र था । उसने कह दिया कि मै आपकी अधर्म की पूञ्जी उपयोग नही करूँगा । ऐसे आदर्श पुरुष त्र होते है। भगवान् महावीर ने भी उसकी राजाओ, सेठो और अन्य जनो के समक्ष और सादगी को प्रभु ने आदश बतलाया श्रावक, महाप्रभु जिसकी बडाई करते हैं !

क ने भगवान् के पास से बारह व्रत । उसका जीवन बड़ा ही उत्तम, धर्ममय

हो तो भले उठाए नही उठाता तो भी उन्हे निरर्थक न समझो। यही नही, अगर कोई खल तुम्हारे गुणो मे दोषो का आरोप करता है, तुम्हारी उदारता को उडाऊपन कहता है, तुम्हारे सन्तोष को कायरता या साहसहीनता कहता है, तुम्हारे ब्रह्मचर्य को नपुसकता बतलाता है, तुम्हारे साहस को हैकडी मानता है, और इस प्रकार प्रत्येक गुण को अवगुण के रूप में प्रकट करता है तो भी तुम चिन्ता न करो। सचाई सूर्य के समान है जो मिथ्या के मेघो मे सदा के लिए छिपने को नही है। वह तो अन्तत: प्रकट होने को ही है। सीता के सतीत्व पर कलक लगाया गया था किन्तु क्या वह कलक अन्त तक स्थिर रह सका ? नही। वह आग को पानी बना कर प्रकट हो गया और आखिर उस सती को कलक लगाने वाले ही कलकित हुए।

भाइयो! स्मरण रक्खो गुण गुण ही रहेगे और दोष दोष ही रहेंगे। गुणो को दोष बताने वाले व्यर्थ कर्मबन्ध कर लेंगे। तुम्हारे पास जो गुण हैं उन्हे तुम विकसित करते चलो और गुणी जनो के गुण ग्रहण करते रहो। गुण ग्रहण करते समय यह न देखो कि गुणवान् किस स्थिति का है और किस जाति का है ? जिसमे गुण हैं वह किसी भी जाति का हो और कितनी ही गई-बीती स्थिति मे हो, श्रेष्ठ है आदरणीय है और उसके गुण ग्रहण करने योग्य हैं।

राजगृह नगर मे पूणिया नामक एक श्रावक था। पूणिया श्रावक के पिता के पास लाखो मोहरो का धन था; किन्तु वह धन गरीबो को चूस कर इकट्ठा किया गया था-- अनीति से उपार्जन किया गया था। अतएव उसने स्पष्ट कह

ऐसी हैं जिन्हे तत्काल दूर करना चाहिए? और
विशेषताए है, जिन्हे अधिक बढाना चाहिए?

५ के सिलसिले मे पूणिया ने कहा—कभी मुनि-
'हारदान देने का सौभाग्य प्राप्त होता है, किन्तु हम
ो साधर्मी भाई का भोजन-सत्कार नही किया!

• प्रभु का उपासक सम्यग्दृष्टि श्रावक साधर्मी
। सच्चा धर्मात्मा अपने स्वधर्मीय बन्धु को सहोदर
, प्रेम की दृष्टि से देखता है। सम्यक्त्व के आठ
वात्सल्य नामक आचार का आशय यही है कि
स्वधर्मी के प्रति उसी प्रकार का प्रेम प्रदर्शित
गाय अपने बछडे पर प्रदर्शित करती है।

। श्रावक की पत्नी का हृदय गद्‌गद हो गया।
ो-क्या किया जाय? सारे दिन मे इतनी ही
है कि मुश्किल से हम दोनो का पेट भर सकता है!

। ने कहा हा, यह तो सत्य है, मगर एक दिन तुम
लिया करो और एक दिन मैं उपवास कर लिया
आदमी के भोजन की बचत हो जाएगी। उस
एक स्वधर्मी को प्रतिदिन भोजन करा सकते हैं!

दूसरी स्त्री होती तो पति की यह सलाह सुनकर
` लगता? न मालूम कितनी जली-कटी बाते
न्तु पूणिया की पत्नी भी धर्म के रग मे रगी हुई
प्रसन्नतापूर्वक पति के इस परामर्श को अगीकार कर
ा-यह तो और भी अच्छी बात है। स्वधर्मी को भोजन

और प्रशस्त था। वह सन्तोष के साथ रुई की पूनिया बनाता और उन्हें वेच कर अपनी जीवनयात्रा व्यतीत करता था। वह प्रतिदिन शुद्ध भाव से सामायिक करता था।

सामायिक दो प्रकार की है—यावज्जीवन की और अल्पकाल की। यावज्जीवन की सामायिक साधुजी पालते हैं और अल्पकालीन श्रावक। यों तो अल्पकालीन सामायिक की कोई काल मर्यादा नहीं, किन्तु सुविधा के लिए उसका समय दो घड़ी निश्चित किया गया है और यही परम्परा अब मान्य है। सामायिक समस्त धर्मक्रियाओं का सार है। आत्मा की शुद्धि समभाव से होती है और समभाव की प्राप्ति ही सामायिक है। संसारी जीव रागद्वेष आदि विषम भावों के कारण ही संसार भ्रमण करता है और जन्म-मरण करके नाना प्रकार की यातनाएँ भोगता है। जब विषमभाव मिटकर आत्मा में समभाव की जागृति होती है तभी आत्मा को सुख की प्राप्ति होती है। समभाव के अभाव में जीव निरन्तर सन्तप्त बना रहता है। समभाव अपूर्व अमृत है। इसी कारण भगवान् वीतराग ने सामायिक करने का विधान किया है और दैनिक आवश्यक क्रियाओं में उसकी गणना की है। पूणिया श्रावक प्रतिदिन सामायिक करके अपनी आत्मा को समभाव से वासित कर रहा था। भाग्य से उसे पत्नी भी अनुकूल प्रकृति की मिली थी। वह भी पूणिया की ही तरह धर्मनिष्ठ और सन्तोषशील थी। इस कारण दोनों का गृहस्थ जीवन आनन्द और शान्ति के साथ व्यतीत हो रहा था।

एक वार पति-पत्नी दोनों बैठ कर अपने जीवन की आलोचना कर रहे थे। सोच रहे थे कि अपने जीवन में कौन-

ें हैं जिन्हे तत्काल दूर करना चाहिए? और
े । है, जिन्हे अधिक बढाना चाहिए?

के सिलसिले मे पूणिया ने कहा–कभी मुनि-
.रदान देने का सौभाग्य प्राप्त होता है, किन्तु हम
र्मी भाई का भोजन-सत्कार नही किया!

प्रभु का उपासक सम्यग्दृष्टि श्रावक साधर्मी
धर्मात्मा अपने स्वधर्मीय बन्धु को सहोदर
प्रेम की दृष्टि से देखता है। सम्यक्त्व के आठ
ात्सल्य नामक आचार का आशय यही है कि
र्मी के प्रति उसी प्रकार का प्रेम प्रदर्शित
ाय अपने बछडे पर प्रदर्शित करती है।

वक की पत्नी का हृदय गद्‌गद हो गया।
किया जाय? सारे दिन मे इतनी ही
है कि मुश्किल से हम दोनो का पेट भर सकता है!

कहा हा, यह तो सत्य हैं, मगर एक दिन तुम
या करो और एक दिन मै उपवास कर लिया
ादमी के भोजन की बचत हो जाएगी। उस
क स्वधर्मी को प्रतिदिन भोजन करा सकते हैं!

ो स्त्री होती तो पति की यह सलाह सुनकर
लगता? न मालूम कितनी जली-कटी बाते
पूणिआ की पत्नी भी धर्म के रंग मे रंगी हुई
ताापूर्वक पति के इस परामर्श को अंगीकार कर
ह तो और भी अच्छी बात है। स्वधर्मी को भोजन

कराने के साथ-साथ हम लोगो को एकान्तर तपस्या करने का लाभ मिल जाएगा । एक पथ दो काज हो जाएँगे । इस लाभ को छोडना नही चाहिए ।

बस, दूसरे ही दिन से उन्होने यह नियम ले लिया कि एक स्वधर्मी को जिमा कर ही पारणा करेगे ! कैसी उज्ज्वल भावना है ! आचाय कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिसहस्रेभ्यो, वरमेको जिनाश्रयी ।
जिनाश्रयिसहस्रेभ्यो, वरमेको ह्यणुव्रती ॥
अणुव्रतिसहस्रेभ्यो, वरमेको महाव्रती ।
महाव्रतिसहस्रेभ्यो, वरमेको जिनेश्वर. ॥
जिनेश्वरसमं पात्रं, न भूतो न भविष्यति ।
अतः पात्रविशेषेण, देय दान शुभात्ममि ॥

अर्थात्—हजारो मिथ्यादृष्टियो की अपेक्षा एक सम्यग्-दृष्टि पात्र श्रेष्ठ है, हजारो सम्यग्दृष्टियो की अपेक्षा एक अणु-व्रती पात्र श्रेष्ठ है हजारो अणुव्रती पात्रो की अपेक्षा एक महाव्रती पात्र उत्तम है और हजारो महाव्रतियो की अपेक्षा एक तीर्थङ्कर भगवान् उत्तम पात्र हैं। तीर्थङ्कर के समान पात्र न कोई हुआ है और न होगा । पुण्यशाली पुरुषो को पात्र का विचार करके धमदान देना चाहिए ।

भाइयो ! यो तो सभी दान उत्तम हैं, किन्तु उन सबमे जीवन की दृष्टि से आहारदान का विशेष महत्त्व है । ससारी जीवो के प्राणो का आधार आहार है। आहार देना एक

जीवन देना है । आहार के अभाव मे जीवन नहीं
। और धर्मक्रियाएं करने का भी अवकाश नहीं
। है—

द तु धस्तीर्थ–करोऽपि कुरुते करम् ।
दानं भवेत् पात्रदत्त बहुफलं यतः ॥

दान करने वाला कितना सौभाग्यशाली है ।
ाथ और देवेन्द्रों के पूज्य तीर्थङ्कर भगवान् भी
नीचे अपने हाथ करते है । आहारदान जब पात्र
है तो उसका विपुल फल होता है ! जैसे बड का
जमीन मे बोया जाता है, किन्तु पानी का सयोग
मे वह हजारो को छाया देने वाला विशाल वृक्ष
उसी प्रकार आहारदान देने से पुण्य का बीज भी
हण करके फल देता है ।

श्रावक ने आहारदान की इस महिमा को भली-
किया था । वह प्रतिदिन एक स्वधर्मी बन्धु को
लगा और उसके आहार के बाद ही उसने और
पारणा करने को प्रतिज्ञा कर ली । कई दिन इस
।

ऐसा आया कि उन्हे कोई जीमने वाला नहीं
तीन पहर चले गये, पूणिया श्रावक इधर-उधर
ो ढूढते फिरे, मगर कोई न मिला । अचानक
ेणिक के पुत्र और मन्त्री अभयकुमार से भेंट
ने पूछा—श्रावकजी कैसे घूम रहे हो ? तब

कराने के साथ-साथ हम लोगो को एकान्तर तपस्या करने का लाभ मिल जाएगा। एक पथ दो काज हो जाएँगे। इस लाभ को छोडना नही चाहिए !

बस, दूसरे ही दिन से उन्होने यह नियम ले लिया कि एक स्वधर्मी को जिमा कर ही पारणा करेंगे ! कैसी उज्ज्वल भावना है। आचार्य कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिसहस्रेभ्यो, वरमेको जिनाश्रयी।
जिनाश्रयिसहस्रेभ्यो, वरमेको ह्यणुव्रती ॥
अणुव्रतिसहस्रेभ्यो, वरमेको महाव्रती।
महाव्रतिसहस्रेभ्यो, वरमेको जिनेश्वर. ॥
जिनेश्वरसमं पात्रं, न भूतो न भविष्यति।
अत. पात्रविशेषेण, देय दान शुभात्ममि ॥

अर्थात्—हजारो मिथ्यादृष्टियो की अपेक्षा एक सम्यग्‌दृष्टि पात्र श्रेष्ठ है, हजारो सम्यग्दृष्टियो की अपेक्षा एक अणुव्रती पात्र श्रेष्ठ है हजारो अणुव्रती पात्रो की अपेक्षा एक महाव्रती पात्र उत्तम है और हजारो महाव्रतियो की अपेक्षा एक तीर्थङ्कर भगवान् उत्तम पात्र हैं। तीर्थङ्कर के समान पात्र न कोई हुआ है और न होगा। पुण्यशाली पुरुषो को पात्र का विचार करके धर्मदान देना चाहिए।

भाइयो ! यो तो सभी दान उत्तम हैं, किन्तु उन सबमे जीवन की दृष्टि से आहारदान का विशेष महत्त्व है। ससारी जीवो के प्राणो का आधार आहार है। आहार देना एक

भाइयो ! राजा श्रेणिक गुणग्राही था। उसने अन्त.करण
१ की प्रशसा की, आदर-सत्कार किया ! उसके सद्-
की प्रशसा की । आप भी गुणग्रहण करेंगे तो गुणवान्
प्रशसा के पात्र बन जाएँगे पैसा-पैसा करके हजारो और
की सम्पत्ति इकट्ठी करते हो तो थोड़े-थोडे गुण ग्रहण
गुणी भी बनो। यह तो जानते ही हो कि अनन्त काल
इन तिजोरियो के पहरेदार बन कर नही बैठे रहोगे । यह
० कर जाना होगा और कोई नही कह सकता कि कब
देना होगा ! इसलिए मेरी राय मानो तो कुछ सद्गुणों
ग्रह कर लो । वह तुम्हारी महायात्रा के समय काम
ग । आगे के जीवन का सुख दुःख इस जीवन की भलाई-
पर ही निर्भर रहेगा । इसलिए भ्रम को भग करो, विवेक
को खोलो और आगे की सोचो । इस प्रकार विवेकयुक्त
४ जीवन-यापन करोगे तो तुम्हारी आत्मा मे सद्गुणो का
होगा और यह जीवन भी सुन्दर और वह जीवन भी
बना लोगे और यहाँ और वहाँ आनन्द के भागी होओगे।
।२ सद्गुणो के सौरभ से संसार महक उठेगा।

श्रावक ने कहा – आज अभी तक पारणा नहीं हुआ, क्योंकि कोई स्वधर्मी जीमने वाला नहीं मिला है।

अभयकुमार पूणिया की धर्मभावना की मन ही मन प्रशंसा करते हुए बोले—चलो, मैं चलता हू।

अभयकुमार जैसे वैभवशाली राजकुमार ने निर्धन पूणिया के घर जाकर बड़ी प्रीति से भोजन किया। जैसे कृष्णजी ने विदुर के घर भोजन किया। सचमुच महान् पुरुष भाव के भूखे होते हैं, व्यजनो के भूखे नहीं होते।

अभयकुमार ने उत्तम से उत्तम और स्वादिष्ठ से स्वादिष्ठ भोजन किया होगा, पर प्रीति और भावना के अनूठे रस से परिपूर्ण भोजन जैसा उस दिन किया, शायद ही कभी किया हो। भोजन के पश्चात् वे राजमहल गये और राजा श्रेणिक को पूणिया श्रावक का परिचय दिया। राजा ने बुला कर पूणिया से कहा—हम आपको नगर सेठ की पदवी देना चाहते हैं।

पूणिया ने सरलभाव से कहा महाराज! मुझे किसी उपाधि की चाह नहीं है। मैं बाहर की झझटो मे नहीं पड़ना चाहता। सामायिक करता हूँ और मगन रहता हूँ। मुझे कृपा कर इन उपाधियो से दूर ही रहने दीजिए।

राजा ने फिर आग्रह नहीं किया। उन्होने कहा— मैंने बहुत धर्मात्मा देखे हैं, परन्तु आपके समान सन्तोषशील और निष्काम श्रावक नहीं देखा। मेरे राज्य की शोभा वैभवशाली सेठो से नहीं, आप जैसे सन्तोषी धर्मात्माओ से है।

आपको नमस्कार हो। हे जिनेन्द्र ! आप जन्म-मरण रूप ससार का शोषण करने वाले है – भवभ्रमण का अन्त करने वाले हैं। आपको नमस्कार हो।

भाइयो ! यहाँ आचार्य महाराज ने आदिनाथ भगवान् को पुनः पुनः नमस्कार करके वन्दना-नमस्कार के महत्त्व को भी प्रकट किया है। उन्होने यह व्यक्त किया है कि जिसे जिन गुणो की प्राप्ति करनी है, उसे उन गुणो से मडित महापुरुष के प्रति हार्दिक विनम्रता या विनय का भाव रखना चाहिए। गुणवान् गुणो का प्रतिनिधि होता है, अतएव गुणो का आदर करने के लिए गुणवान् का आदर-सम्मान करना चाहिए।

ससारी जीव नाना प्रकार की चिन्ताओ के पाश मे ग्रस्त है। उसके जीवन के समस्त प्रयास अपनी विविध प्रकार की चिन्ताओ का निवारण करने के लिए ही होते हैं। रात-दिन एक मात्र अपनी चिन्ताओ की पूर्ति के विराट आयोजन मे ही सलग्न है। मगर प्रायः देखा जाता है कि उसके जीवन का तो अन्त आ जाता है किन्तु चिन्ताओं का अन्त नही आता। किसी प्रकार एक चिन्ता समाप्त होती है तो अनेक चिन्ताएँ उसका स्थान ग्रहण कर लेती हैं। मनुष्य फिर नये सिरे से प्रयत्न करता है और फिर चिन्ताओ को दूर करता है और फिर नूतन चिन्ताओ का शिकार बन जाता है।

यह बात इतनी सुगम है कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन पर थोडा-सा दृष्टिनिक्षेप करते ही इसे समझ सकता है। सभी का अनुभव इस सबन्ध मे प्रायः समान है। किन्तु प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस स्थिति का कारण क्या है ? चिन्ता निवारण का मनुष्य का प्रयास विपरीत फलदायक क्यो साबित होता है ?

११

धम्मस्स विणश्रो मूलं



स्तुतिः——

तुभ्य नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !

तुभ्य नम क्षितितलामलभूषणाय।

तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,

तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥

भगवान् ऋषभदेवजी को स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? प्रभो ! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएँ ?

हे नाथ ! 'आप तीनो जगत् के प्राणियो की आर्ति अर्थात् चिन्ता एव पीडा को नष्ट करने वाले हैं। आपको नमस्कार हो ! प्रभो ! आप इस पृथ्वीतल के निर्मल आभूषण हैं। आप को नमस्कार हो ! भगवन् ! आप तीनो लोको के परमेश्वर हैं।

प्रश्न—वन्दनएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उत्तर—वन्दनएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ ।

उच्चागोयं कम्मं निबंधइ ।

सोहग्गं च णं अपडिहयं आणाफलं निव्वत्तेइ ।

दाहिणभावं च णं जणयइ ॥

अर्थात्—प्रश्न—हे भगवन् ! वन्दना करने से जीव को क्या फल होता है ?

उत्तर—(१) वन्दना करने से नीचगोत्र कर्म का क्षय होता है ।

(२) उच्चगोत्र कर्म का बन्ध होता है ।

(३) अव्याहत सौभाग्य की प्राप्ति होती है ।

(४) दाक्षिण्य भाव प्राप्त होता है ।

धर्मभाव से युक्त होकर तीन बार उठ--बैठ कर वन्दना करने का विधान किया गया है । ऐसी वन्दना करने से मनुष्य नरकगति, तिर्यञ्चगति, एवं निंद्य समझी जाने वाली मनुष्य जातियों में जन्म लेने से बच जाता है । उसे परम सौभाग्य की प्राप्ति होती है ।

सौभाग्य कौन नहीं चाहता ? सभी सौभाग्यशाली बनने की इच्छा रखते है, किन्तु सौभाग्यशाली बनने का जो उपाय ज्ञानी पुरुषों ने बताया है, उसको प्रयोग में नहीं लाना चाहते ! मनुष्य अकड कर रहना चाहता है, किसी गुणवान् के प्रति विनम्रता की वृत्ति नहीं धारण करना चाहता, फिर भी यह इच्छा करता है कि उसे सुख-सौभाग्य की प्राप्ति हो ! बबूल बोकर

इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए सही विचारो मे आना चाहिए। बात यह है कि जब कारण अनुरूप होते है तभी कार्य की उत्पत्ति होती है। विपरीत कारण जुटा कर कोई कार्य सिद्ध नही कर सकता। चने खाकर प्यास बुझाने की चेष्टा विपरीत चेष्टा है, बालचेष्टा है। इस चेष्टा से प्यास बुझेगी नही, प्रत्युत बढेगी ही। इसी प्रकार चिन्ता निवारण के लिए किये गये प्रतिकूल उपायो से चिन्ताओ की वृद्धि ही हो सकती है, उनका निवारण नही हो सकता।

विचार करना चाहिए कि प्राणी के अन्त करण मे नित्य नूतन चिन्ताए क्यो उत्पन्न होती है ? चिन्ता उत्पत्ति का मूल कारण है पर पदार्थों की अभिलाषा। जीव अपने स्वरूप मे सन्तुष्ट न होकर जड पदार्थों की इच्छा करता है और उस इच्छा को बढाता जाता है। बस, इच्छाओ की वृद्धि ज्यो-ज्यो होती है, चिन्ताए भी बढती जाती हैं। अतएव चिन्ताओ को दूर करने का सहज उपाय है परपदार्थों के प्रति निस्पृह वृत्ति धारण करना—अपने आपमे सन्तुष्ट रहना।

नव निधियो और चौदह रत्नो का अधिपति चक्रवर्ती ससार की सर्वोत्तम समृद्धि पाकर भी चिन्ता से मुक्त नही होता। यही नही, बल्कि साधारण गृहस्थ की अपेक्षा उसकी चिन्ताए अधिक गम्भीर और व्यापक होती है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि निश्चिन्त बनने के लिए निष्परिग्रह बनना चाहिए। भगवान् आदिनाथ के पावनतम चरणो की शरण लेने वाला ही सब प्रकार की आर्त्ति और चिन्ता से मुक्त हो सकता है।

भाइयों! नमस्कार करने की बड़ी महिमा है। शास्त्र मे कहा है—

मूलाउ खधप्पभवो दुमस्स,
खंधाउ पच्छा समुविति साहा।
साहप्पसाहा विरुहन्ति पत्ता
तेओ सि पुप्फं च फलं रसो य॥
एव धम्मस्स विणओ मूल परमो से मुक्खो।
जेण कित्ति सुअ सिग्ध, नीसेसं चाभिगच्छइ।

अर्थात्—जिस प्रकार वृक्ष के मूल से स्कन्ध की उत्पत्ति होती है, पश्चात् स्कन्ध से शाखाएँ उत्पन्न होती हैं, शाखाओं से टहनियां पैदा होती हैं, पत्ते आते हैं और फिर पुष्प, फल और रस उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार धर्म का मूल विनय है और उसका अन्तिम फल मुक्ति है। विनय से कीर्त्ति मिलती है, सम्पूर्ण श्रुतज्ञान का लाभ होता है।

विनय को धर्म का मूल बतलाया गया है। इसका अर्थ है कि मनुष्य के अन्त.करण मे जब तक विनय का विकास नहीं होता तब तक धर्म का भी विकास नही हो सकता। विनीत पुरुष ही धार्मिक हो सकता है। विनय के बिना धर्म की कल्पना करना वैसा ही है जैसे बिना नीव के महल की कल्पना करना या बिना जड़ के वृक्ष की कल्पना करना।

विनय के बिना धर्माचार्य की आराधना नही हो सकती। कदाचित् शास्त्रो मे पारगत हो, किन्तु उसमे यदि विनय वृत्ति नही है तो उसका ज्ञान निरर्थक है, उससे कोई लाभ नहीं होता। बल्कि अविनीत का ज्ञान उलटा हानिकारक होता है। बालक के हाथ मे पड़ी हुई तलवार उसके लिए घातक

आम के फल पाने को इच्छा करने से क्या इच्छापूर्त्ति होगी ? नही। ऊची जाति और सुख-सौभाग्य पाने के लिए प्रभु के चरणो मे विनम्र भाव से मस्तक झुकाना चाहिए। प्रभु के मार्ग का अनुसरण करने वाले निर्ग्रन्थ मुनियो के चरणो की वन्दना करनी चाहिए। शास्त्र का यही विधान है।

नमस्कार करना एक महत्त्वपूर्ण तप है और ऐसा तप है कि पच्चीस उपवास भी उसकी तुलना नही कर सकते। नमस्कार मे असाधारण चमत्कार है। यही कारण है कि प्रथमदेवलोक के इन्द्र शक्रेन्द्रजी भी भगवान् के चरणो को नमस्कार करने के लिए आते हैं।

देवताओ को पल भर की फुर्सत नही है। तुम किसी सुन्दर सिनेमा को भीतर बैठकर देख रहे होओ और उस समय कोई किसी प्रयोजन से बाहर बुलावे तो क्या तुम्हारी जाने की इच्छा होती है ? तब देवता तो ३२ प्रकार के नाटक देखने मे निमग्न रहते हैं। किन्तु उस अनूठे आनन्द को त्याग करके भी भगवान् के पास आते हैं। आपसे पूछा जाय कि कल व्याख्यान में क्यो नही आये, तो आप कहेगे काम हो गया ! मगर काम क्या हो गया निकाम हो गया !

आपने भगवतीजी शास्त्र का श्रवण किया है ? सच्चा श्रावक समझता है कि वीतराग की वाणी सुनना और सत्सगति करना ही सबसे ऊचा अर्थ है, और इसके सिवाय दुनिया के सब काम अनर्थ हैं।

भाइयो ! यह केवलियो के वचन हैं। नमस्कार करना बडा धर्म है। विनय धर्म का माहात्म्य साधारण नही है ! शास्त्र में कहा है—

इस प्रकार आज्ञा बड़ा धर्म है आज्ञा भी विनय का एक रूप है। भगवान् की आज्ञा के बाहर मास-मास ख की तपस्या करके शरीर को सुखा लिया जाय तो भी आ का कल्याण नही होता। सर्वज्ञ का कथन है कि आज्ञा--ब की क्रिया करने से मोक्ष नही मिलता! श्रीमदाचारांगसू कहा है—

दुव्वसु मुणी अणाणाए, तुच्छए गिलाए वत्त
एस वीरे पसंसिए। अच्चेइ लोयसंजोगं एस णाए पवुच्च
—प्र श्रु द्वि अ, छठ

अर्थात्—जो भगवान् की आज्ञा मे न रह कर स्वे से आचरण करता है, वह मुनि मोक्षगमन के योग्य नही वह सम्यग्ज्ञान आदि से शून्य है। जब कोई श्रावक उससे कुछ संशयात्मक प्रश्न पूछता है तो वह अज्ञान के क उत्तर देने मे समर्थ नही होता। इस कारण उसके मन मे ग्ल उत्पन्न होती है। इसके विपरीत जो पुरुष भगवान् की आ मे रह कर यथायोग्य आचरण और प्ररूपण करता है, वीर--कर्मशत्रुओ का विनाश करने मे समर्थ--प्रशंसनीय है। वह लौकिक संयोगो को लांघ जाता है-बन्धनो को फेंकता है। यही आत्महित का सन्मार्ग है।

इस प्रकार आज्ञानुवर्त्ती होकर व्यवहार करने किस प्रकार अपना कल्याण करते है? इसके ज्वलंत उदाह शास्त्रो मे विद्यमान हैं। महासती मृगावती का नाम आपमे प्राय. सभी ने सुना होगा। वह कितनी विनीत और आ वर्त्तिनी थी और उसका उन्हे क्या फल मिला, यह बात उ जीवन घटना से सहज ही समझ मे आ जाती है।

होती है उसी प्रकार अभिमानी और अविनीत पुरुष का ज्ञान भी उसके लिए हानिप्रद सिद्ध होता है। उसके लिए अर्थसाधक और कल्याणकारी शास्त्र भी अनर्थकर और अकल्याणकारी साबित होता है। वह शास्त्र भी शस्त्र बन जाता है। अतएव प्रत्येक कल्याणकामी साधक का सर्वप्रथम कर्त्तव्य यही है कि वह विनीत बन, अपने धर्मगुरु, ज्ञानदाता एवं उपकारी के प्रति विनम्र होकर रहे। मोक्ष के आकांक्षी को चाहिए कि वह अपने गुरु को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रक्खे। विनय सब सद्गुणों का आधार है। विनय से ही मनुष्य सद्गुणों का पात्र बनता है। नीतिज्ञ जन भी कहते हैं—

विनयात् याति पात्रताम् ।

अर्थात्—विनय से ही पात्रता आती है।

विनीत साधक सदैव गुरु के आदेश के अनुसार व्यवहार करता है। गुरु की आज्ञा स्वाध्याय करने की हो तो स्वाध्याय करता है, वैयावृत्य करने की हो तो वैयावृत्य करता है और निश्शंक भाव से यही समझता है कि गुरु जो कहते हैं वह सब निर्जरा के लिए ही है।

भाइयो! यह धर्म चक्रवर्त्तियों का धर्म है, मंगतों और भिखारियों का नहीं। न जाने किस पुण्य के उदय से यह तुम्हें मिल गया है। इस धर्म को पहले पालती थीं रानियाँ और अब रह गई सेठानियाँ। यह वासुदेवों और बलदेवों का धर्म था! उनकी महारानियों का ... थ ! ... ज

एक अतिशय विनीत शिष्या की भांति उन्होंने चन्दनबाला के आदेश को अंगीकार किया और द्वार पर खड़ी हो गई।

मृगावती अपने आपको धिक्कारने लगी कि मैंने जिस समाचारी को परमश्रेयस्कर समझा है, आज प्रमादवश उसका उल्लंघन हो गया ! आज मुझे परमदयावती गुराणीजी का उपालम्भ सुनने का अवसर आया ! मेरी भूल के कारण उन्हें यह कहना पड़ा कि खड़ी रहो ! मेरे निमित्त से उन्हें कष्ट हुआ है--उनकी शान्ति और समाधि में विघ्न पड़ा है ! मैं कितनी प्रमादिनी हूँ !

इस प्रकार विचार करते--करते उनकी परिणामधारा ने निर्मल और निर्मलतर रूप धारण किया। कर्मों के आवरण क्षीण हो गए और उन्हें सम्पूर्ण ज्ञान-केवलज्ञान-की प्राप्ति हो गई।

प्रवर्तिनी चन्दनबालाजी पास ही सो रही थी। उसी मय एक काला सर्प उधर होकर निकला और उनकी ओर ाने लगा। मृगावतीजी ने चन्दनबाला का हाथ, सांप से चाने के लिए दूसरी ओर सरका दिया ! उनकी निद्रा भंग हो ई। हाथ सरकाने का कारण पूछने पर मृगावतीजी ने सर्प ़ी बात बतलाई। चन्दनबालाजी ने आश्चर्यान्वित होकर ा—इस घोर अंधकार में तुम्हें काला सर्प कैसे दिख गया ?

मृगावती—आपके ही प्रताप से !
चन्दनबाला—क्या विशेष ज्ञान उत्पन्न हो गया है ?
मृगावती—जी हां, आपके प्रताप से !
चन्दन—प्रतिपाती या अप्रतिपाती ?

एक बार मृगावतीजी भगवान् महावीर के समवसरण मे गई। उस दिन समवसरण मे साक्षात् चन्द्रदेव और सूर्यदेव भी उपस्थित हुए थे। अतएव दिन रात का कुछ पता नही लगता था। मृगावतीजी दिन समझ कर वहा बहुत देर तक बैठी रही। उनकी साथ वाली अन्य सतिया चली गई थीं। जब चन्द्र और सूर्यदेव चले गये तो ठीक समय का पता चला। उस समय बहुत विलम्ब हो चुका था और सब जगह अधेरा छा गया था! मृगावतीजी सोचने लगी–गजब हो गया! मुझे समय का कुछ खयाल ही नही रहा और मैं बैठी ही रह गई!

इतनी देर-सध्या पड जाने-तक उपाश्रय से बाहर रहना साध्वी-समाचारी से विरुद्ध था। किन्तु अब क्या हो सकता था? वह मन ही मन पश्चात्ताप करती हुई सीधी अपनी गुरुणी चन्दनबालाजी के पास पहुची। चन्दनबालाजी ने समाचारी के उल्लघन के लिए मृगावतीजी को फटकार बताई और कहा-बस, वही दरवाजे पर खडी रहो। यही तुम्हारे समाचारी के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त है।

मृगावती कोई साधारण श्रेणी की महिला नही थी। वह कौशाम्बीनरेश की रानी थी और विपुल वैभव तथा प्रचुर भोगोपभोग की सामग्री का परित्याग करके, आत्मकल्याण के हेतु साध्वी बनी थीं। मगर उन्हे अहकार छू तक नही गया था। साधु जीवन मे प्रवेश करने के बाद राजा-रक का कोई भेद नही रह जाता। वहा सब साधक एक ही श्रेणी के होते है। ज्ञान

विनय को समस्त गुणो का मूल बतलाते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—

विनयायत्ताश्च गुणा. स विनयश्च मार्दवायत्त ।
यस्मिन्मार्दवमखिल, स सर्वगुणभाक्त्वमाप्नोति ।।

अर्थात्—सभी गुण विनय के अधीन हैं। किसी भी गुण की प्राप्ति के लिए विनयशीलता धारण करनी पडती है। लौकिक विषयो मे और क्या लोकोत्तर विषय मे-बिना के प्रगति नहीं होती। किसी भी कला को सीखने के लए कलाविद् का विनय करना पडता है।

जैसे पानी नीचे की ओर ही बहता है, ऊपर की ओर ε, उसी प्रकार गुण विनयशील व्यक्ति मे ही आते हैं। अभि-ान के कारण जिसकी गर्दन ऊँची बनी रहती है, उसमे गुण ε आ सकते।

ग्रन्थकार कहते हैं कि सभी गुण विनय के अधीन हैं, विनय मार्दव अर्थात् निरहङ्कारवृत्ति पर निर्भर है। के चित्त मे कोमलता होगी, उसी मे विनय भाव आएगा र वह सब गुणो का पात्र बन जाएगा। शास्त्रकारो ने विनय की भूरि भूरि प्रशसा की है। विनय के विषय मे शास्त्रो मे अधिक कहा गया है कि उसका सकलन किया जाय तो अच्छा बडा पोथा बन सकता है। उसको सक्षेप मे कहे तो सकते हैं कि—

विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणियस्स च ।।

मृगावती—क्षत्रियाणी !

चन्दनबाला समझ गई कि मृगावती अलौकिक केवलज्ञान की स्वामिनी हो गई हैं। फिर उन्होंने कहा—क्षमा करना सती, मेरे अपराध को ! मैंने तुम्हारी आत्मा की उज्ज्वलता को परख नहीं पाया था ! यद्यपि मेरे मन में तुम्हारे प्रति कषाय का लेश भी नहीं था, बल्कि हितकामना ही थी, फिर भी तुम्हें दंड दिया है ! यह मेरी अल्पज्ञता का ही फल है ! इस प्रकार आत्मालोचना और आत्मनिन्दा करते-करते चन्दनबालाजी को भी केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।

भाइयो ! बताओ कब से तुम जन्म-मरण कर रहे हो ? कहीं आदि है ? 'नहीं, गुरुदेव !'

ठीक है। अनादि काल से संसार का प्रत्येक प्राणी जन्म-मरण के अप्रतिहत प्रवाह में बह रहा है। लोक का ऐसा कोई प्रदेश नहीं, जहाँ इस जीव ने जन्म-मरण न किया हो। मगर आज तक इसका कल्याण नहीं हुआ। कभी सोचते हो कि इसका क्या कारण है ? इसका कारण विनयधर्म की आराधना न करना है।

विनयधर्म हितकारी इसको धार धार धार ! ॥ टेर ॥

भाइयो ! विनयधर्म हितकारी है, सुख देने वाला है, जन्म-मरण मिटाने वाला है और निराबाध आनन्द देने वाला

प्रतिष्ठा के भूखे थे ! पर उसका ऐसा सोचना भ्रमपूर्ण है। अपनी प्रतिष्ठा के लिए नही, किन्तु विनयमूलक जैनधम की प्रतिष्ठा के लिए, साधुसमाचारी की समीचीन मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिए और जिन मुनियो ने आत्मकल्याण के निमित्त आचार्य की शरण ग्रहण की है, उनको सन्मार्ग पर चलाने के लिए और मगल-माग बतलाने के लिए आचार्य को ऐसा अनुशासन करना पडता है। वे ऐसा न करे तो अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाएँ और अपने आश्रित मुनियो को भी कर्त्तव्य-च्युत बनाने मे सहायक हो जाएँ !

डाक्टर कटुक से कटुक औषध पिलाता है और आवश्यकता होने पर चीरफाड भी करता है। कभी कभी तो समूचे अग को काट कर फेंक देता है। यह सब बीमार के कल्याण के लिए ही तो करता है। ऐसा करके ही वह अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकता है। इसी प्रकार गुरु शिष्य को जो दड या प्रायश्चित्त देता है, वह उसी की शुद्धि के लिए देता है। अतएव शिष्य को ऐसे अवसर पर यह नही सोचना चाहिए कि गुरुजी यो कह दिया और त्यो कह दिया। उसे गुरु का उपकार ।नना चाहिए कि उन्होने दोष की शुद्धि करके आत्मा को र्मल बना दिया।

विनय की जैसी महत्ता धार्मिक क्षेत्र मे है, वैसी ही गार्हक क्षेत्र मे भी। पुत्र को पिता पर, लघुभ्राता को ज्येष्ठ ता पर, इसी प्रकार प्रत्येक छोटे को बडे के प्रति विनयभाव ..ा चाहिए। ऐसा करने से गार्हस्थजीवन आनन्दमय, ान्तिमय, रसमय और सुखमय बनता है। विनयवान् के जीवन विकास होता है और विनयविहीन का विकास अवरुद्ध हो ता है। इस विषय मे एक उदाहरण प्रसिद्ध है।

यह देखकर मैंने अपने मन मे सोचा--इनके घर मे के खानदानी है। खानदान ऊँचा न होता तो लडका अपनी मा को एक ही घुडकी मे चुप कर देता !

वैष्णवो के यहाँ लिखा है कि जब तक माता पित मौजूद हैं, पुत्र को तीर्थयात्रा के लिए जाने की आवश्यकत नही है। जिसके घर मे ही तीर्थ मौजूद है उसे इधर उध भटकने की क्या आवश्यकता है? कदाचित् पुत्र पहले ही म जाय तो अपनी विनयशीलता के कारण वह १४ हजार वर्ष की आयु पाकर देवलोक मे जाता है !

यद्यपि जैनधर्म विनयमूलक धर्म कहलाता है, फिर भी इसका यह अर्थ नही कि अन्य धर्मों मे विनय की महत्ता नही स्वीकार की गई है। विनय सर्वसम्मत धर्म है और उत्तम श्रेणी की नीति भी है। सब धर्मों ने इसे स्वीकार किया है।

जैनधर्म अपनी सम्पूर्ण आचार प्रणालिका को विनय के ही अन्तर्गत कर देता है। इसी दृष्टिकोण से शास्त्र मे विनय के दो भेद किये गये हैं—अनगार धर्म और आगार धर्म। ज्ञातासूत्र मे जैनधर्म को विनयमूल धम प्रकट किया गया है। उत्तराध्ययन सूत्र मे, जो भगवान् महावीर की अन्तिम कालीन शिक्षाए बतलाता है, पहली शिक्षा विनय बतलाई गई है। वहा विस्तार पूर्वक विनय धर्म का वर्णन किया गया है। दशवेकालिक सूत्र मे भी अत्यन्त प्रभावशाली शब्दो मे विनयसमाधि का वर्णन है। इन सब वर्णनो पर ध्यान देने से सहज ही समझ मे आ जाता है कि विनय कितना महान् गुण है और आत्मोत्थान के लिए उसकी कितनी आवश्यकता है !

महर्षियों के वचन में कभी खींचतान न करो, उनकी अविनय-आशातना मत करो। नहीं तो अनन्त काल तक मनुष्य जन्म पाना भी कठिन हो जाएगा।

अगर आपको अपना जीवन पावन, मंगलमय और उच्च बनाना है तथा ज्ञानवान् बनना है तो गुरु का विनय करो। शास्त्र में गुरु के सब लक्षण बतलाए हैं। उन लक्षणों से गुरु की परीक्षा कर लो। शास्त्र की कसौटी पर कस लो और जो सौ टंच का सोना साबित हो उसे अपना गुरु बना लो। गुरु बना लेने के पश्चात् अपने जीवन की नौका की पतवार उनके हाथ में सौंप दो निश्चिन्त और निर्विकल्प बन जाओ। फिर आँख मींच कर उनके बतलाये मार्ग पर चलते चलो। निस्सन्देह होकर उनकी आज्ञा का पालन करो। कोई बात समझ में न आवे तो समझने का प्रयत्न करो, फिर भी समझ में न आवे तो गुरु के आदेश को शिरोधार्य करके चलो। जब गुरु बनाने से पहले पूरी परीक्षा कर चुके हो और उनके व्यक्तित्व में कोई दोष नहीं देखते हो, तो फिर उनके आदेश का पालन करने में क्या सोच-विचार? क्यों आनाकानी?

नीचे बैठिए और अपने गुरु को ऊपर बिठलाइए और गुरु के प्रति विनय का भाव लाइए। ऐसा करने से अवश्य आपका मनोरथ पूर्ण होगा।

श्रेणिक महाराज ने जब ऐसा किया तो झट विद्या सध गई। अभिप्राय है कि विनय के बिना न विद्या आती है, न मन्त्र सिद्ध होता है और न कोई अन्य गुण प्राप्त हो सकता है। अतएव माता-पिता की ही भाँति शिष्य को शिक्षक का भी आदर करना चाहिए। शास्त्र मे भी कहा है—

जस्सन्तिए धम्मपयाइं सिक्खे।
तस्सन्तिए वेयणियं पउंजे॥

अर्थात्—जिसके पास से धर्म के पद सीखे अथवा धर्म-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करे, उसके प्रति विनय का प्रयोग करे।

कई लोग अपने आप शास्त्र बाँच लेते है और व्याख्यान देने लगते है। कोई बात समझ मे नही आती तो कह देते है-आचार्यों ने यो,हो लिख मारा है! जो उनकी मर्जी हुई, लिख दिया! कई लोग तो केवलियो की निन्दा करने से भी नही चूकते! ऐसे निन्दको का कल्याण नही हो सकता। चार अगुल का तिनका लेकर कोई जम्बूद्वीप को नापना चाहे तो क्या नप सकता है? लेकिन बिगडी खोपडी के लोग अपनी कमजोरी को महसूस नही करते! पूज्य उदयसागरजी महाराज कहते थे कि केवलियो के वचन सम्राट् के दुशाले के समान हैं। बुद्धिमत्ता स प्रयोग करने पर वह शोभा बढाते हैं और खींच-तान करने से तार-तार बिखर जाते है। इसलिए भाइयो!

विना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो,
जानाति तत्त्वं न विचक्षणोऽपि ।
आकर्णदीर्घायितलोचनोऽपि,
दीपं विना पश्यति नान्धकारे ॥

गुणों के सागर गुरु के बिना तीक्ष्ण बुद्धि वाला व्य भी तत्त्व को नही समझ सकता—गुरु के प्रसाद से ही मर्म पाया जा सकता है । आँखे कितनी ही बडी और तेज क्यो हो जब घनघोर अधकार छाया होता है तो दीपक के बिन कुछ भी दिखाई नही देता। यद्यपि देखने वाली आँख है आँख मे ही दृश्य पदार्थों को देखने को क्षमता है, फिर भ अधकार मे दीपक की आवश्यकता होती है। इसी प्रका देखने की शक्ति शिष्य मे होती है, मगर दिखाने वाले गु अवश्य चाहिए। जैसे दीपक के बिना सिर्फ नेत्रो के भरोसे पर अन्धकार में चलने वाला मनुष्य ठोकर खाता है, गडहे में गिरता है या मार्ग भूल कर विपरीत मार्ग ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार अपनी बुद्धि के सहारे चलने वाला और गुरु रूपी प्रदीप की सहायता न लेने वाला मनुष्य भी पथभ्रष्ट हो जाता है और अपने लक्ष्य तक नही पहुँच पाता। इसीलिए कहा है—

पिता माता भ्राता प्रियसहचरी सूनुनिवहः ।
सुहृत् स्वामी माद्यत्करिभटरथाश्वाः परिकरः ॥
निमज्जन्तं जन्तुं नरककुहरे रक्षितुमलं ।
गुरोर्धर्माधर्मप्रकटनपरात् कोऽपि न परः ॥

चाहे माता, पिता, भ्राता, पत्नी, पुत्र, मित्र और स्वामी

नही कि वह सेनापति के आदेश को अनगीकार करे ! कदा किसी सैनिक ने आज्ञाभग किया तो वह गोली से उडा दि जाता है। इस कठोर अनुशासन से कभी हानि भी होती दि पडे तो भी अन्त में तो लाभ ही होता है। बिना अनुशासन व्यवस्था कायम नही रह सकती।

धार्मिक क्षेत्र में गुरु का वही स्थान है जो सैनिक क्षेत्र सेनापति का है। इसलिए आप अपनी मनमानी मत करो औ गुरु की आज्ञा के अनुसार चलो। हानि-लाभ और तर्क-वित का विचार मत करो। अपनी बुद्धि गुरु के चरणो मे अर्पित क दो। अपने तर्क को गुरु-आस्था मे गला दो। अपने विचार को गुरु के आदेश का अनुचर बना दो। फिर देखो कि थोडे ही दिनो में तुम्हारा जीवन कहाँ से कहाँ पहुचता है ! शीघ्र ही तुम्हारे अन्तःकरण मे एक असाधारण जागृति उत्पन्न होगी, एक क्रान्ति का उदय होगा। एक अनूठा प्रकाश चमक उठेगा।

भाइयो ! कुतर्क का त्याग करो और अचल विश्वास उत्पन्न करो। विश्वास बड़ी चीज् है। बोलो, रंडी के छोकरा-छोकरी क्यों नही हाते ? इसलिए कि उसे एक विश्वास नहीं है। पतिव्रता एक पर विश्वास रखती है तो वह फलती-फूलती है। तुम वेश्या वाला विश्वास मत करना, किन्तु अपने धर्म पर पक्के रहना।

श्रीकृष्ण महाराज को धर्म पर कितनी पक्की श्रद्धा थी? तभी तो उन्होने क्षायिक समकित पाई और तीर्थंकर गोत्र का बध किया। वे आगामी उत्सर्पिणी काल मे तीर्थंकर होगे और जगत् का उद्धार करेगे। जब रुक्मिणी और पद्मावती दीक्षा

भाइयो ! इस प्रकार अभिमान के गलते ही और अन्तःकरण में विनयधर्म के प्रकट होते ही भगवान् बाहुबली को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई ! वे महान् पुरुष थे । उन्होंने थोड़े से विचार से ही अपनी दुर्बलता दूर कर दी और विनयधर्म को धारण कर लिया

गौतम स्वामी की विनीतता पर विचार करो । उनकी सी प्रखर बुद्धि का धनी अन्य कौन हो सकता है ? किन्तु जितनी बार भगवान् से प्रश्न करते, उतनी ही बार तीन दफा उठ-बैठ कर विधिपूर्वक वन्दना करते थे ! धन्य विनयवृत्ति !

शालिभद्र की कथा सुनी है ? एक बार उनकी माता ने कहा-लालजी ! नीचे आओ । श्रेणिक पधारे हैं !

शालिभद्र उस समय नाटक देखने में निमग्न थे । उन्होंने समझा कि कोई व्यापारी आया है ! अतएव उन्होंने कह दिया-मैं नहीं जानता मोल-तोल में ! आपकी इच्छा हो, तो माल खरीद कर भंडार में डाल दो !

भी चला गया और शीतकाल भी व्यतीत हो गया। शरीर बेल चढ गई और पक्षियो ने घौसले बना लिए। इतनी कठिनत तपश्चर्या का अनुष्ठान करने पर भी उन्हे केवलज्ञान नही प्रा हुआ। तब परम दयालु, भक्तभीतिभजन भगवान् ऋषभदेव ब्राह्मी और सुन्दरी को-जो दीक्षित हो चुकी थी-उनके प भेजा। वे खोजती-खोजती तपस्वी बाहुबली के निकट पहुँची उन्होने कहा-हे भाई! तुमने राज्य त्याग, ससार के उत्त सुख छोडे और सयम को ग्रहण किया, किन्तु फिर भी गज सवार हो रहे हो? भाई! परम तपस्वी के लिए ऐसा करना शोभा नही देता। जब इतना सब छोडा तो हाथी की सवारी भी छोड़ दी होती।

साध्वियाँ इतना कह कर चली गई

उधर बाहुबली इन शब्दो को सुनकर सोच-विचार मे पड गए। उन्होने विचार किया-साध्वियाँ मिथ्या भाषण नही कर सकती, तब मैं कौन से हाथी पर चढा हूँ? सोचते सोचते ध्यान मे आ गया कि अहा, मैं अभिमान के गज पर सवार हूँ! अब तक अभिमान ने मेरा पिण्ड नही त्यागा है! और इस अभिमान के प्रभाव से ही मेरी घोर तपस्या फलवती नही हो रही है। अभिमान कषाय ही मेरी कैवल्य प्राप्ति मे बाधक है।

बस, उस वीरवर तपस्वी ने उसी समय अपने अहकार को चूर्ण कर दिया। सोचा-अभिमान आत्मा की निमलता में इतना बाधक है तो मैं इसे पास ही न आने दूँगा। अब मैं अपने पूर्वदीक्षित ९८ लघुभ्राताओ के चरणो मे नमस्कार करूँगा और इस अभिमान का ही मान-मदन करके इसे उपयुक्त सजा दूँगा!

भाइयो ! इस प्रकार अभिमान के गलते ही और अन्तःकरण में विनयधर्म के प्रकट होते ही भगवान् बाहुबली को अनन्तज्ञान की प्राप्ति हो गई। वे महान् पुरुष थे। उन्होने थोड़े से इशारे से ही अपनी दुर्बलता दूर कर दी और विनयधर्म को धारण कर लिया

गौतम स्वामी की विनीतता पर विचार करो। उनकी सी प्रखर बुद्धि का धनी अन्य कौन हो सकता है? किन्तु जितनी बार भगवान् से प्रश्न करते, उतनी ही बार तीन दफा उठ-बैठ कर विधिपूर्वक वन्दना करते थे ! धन्य विनयवृत्ति !

शालिभद्र की कथा सुनी है? एक बार उनकी माता ने उनसे कहा-लालजी ! नीचे आओ। श्रेणिक पधारे हैं !

शालिभद्र उस समय नाटक देखने मे निमग्न थे। उन्होंने समझा कि कोई व्यापारी आया है ! अतएव उन्होने कह दिया-माता, मैं नही जानता मोल-तोल मे ! आपकी इच्छा हो, उसी भाव मे खरीद कर भंडार मे डाल दो !

माता मुस्किराई कि लाल को अभी तक यही नही मालूम कि श्रेणिक कौन हैं? और फिर उसने कहा-अरे, यह तो अपने नाथ हैं ! इनकी छत्र-छाया में ही हम रहते हैं।

माता के यह वचन सुनकर शालिभद्र को एक आघात-सा लगा। वह सोचने लगे-ओह, मैने तो स्वप्न मे भी नाथ का नाम नही सुना था। मेरे ऊपर भी क्या नाथ हैं?

बैठ पलग पर धरे ध्यान, दिल म्यान विचारे ऐसी बात।
नहीं कीनी करणी, जिससे हुए हमारे सिर पर नाथ ॥

भी चला गया और शीतकाल भी व्यतीत हो गया। शरीर पर बेल चढ गई और पक्षियो ने घोसले बना लिए। इतनी कठिनतर तपश्चर्या का अनुष्ठान करने पर भी उन्हे केवलज्ञान नही प्राप्त हुआ। तब परम दयालु, भक्तभीतिभजन भगवान् ऋषभदेव ने ब्राह्मी और सुन्दरी को-जो दीक्षित हो चुकी थी-उनके पास भेजा। वे खोजती-खोजती तपस्वी बाहुबली के निकट पहुँची। उन्होने कहा-हे भाई! तुमने राज्य त्याग, ससार के उत्तम सुख छोडे और सयम को ग्रहण किया, किन्तु फिर भी गज पर सवार हो रहे हो? भाई! परम तपस्वी के लिए ऐसा करना शोभा नही देता। जब इतना सब छोडा तो हाथी की सवारी भी छोड़ दी होती।

साध्वियाँ इतना कह कर चली गई

उधर बाहुबली इन शब्दो को सुनकर सोच-विचार मे पड गए। उन्होने विचार किया-साध्वियाँ मिथ्या भाषण नही कर सकती, तब मैं कौन से हाथी पर चढ़ा हूँ? सोचते सोचते ध्यान मे आ गया कि अहा, मैं अभिमान के गज पर सवार हूँ! अब तक अभिमान ने मेरा पिण्ड नही त्यागा है! और इस अभिमान के प्रभाव से ही मेरी घोर तपस्या फलवती नही हो रही है। अभिमान कषाय ही मेरी कैवल्य प्राप्ति मे बाधक है।

बस, उस वीरवर तपस्वी ने उसी समय अपने अहकार को चूर्ण कर दिया। सोचा-अभिमान आत्मा की निर्मलता में इतना बाधक है तो मैं इसे पास ही न आने दूँगा। अब मैं अपने पूर्वदीक्षित ९८ लघुभ्राताओ के चरणो मे नमस्कार करूँगा और इस अभिमान का ही मान-मर्दन करके इसे उपयुक्त सजा दूँगा!

और किसी भी प्रकार का कायक्लेश आपकी आत्मा को निर्मल नही बना सकता। अतएव आपको वीतरागता की ही उपासना करनी चाहिए। वीतरागता का परम प्रकर्ष ससार मे अरिहत जिनेन्द्र भगवान् में ही पाया जाता है। इस कारण आपको उन्ही के चरणो मे अपनी विनयभक्ति प्रकट करनी चाहिए। इससे आपकी आत्मा का उद्धार होगा और आनन्द ही आनन्द वरतेगा।

२-१-४६ }
पाली }

अभी तक मैं समझ रहा था कि मैं ही सब का नाथ हूँ। किन्तु यहां तो मेरे सिर पर भी नाथ निकल पडा ! छि, इस ससार मे रहना व्यर्थ है ! इसको त्याग कर सयम धारण कर लेना ही श्रेयस्कर है।

ऐसा करने से मेरेसिर पर कोई नाथ नही रह जायगा। किन्तु माताजी ने नीचे उतरने के लिए कहा है। नही जाऊँगा तो अविनीत हो जाऊँगा। इस प्रकार विचार कर वे नीचे गए।

कहो भाइयो ! शालिभद्र के अन्त करण मे विनय के सस्कार न होते तो वे ऐसा सोचते ? वास्तव मे पुण्यवान जीव ही विनय के गुण को प्राप्त करता है।

इस प्रकार चाहे शास्त्रो मे प्रतिपादित चरित्रो का अध्ययन करो, च हे शास्त्रो के विधान को देखो सर्वत्र विनय की प्रधानता ही आपको दिखाई देगी। किसी भी प्रकार की खेती करने के लिए पहले जमीन तो बनाने की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार प्रत्येक गुण को प्राप्त करने के लिए विनय की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि आचार्य मानतुङ्ग महाराज ने भगवान् आदिनाथ-ऋषभदेव को पुन. पुन. नमस्कार किया है।

वीतरागता का उपासक वीतराग को नमस्कार करता है और धन का उपासक धनवान के आगे मस्तक झुकाता है। से जिस वस्तु की चाह है, वह उसी वस्तु के स्वामी को ता है। आप यहा आत्मा के कल्याण की कामना लेकर ाये हैं और आत्मा के कल्याण का एक मात्र उपाय वीतरागता की प्राप्ति है। वीतराग भाव के अभाव मे कोई भी तपस्या

विधाता हैं, क्योंकि आपने मोक्ष-मार्ग की विधि चलाई है। इन सब असाधारण गुणो के कारण, भगवन्! यह स्पष्ट है कि आप ही पुरुषोत्तम हैं।

भाइयो! यह भक्तामरस्तोत्र का एक पद्य है। सारा स्तोत्र इसी प्रकार की अतीव रमणीय और हृदयहारी सूक्तियों से भरा हुआ है। इसमे भगवान् नाभिनन्दन की ऐसे समर्थ शब्दो मे स्तुति की गई है कि जो कोई भी उन शब्दो के मर्म को समझ कर पठन करेगा, उसका चित्त भक्ति के अनिर्वचनीय रस मे अवगाहन किये बिना नही रहेगा। उसके अन्तःकरण से भक्ति का अतिविमल झरना फूटे बिना नही रहेगा। इस स्तुति में हृदय को द्रवित कर देने को अपूर्व क्षमता है।

आज मगलाचरण में जो पद्य बोला गया है, उसका कई दृष्टिकोणो से बडा महत्त्व है। भक्ति का अनूठा रस तो उससे प्रवाहित हो ही रहा है, ईश्वर का स्वरूप भी उससे स्पष्ट झलक रहा है। ससार में ईश्वर को लक्ष्य करके जो जटिल मतभेद चल रहे हैं, उनका अन्त कर देने का मार्ग यहा आचार्य ने बडी खूबी से सुझा दिया है।

अकसर देखा जाता है कि लोग परमात्मा के स्वरूप पर विचार नही करते और उसके विविध नामो का आग्रह करके आपस में झगडते रहते हैं। कोई राम के नाम को पकड कर बैठा है तो कोई रहीम नाम पर डटा है! कभी-कभी तो नामो का झगडा इतना तीव्र बन जाता है कि न पूछो बात! यहा तक कि कई वैष्णव शिव का नाम उच्चारण नही करते और शैव लोग विष्णु के नाम से चिढ़ते हैं। इस प्रकार गहराई

१२

नाम और रूप

स्तुतिः—

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशङ्करत्वात् ।
धाताऽसि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? प्रभो ! कहा तक आपके गुण गाये जाएँ ?

हे प्रभो ! हे देवो द्वारा पूजित पादपीठ वाले प्रभो ! आप द्ध हैं क्योकि देवताओ ने भी आपके अनन्त बोध की पूजा है । नाथ ! आप ही शकर हैं, क्योकि आप तीनो लोको मे ान्ति और सुख का प्रसार करने वाले हैं । हे जिनवर ! आप

से तुच्छ पदार्थ को लीजिए या परमात्मा जैसे महान् पदा को लीजिए। प्रत्येक मे अनन्त गुणो का अस्तित्व है । य ठीक है कि हम परिमित बुद्धि वाले अनन्त गुणो को अलग अलग समझने मे समर्थ नही हैं, फिर भी अल्पज्ञो की स के कारण वस्तु स्वरूप अन्यथा नही हो सकता । वस्तु : स्वरूप मे वर्त रही है. उसे आपकी समझ की चिन्ता नहीं है आपके अन्यथा समझने से वह अन्यथा नही होगा । वह त अपने निज रूप मे ही रहेगी ।

हाँ, तो परमात्मा मे भी अनन्त गुणो की सत्ता है । अनन्त गुणो के कारण ही परमात्मा के अनन्त नाम हैं अनन्त गुणो मे ज्ञान गुण प्रधान है । परमात्मा अनन्तज्ञा हैं और यही उसका प्रधान लक्षण है जैसे सूर्य अपने स्था पर रहता है, किन्तु उसका प्रकाश लोक मे व्याप्त होता है उसी प्रकार परमात्मा का ज्ञान भी अखिल लोकाल है। इसी अपेक्षा से परमात्मा को सर्वव्यापी अथवा वि करते है ।

दूसरे लोग भी परमात्मा को सर्वव्यापी कहते हैं । हम भी सर्वव्यापी कहते हैं, किन्तु दोनो की दृष्टि मे भेद है दूसरे लोग शरीर से व्यापक मानते हैं। उनका कहना है परमात्मा शरीर सहित सर्वव्यापी हैं। कहा भी है—

> विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखं,
> विश्वतो बाहुरुत विश्वतः पाद् ।

अर्थात्—ईश्वर की आंख सब जगह हैं, मुख जगह हैं, भुजाएँ सब जगह हैं और पैर भी सब जगह हैं ।

मे न पहुँचने वाले लोग रूप को न समझ कर नाम मे ही भटके रहते हैं ।

ज्ञानीजन नाम को गौण और रूप को मुख्य मानते हैं। वे वस्तु के स्वरूप का चिन्तन करते हैं और यथार्थ स्वरूप का निर्णय कर लेते हैं। फिर उस वस्तु का नाम कुछ भी रख लिया जाय, किसी भी शब्द से उसे कहा जाय, इसमे उन्हे कोई आपत्ति नही होती।

परमात्मा का स्वरूप एक है और नाम अनेक हैं। जैनो के सहस्र नाम मे भगवान् के हजार नाम बतलाये गये हैं और वैष्णवो मे भी सहस्र नाम प्रचलित हैं। इस तरह हजारो नाम होने पर भी तत्त्व एक ही है। परमात्मा के विषय मे जो इस तथ्य को समझ लेगा वह नाम को लेकर राग-द्वेष मे कदापि नही पडेगा।

आचार्य महाराज ने यहां परमात्मा के अनेक नामों को एक ही स्वरूप मे घटाया है। वे कहते हैं—परमात्मा बुद्ध भी है, शकर है, ब्रह्मा (विधाता) भी है और पुरुषोत्तम (विष्णु) भी है इसका अर्थ यह नही समझना चाहिए कि परमात्मा के स्वरूप अलग-अलग हैं। स्वरूप तो सब का एक है, किन्तु नाम ही अलग-अलग हैं।

अब प्रश्न हो सकता है कि परमात्मा का स्वरूप क्या है? इस प्रश्न का उत्तर भी परोक्ष रूप मे इस पद्य मे आ गया है ।

सर्वप्रथम यह समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक वस्तु में नेक—अनन्त गुण पाये जाते हैं। ससार के किसी भी तुच्छ

ज्ञान होगा वहां आत्मा अवश्य होगा। अब जब हम परमात्मा को ज्ञान से, सर्वव्यापक कहते हैं तो क्या परमात्मा रूप गुणी सर्वव्यापक है ? नही, परमात्मा की आत्मा को व्यापक मानने मे अनेक आपत्तियाँ हैं। फिर भी ज्ञान को जो सर्वव्यापक कहा है, वह सिर्फ शक्ति की अपेक्षा से। अर्थात् ईश्वर को ज्ञान समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जानता है; ससार का कोई भी पदार्थ उनके ज्ञान से अगोचर नही हैं, इसी कारण परमात्मा का ज्ञान व्यापक कहलाता है। कहा भी है –

गंतूण ण परिछिंदइ, णाणं णेयं तयम्मि देसम्मि ।
आयत्थं चिय नवरं, अचिंतसत्तीउ विण्णे ॥

अर्थात्—जिस जगह पर ज्ञेय पदार्थ विद्यमान है, उस जगह जाकर ज्ञान उस पदार्थ को नही जानता है, किन्तु आत्मा मे स्थित रह कर ही जानता है। कोई कहे कि आत्मा मे रह कर बाहर के, दूर-दूर के, पदार्थों को ज्ञान किस प्रकार जान सकता है ? इसका उत्तर यह दिया गया है कि अचिन्त्य शक्ति के द्वारा ऐसा होता है।

आखिर हम भी तो एक जगह बैठे-बैठे दुनिया भर की वस्तुओ का स्मरण करते हैं। स्मरण भी एक प्रकार का ज्ञान है। इस प्रकार जब हमारा ज्ञान हमारी आत्मा मे स्थिर रहता हुआ भी बाहर के पदार्थों को जान सकता है तो परमात्मा का ज्ञान आत्मा मे रहा हुआ ही समस्त जगत् के पदार्थों को क्यो नही जान सकता ?

कदाचित् यह कहा जाय कि हमारा पदार्थों के पास जाकर ही उन्हे जानना है, तो यह कहना युक्त नही है।

अब आप विचार कीजिए कि यदि सम्पूर्ण लोक मे ईश्वर का ही शरीर भरा हुआ हुआ है तो शरीर तो शरीर ही है, जैसा हम लोगो का वैसा ही ईश्वर का। अतएव दूसरे किसी पदार्थ को रहने का अवकाश ही नही मिलेगा ! क्या हम सब लोग और जगत् के अन्य समस्त पदार्थ ईश्वर के शरीर में ही समाये हुए हैं ? ऐसा हो तो बडी गडबडी होगी ! ईश्वर को नरक मे भी रहना मानना पडेगा और अशुचि स्थानो में भी मगर ऐसा मानना ईश्वर की शान के खिलाफ है। इससे ईश्वर के ईश्वरत्व में बट्टा लगता है। अतएव शरीर से ईश्वर क सर्वव्यापी मानने की कल्पना बुद्धिग्राह्य नही हैं।

कहा जा सकता है कि ईश्वर के शरीरव्यापी होने अगर बाधा आती है तो ज्ञान-व्यापी होने में भी तो यह बाधा है। फिर आप ज्ञान से व्यापक क्यो मानते हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर समझने योग्य है। बात यह है f गुण और गुणी में तादात्म्य सबंध होता है। दोनो साथ-सा हो रहते है एक को छोड़ कर दूसरा कदापि नही रह सकता जैसे फूल और फूल की गध अलग-अलग नही रह सकते, उस प्रकार कोई भी गुण अपने गुणी को छोड कर नही रह सकता अथवा जैसे घट का रूप घट को छोड कर अन्यत्र नही ज सकता, उसी प्रकार कोई भी गुण अपने गुणी को छोडक अन्यत्र नही रह सकता। इस नियम को भली-भांति सम लेना चाहिए।

आत्मा गुणी और ज्ञान उसका गुण है। उपर्यु सिद्धान्त के अनुसार वह भी अलग-अलग नही रह सकते अर्थात् जहां आत्मा होगा वही ज्ञान होगा और ज

भगवान् ने तब तक ही उपदेश दिया जब तक वे तेरहवें गुणस्थान मे रहे। चौदहवें गुणस्थान मे पहुँचने पर उपदेश देना वद कर दिया, क्योंकि फिर अक्रिय हो गए। उन्हे कोई काम करना शेष नही रहा। काम शेष रहता है तो पुरुषार्थ किया जाता है और शेष न रहे तो पुरुषार्थ करने की भी क्या आवश्यकता है? जैसे किसी मनुष्य के सामने सौ मन अनाज का ढेर पडा है। तोलने वाले ने तोलना आरभ किया और सब तोल डाला। जब शेष नही रहा तो क्या तोलेगा? और होगा तो तोलेगा। नही होगा तो अपने तोले-तराजू लेकर घर जाएगा। इसी प्रकार जब तक कर्म बाकी रहे तब तक भगवान् पुरुषार्थ करते रहे। तब कर्म न रहे तो अपने घर-मोक्षधाम-मे चले गए। अब उन्हे पुरुषार्थ करने की आवश्यकता ही नही रह गई जहाँ तक अधूरापन है, कुछ प्राप्त करने की अभिलाषा है, वहाँ तक ही पुरुषार्थ है। अगर भगवान् का भी काम अधूरा रह जाय तो समझना चाहिए कि वह भगवान् हो नही हैं! जब तक अपूर्णता है तब तक परमात्मापन प्राप्त नही होता। जिसमें पाँच गुण पाये जाते हैं वही भगवान् हैं—

खेयन्नए से कुसले महेसी,
अणंतनाणी य अणंतदंसी ॥

जो सब कुछ जानने वाला और सब कुछ देखने वाला है, उसे ही भगवान् कहते हैं। भगवान् के लिए कहा जाता है- सव्वन्नूण, सव्वदरिसीण,। यह भगवान् के गुण हैं।

एक आदमी कहने लगा कि प्राय. सभी कहते हैं कि भगवान् सब कुछ देखते हैं, परन्तु मैं कहता हू-भगवान् एक

यदि आत्मा से बाहर निकल कर पदार्थ को जानने के जाएगा तो आत्मा उस समय ज्ञानहीन अर्थात् अचेत जाएगी। किन्तु ऐसा होना कभी नही देखा जाता। अत स्पष्ट है कि ज्ञान आत्मा से बाहर कदापि नही निकलता। हमारा ज्ञान, अपनी अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से आत रहता हुआ भी पदार्थों को जान लेता है तो फिर परमा का ज्ञान क्यो नही जान लेगा ? हमारा ज्ञान इन्द्रियजन्य आवरणो से घिरा है और अपूर्ण है। परमात्मा का ज्ञ अतीन्द्रिय, निरावरण और परिपूर्ण है। देश और काल अ का किसी भी प्रकार का व्यवधान उसे रोक नही सकता। इ कारण शास्त्रो मे जगह-जगह कहा गया है--

अप्पडिहयवरनाणदंसणधरे।

अर्थात्--भगवान् अप्रतिहत (बिना किसी रुकावट के ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले है।

तात्पर्य यह है कि परमेश्वर न शरीर से सर्वव्यापी है न आत्मा से वह शक्ति की अपेक्षा ज्ञान से सर्वव्यापी है। उनका ज्ञान अनन्त है, असीम है, अप्रतिहत है। जैसे सूर्यमण्डल नियत क्षेत्र मे है किन्तु उसका प्रकाश लोक मे फैल रहा है, उसी प्रकार भगवान् सब से न्यारे है और ज्ञान की अपेक्षा सारे जगत् मे व्याप्त है।

कोई मनुष्य धूप मे दो-चार लट्ठ फटकारे तो धूप का क्या बिगडेगा ? उलटा मारने वाले को ही कष्ट होगा ! इसी प्रकार भगवान् ज्ञान से सारे ससार मे व्याप्त हैं और जो मनुष्य झूठ बोलेगे वही दुःख उठाएँगे। भगवान् कुछ नही कहेगे।

घोडे के रूप में देखते हैं, मनुष्य के रूप में नही देखते। तो क्या उनके सर्वदर्शीपन मे कमी रह गई ? नही।

जो वस्तु-स्वरूप विद्यमान है उसे न देखने से सर्वदर्शीपन में कमी आती है। इसी प्रकार जो वस्तु नही है, उसे देखने से भी सर्वदर्शिता में बाधा आती है। भगवान् यदि मनुष्य को घोडा और घोडे को मनुष्य के रूप मे देखने लगे तो वह भ्रान्ति होगी, मिथ्या देखना होगा। इसी प्रकार उनका अपना कोई स्वप्न नही है, फिर भी वे उसे देखने लगें तो सर्वदर्शी नही रह जाएँगे। सार यह है कि जगत् में जितने भी पदार्थ विद्यमान हैं, उन सब को भगवान् यथार्थ रूप मे जानते और देखते हैं। यहा तक भगवान् के दो गुण हुए—(१) अनन्तज्ञान और (२) अनन्तदर्शन।

भगवान् का तीसरा गुण 'अनन्तशक्ति' है। परमात्मा मे अनन्त शक्ति विद्यमान है। यह भी उसका एक लक्षण हैं।

कई लोग कहते हैं—परमात्मा सर्वशक्तिमान् है। आपको समझना चाहिए कि अनन्त शक्तिमान् और सर्वशक्तिमान् में क्या अन्तर है ? देखो, सर्वशक्ति मे अच्छी और बुरी दोनो प्रकार की शक्तियाँ शामिल हो जाती हैं और अनन्तशक्ति में आत्मा की स्वाभाविक शक्तियाँ ही अन्तर्गत होती हैं। जो लोग परमात्मा को सर्वशक्तिमान् कहते हैं, उनसे अनन्त शक्तिमान् मानने वाला प्रश्न करता है कि क्या ईश्वर मे ईश्वरत्व को नष्ट कर लेने को शक्ति है ? क्या ईश्वर मे अपने समान अनादि अनन्त अनेक ईश्वर बना लेने की शक्ति है ? अगर यह शक्तियाँ नही हैं तो वह सर्वशक्तिमान् कैसे रहा ? और जब

चीज नही देखते। क्या आप बता सकते हैं कि भगवान् क
चीज नही देखते ?

उसने कहा-स्वप्न नही देखते है!

बात ठीक है। स्वप्न वही देखता है जो नींद ले। अगर भगवान् नींद लेने लगें तो उनका सब जानना और भाग जाय! उस समय तो अज्ञान अवस्था हो जाए! प भगवान् को निद्रा नही आती, क्योंकि उन्होंने दर्शनावरण का समूल घात कर दिया है। निद्रा का कारण दर्शनाव कर्म है। जब कारण नही रहता तो कार्य भी नहीं होता। लोग कहते हैं-भगवान् सोएँगे, अत चलो शयन के दर्शन क किन्तु भाई, भगवान् सो जाएँ तो उनका भगवान्पन ही भ जाए!

तो जिन्हे नींद आती है वे सोते है और जो सोते हैं उ स्वप्न आता है। लेकिन भगवान् न सोते है, न स्वप्न देखते है

जब भगवान् स्वप्न नही देखते तो सर्वदर्शीपन की बा गलत हो गई ? नही, ऐसा नही समझना चाहिए। भगवान् स्व स्वप्न नही देखते किन्तु दूसरो को जो स्वप्न आते है, उन्हें अवश्य देखते हैं। अतएव उनके सर्वदर्शित्व बाधा नही आती।

सबको देखने वाला सर्वदर्शी कहलाता है। सबको देखने का अर्थ यह है कि जिसकी सत्ता है उसे देखे। ऐसा नही कि जिसकी सत्ता ही नही है उसे भी देखे। भगवान् का अप-ा कोई स्वप्न ही नही है तो वे देखें कैसे ? मनुष्य को मनुष्य के रूप मे वे देखते है, किन्तु घोडे के रूप मे नही देखते। घोडे को

एक भाव बिकेगा ? नही। तो फिर सम्यग्दृष्टि गुड और गोबर को एक-सा कैसे समझ सकता है ?

तो इस प्रकार की बारीकी की बाते तब समझ मे - है जब ज्ञानवान् गुरु की सगति की ज य। बिना ज्ञानियो सगति के ठीक-ठीक तत्त्व समझ मे नही आता। अन्तर सा जान पडता है, किन्तु कभी-कभी वह थोडा सा अन्तर बहुत बडा अर्थभेद उत्पन्न कर देता है।

अतएव सूक्ष्म बातो को समझने के लिए शास्त्रज्ञ का समागम करना ही योग्य है। जो जैसा समागम क वह वैसा ही बन जाता है। गुणवानो की सगति गु बनाती है, ज्ञानियो की सगति ज्ञानवान् बनाती है और की सगति दुर्जन बनाती है। मन का स्वभाव ऐसा व कि वह जैसा ससर्ग पाता है, वैसा ही बन जाता है। रग कैसा ? जिसमे मिल जाय वैसा। यही बात मन मे है।

एक सुथार कही जा रहा था। रास्ते में उसे गए। सुथार ने पूछा—तुम कौन हो ?

चोर जानते थे कि यह हमारा क्या बिगाड अतएव उन्होने सच-सच कह दिया—चोर हैं।

'क्या करते हो ?'

'चोरी।'

'चोरी करने से क्या लाभ है ? पकडे दुर्दशा होगी।'

सर्वशक्तिमान् नही रहा तो तुम्हारी मान्यता के अनुसा भी नही रहा !

आशय यह है कि ईश्वर मे सर्वशक्तियाँ नही, शक्तियाँ है। उसकी अनन्त शक्तियो मे से भी प्रत्येक अनन्त है।

बात ऐसी कहनी चाहिए जिसमे दोषोत्पत्ति न हो आदमी ने पूछा—समदृष्टि किसे कहते हैं ?

मैंने कहा—तुम्ही समदृष्टि की परिभाषा करो।

वह बोला—जो सब को समान दृष्टि से देखे स एक सरीखा भाव रक्खे, वही समदृष्टि।

कहा—जो सब पर समान भाव रक्खेगा वह अपनी माता पर और अपनी पत्नी पर भी समान रक्खेगा ? दोनो को एक ही दृष्टि से देखेगा ?

तब वह कहने लगा—जो वस्तु जैसी है उसे वैसी समझना समदृष्टि कहलाती है। पुण्य को पुण्य, पाप को पा साधु को साधु, असाधु को असाधु, हीरे को हीरा और क को कंकर समझना ही सम्यग्दृष्टि या समदृष्टि है। भगवान् पापी को पापी और धर्मी को धर्मी समझते हैं। क्योकि—

वत्थुसहावो धम्मो।

वस्तु का स्वरूप ही धर्म है। जिस वस्तु का जैस स्वरूप है, उसे वैसा ही समझना धर्म का समझना कहलाता है। विष और अमृत एक हो जाएगा क्या ? हाथी और गधा

फैली हुई हैं, उनका कारण ज्ञानी जनो की सगति न करना है। जो लोग ज्ञानी पुरुषो के अन्तेवासी नही बनते, उनको उपासना नही करते और उनकी वाणी श्रवण नही करते, वे ही तरह-तरह की भ्रान्तियो के पात्र बनते हैं। परमात्मा को अनन्त-शक्तिमान् मानने के बदले सर्वशक्तिमान् मानने का यही कारण है। सर्वशक्तिमान् कहने से ईश्वर ससार की सब बुराइयो का भी भडार बन जाता है और उसके ईश्वरत्व मे बाधा आती है। अतएव ईश्वर को अनन्तज्ञानी, अनन्तदर्शी और अनन्तशक्तिमान् ही मानना उचित है।

ईश्वर का चौथा गुण है-पूर्णता। आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप मे पूर्ण है, किन्तु आत्मिक विकारो एव तज्जन्य आवरणो के कारण उसका स्वरूप छिप जाता है, दब जाता है या विकृत रूप धारण कर लेता है। फिर आत्मा मे जब जागृति आती है और वह अपने स्वरूप की उपलब्धि के लिए उद्यत होता है, तब सयम और तप की साधना करके उन विकारो को नष्ट करने लगता है। विकार ज्यो-ज्यो दूर होते जाते हैं, आवरण क्षीण होते जाते हैं और आत्मा को शुद्ध स्थिति प्रकट होती जाती है। शनै शनै आत्मिक बल की अभिवृद्धि होती है और तब आत्मिक विशुद्धि भी बढ़ती है। अन्त मे आत्मा चरम विजय प्राप्त करके सर्वथा निर्विकार और निरुपाधिक बन जाती है। वही आत्मा की पूर्णता है। आत्मा की स्वाभाविक शक्तियां अपने असली रूप मे प्रकाशित हो जाने पर किसी प्रकार की अपूर्णता को अवकाश नही रहता। इसी कारण परमात्मा पूर्ण कहलाता है।

जो लोग परमात्मा को जगत् के सचालन की झझटो

'अरे भोले ! एक बार चोरी करते है तो दस-बीस हजार का माल हाथ लग जाता है। मौज से खाते-पीते है। जो होशियारी से चोरी करेगा वह पकडा कैसे जाएगा ?'

सुथार का मन मचल गया। उसने कहा—मैं दिन भर पसीना बहाता हू तब कही रुपया-डेढ रुपया कमा पाता हूँ ! क्या तुम मुझे शामिल नही कर सकते ?

चोरो ने कहा—क्यो नही ? तुम्हे भी पाँति देगे। शामिल हो जाओ।

तात्पर्य यह है कि सगति से ही आदमी सुधर जाता है और सगति से ही बिगड़ जाता है। एक कटोरे मे दूध भरा है। उसमे शक्कर डालो तो कैसा अमृत-सा स्वाद बन जाता ? और यदि नमक डाल दो तो वही दूध कितना विकृत हो जाता है ? इसी प्रकार मनुष्य जैसो के ससर्ग मे रहता है, वैस ही हो जाता है।

संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ।

कोई भी आदमी जन्म से सद्गुण या दुर्गुण लेकर नही आता; वह तो कोरे कागज के समान उत्पन्न होता है किन्तु बाद मे गुणी जनो का ससर्ग पाकर गुणी और दुर्गुणी की सगति पाकर दुर्गुणी हो जाता है। ज्ञानी के पास रह कर ज्ञान से विभूषित हो जाता है और बुद्धिमान के सम्पर्क मे आकर बुद्धू बन जाता है। कुसगति से सारी पडिताई भी खाक मे मिल जाती है।

तो परमात्मा के विषय मे जो नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ

साराश यह है कि परमात्मा मे ऊटपटांग गुणो की कल्पना करने से उसका स्वरूप बिगड जाता है। अतएव ऐसे गुण न मान कर उक्त गुण ही मानना चाहिए।

ईश्वर का पांचवां गुण है—अव्याबाध सुख। अर्थात् ईश्वर के सुख मे कोई बाधा नही है। ससारी जीवो का सुख इन्द्रिय जनित और विषयाश्रित है। परनिर्भर है। पर निर्भर होने से वह अस्थायी है, कभी होता है, कभी नही होता। वह सीमित भी होता है। किन्तु परमात्मा का सुख आत्मिक है, अतएव उसमे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती और वह अमर्याद है। ईश्वर Enternal happiness में मग्न है। उसके सुख मे त्रुटि नही है।

भाइयो! परमात्मा तुम्हे या हमें दिखाई नही देता, फिर भी युक्ति से उसके गुणों को समझ कर मानना चाहिये। अभी जो पाच गुण बतलाए गए हैं, वे सर्वमान्य हैं। जैन वैष्णव और मुसलमान आदि सभी उन गुणो को मानते हैं। किन्तु जब उसमे दूसरे अयोग्य गुणो का आरोप कर दिया जाता है, तब नाना प्रकार के विवाद खडे हो जाते हैं और ईश्वर की सत्ता ही विवाद का विषय बन जाती है।

जैनधर्म स्याद्वादमय और दयामय धर्म है। वह किसी की बुराई नही कर सकता और न निन्दा करता है। वह वस्तु के परिपूर्ण स्वभाव को प्रकट करता है। जिसकी इच्छा हो वह माने, न इच्छा हो तो न माने। वह किसी पर जबर्दस्ती नही करता। दयाधर्मी कहता है कि अभी नही समझा तो कल समझेगा। कल नही तो अगले जन्म मे समझेगा। अगले जन्म मे भी नही समझेगा तो दो चार चौरासी

मे डालते है उन्होने इस तत्त्व पर विचार नही किया। ज
का कर्त्ता-हर्त्ता और सचालक एव व्यवस्थापक मानने से ईश
की पूर्णता नही रहती।

कल्पना करो कि किसी गांव पर पचास डाकू चढ आ
हैं। उस गाव मे हाकिम मोजूद है और उसे मालूम है
डाकूओ ने धावा बोल दिया है। यही नही, उसे पहले ही प
चल गया था कि डाकुओं की चढाई होने वाली है। ऐसी स्थि
मे उसका क्या कर्त्तव्य होना चाहिए ? उसे डाकुओ को धा
करने से रोकना चाहिए। यदि वह नही रोकता है तो बा
होकर यही मानना पडेगा कि या तो वह प्रजा को जनबू
कर लुटवाना चाहता है या उसमे रोकने की शक्ति नही है दो
विकल्पो मे वह हाकिम रहने के योग्य नही है। कदाचित् रोक
की इच्छा और शक्ति होने पर भी वह नही रोकता है और लू
चुकने के बाद उन्हे सजा देता है तो यह भी उपयुक्त नही कह
जा सकता। जो अपराध करने से रोकने की शक्ति होने पर भ
किसी को अपराध करने से रोकता नही, उसे बाद मे द
देने का भी अधिकार नही है। आपको मालूम हो जाय कि
मेरा बेटा कुए मे पडने वाला है, तो वह रोकेगा अथवा नही ?
कुए मे पहले गिर जाने दे और फिर उसे दण्ड दे कि तू क्यो
गिरा, ले गिरने का फल भोग, तो ऐसा करने वाला क्या पिता
के पद का अधिकारी रह सकता है ? इसी प्रकार परमात्मा
जब सर्वज्ञ होने के कारण जानता हैं, सर्वज्ञ शक्तिमान होने से
रोक सकता है और दयालु माना जाने के कारण रोकना
ाहता है, तो फिर जीवो को पाप करने से क्यो नही रोकता ?
कसे पूर्ण कहला सकता ?

लडका—तुम्हे क्या दीखता हू ?

सिपाही- दीखता तो आदमी है।

लडका—तो फिर पूछने की बात ही क्या रह गई ?

सिपाही—अच्छा भाई, अच्छा ! पर तुझे बाधा किसने है !

लडका—उसी ने जो चोरी कर गया।

सिपाही—चोरी कौन कर गया।

लडका—वही जो मुझे बाध गया है।

सिपाहियो ने घुडक कर कहा अबे, सीधी तरह बता ! जानता है हम कौन हैं ? चमडी उधेड देंगे !

लडका - मैं सच ही कहता हू !

पुलिस के सिपाही सहज छोडने वाले नही थे। उन्होंने लडके की खूब मरम्मत की, कान ऐठे घूमे जमाये। पर लडका पक्का गुरुघटाल था। वह अन्त तक यही कहता रहा—मुझे उसने बाधा है जो चोरी कर गया है और चोरी वह कर गया है जो मुझे बाध गया है।

इसी बीच लडके का मामा, चोरी का माल लेकर चला गया था, पोशाक बदल कर और एक बढिया घोडे पर सवार होकर वहा लौट आया। उसने उनकी बातचीत सुनी। फिर सिपाहियो से कहा—यो वश मे नही आएगा। आप चाहे तो मैं इससे सच-सच कहलवा सकता हूँ। मुझे एकान्त मे इसे ले जाने दो।

मामा ने अलग जाकर उससे पूछा बोल, ककडी में बीज होते हैं या नही ?

भाणेज—आपकी दलीलों से मै जीत नही सकता, मैं तो यही कहूँगा कि ककडी मे बीज होते ही नही हैं।

मामा—अरे, यह कैसे हो सकता है? तू प्रत्यक्ष अपलाप करता है!

भाणेज—यह तो अपना-अपना दृष्टिकोण है।

मामा और भाणेज इसी प्रकार वाद-विवाद करते-आगे बढे। उन्होने मिलकर एक गॉव मे चोरी को। सोना-लेकर गांव से बाहर आए। तब मामा ने पूछा—ककड बीज होते हैं या नही?

लडका बडा पक्का था। बोला—मामा, क्यो मुझ झूठ बुलवाते हो? ककडी मे तो बीज होते हो नही।

मामा को गुस्सा आया। उसने लडके को रस्सी बांध कर एक वृक्ष की शाखा से लटका दिया। फिर कहा देख, सच-सच कह दे, नही तो सिपाही पकड कर सुबह ते मरम्मत करेगे।

लडके ने उस समय भी कहा—जन्म लिया तो मर तो पडेगा ही। फिर जिन्दगी को बचाने के लिये झूठ क्यो बोलू ककड़ी मे बीज होते ही नही तो कैसे कह दू कि होते हैं?

लडके को अपनी बात पर दृढ देखकर मामा च दिया और वह पेड से लटका रहा। पिछली रात को गाव चोरी हो जाने का शोर हुआ और सिपाही चोर की तलाश मे र उधर दौड धूप मचाने लगे। कुछ सिपाहियो ने लडके बाधा देखा और पूछा—'तू कौन है?'

अनेक-अनन्त धर्म होते हैं। यही स्याद्वाद सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त वस्तु मात्र में व्यापक है। एकान्तवाद का पूछडा पकड़ने योग्य नही है। प्रत्येक वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोणो से देखना चाहिए। कल्पना करो कि किसी नें तुम्हे 'साला' कहकर गाली दी। यह गाली सुनकर तुम क्रोध से काँपने लगते हो और गाली देने वाले को मारने-पीटने पर उतारु हो सकते हो। यह दृष्टिकोण का फर्क है। अगर आपके चित्त मे उपशम है और दृष्टि मे सही तरीके से सोचने की शक्ति है तो आप यह सोचेंगे कि इसने मुझे 'साला' कह दिया तो क्या बुरा कह दिया ? समस्त परस्त्रियाँ मेरी बहिने है और इस दृष्टि से मैं साला हूँ ही। मैं क्यो बुरा मानूँ ?

बात यह है कि जिस दृष्टि से वस्तु पर विचार करो वैसी ही वस्तु दृष्टिगोचर होने लगती है। कहा भी है—

यथा दृष्टिस्तथा सृष्टिः।

एक साधुजी किसी गाँव मे गये। गाँव के लोग बोले— यहाँ क्यो आ गए ? साधुजी ने कहा–'रास्ता भूल गया।' तब लोगो ने कहा–अच्छा, हम रास्ता बतलाय देते हैं।

साधुजी—आ गए हैं तो रात भर ठहरेंगे।

लोग कहने लगे–नही, हम रात नही रहने देंगे। तुम हमे मार डालोगे !

साधुजी—कैसे ? हम तो कीडी को भी नही मारते !

लोग—हम चोरी करके आजीविका चलाते हैं। आप रहेंगे तो उपदेश दे देंगे। हमने चोरी छोड दी तो भूखे मर जाएँगे!

लडका बोला–मामाजी, कहो तो भगवान् की सौगंद ८ कि ककडी मे बीज नही होते !

मामा ने उसे घोडे पर बिठलाया और ऐसी एड लगा घोडा हवा हो गया। सिपायो ने बहुत खोज की, पर दोन किसी का पता नही लगा !

आखिर मामा ने भाणेज को लेजाकर अपनी बहि सँभलाया और कहा—बहिन, अपने सपूत को सँभालो। यह चेला नही, गुरु बनने योग्य है !

यह जो दृष्टान्त है इसका अभिप्राय यह है कि दृष्टिकोण बदल जाता है तो सत्य भी असत्य और असत्य भी सत्य मा होने लगता है। एक को जो सत्य प्रतीत होता है वही दूसरे असत्य मालूम होता है। दृष्टिभेद के कारण कोई सत्य मे तो असत्य मे धर्म बतलाता है।

यह तो अपना-अपना दृष्टिकोण है।
कहो भाई, आप किस तरफ रहोगे ?
'सत्य की तरफ महाराज !'

मगर हम तो दोनो तरफ हैं ! आप आश्चर्य करेगे मैं असत्य मे भी धर्म मानता हूँ ! कैसे, सुनिए। सत्य मे तार का धर्म है और असत्य मे डुबोने का धर्म है। यही बात, अठा रह पापो मे समझनी चाहिए। आपके सामने जो खभा है इसमे भी वजन को सँभालने का धर्म है, वस्त्र मे लज्जा रख और गर्मी-सर्दी से बचाने का धर्म है, आग मे पकाने—जला का धर्म है। इस प्रकार विश्व मे एक भी वस्तु नही जिस कोई धर्म न हो ! यही नही, बल्कि प्रत्येक वस्तु

किन्तु यदि कोई मनुष्य उपदेश सुनकर भी अपना मार्ग नही बदलता, अनुरोध करने पर भी अपने तौर-तरीके मे परिवर्तन नही करता, तो चित्त को क्षुब्ध नही करना चाहिए। मन मे क्रोध या आवेश की वृत्ति नही जागृत होने देना चाहिए। उपदेश न मानने वाले के प्रति द्वेष का भाव नही आना चाहिए, वरन् मध्यस्थ भाव स्थिर रखना चाहिए। कहा भी है—

मध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव !

अर्थात्—हे प्रभो ! मेरी आत्मा मे इतना बल प्रकट हो जाय कि मैं विपरीत आचरण करने वालो पर भी समभाव रख सकूँ !

जरा विचार करो कि ऐसा किये बिना तुम अपने चित्त की शान्ति को किस प्रकार कायम रख सकते हो ? उपदेशक हितभावना से उपदेश देता है। मानने वाला माने या न माने, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। मानेगा तो उसका हित होगा, न मानेगा तो हित न होगा। किन्तु करुणा बुद्धि से उपदेश देने वाले के हित को तो कोई रोक ही नही सकता। फिर तुम क्यो क्षोभ करते हो ? जैसे तुम अपनी इच्छा पर चलते हो, वैसे ही दूसरा भी अपनी इच्छा पर चलेगा। इसमे असन्तुष्ट और रुष्ट होने का कोई कारण नही है।

तुम चाहो कि सारे ससार को मैं अपनी इच्छा पर चला लूँ, सो कदापि होने वाला नही है। सबको वैकुन्ठ या मोक्ष में पहुँचा देने का विचार पूरा नही हो सकता। तुम चाहो कि मैं सारे नगर या गाँव में शान्ति कर दूँ तो यह भी कठिन है।

कई लोगो की दृष्टि ऐसी बनी होती है कि सिह क डालना ठीक है; क्योंकि वह गायो और दूसरे छोटे जा को मार डालता है ! अतएव जितने सिंह मिले, सभी को के घाट उतार देना चाहिए।

और सिह की दृष्टि यह हो सकती है कि मनुष्य न कितने सिंहो को मारेगा, अतएव मैं मनुष्य को ही क्यो न डालूँ ? इस प्रकार मनुष्य की दृष्टि मे सिह हत्यारा है सिंह की दृष्टि मे मनुष्य हत्यारा है ।

एक बात तुम्हे अच्छी लगती है, किन्तु दूसरो को लगती है। जो वस्तु दूसरे को अच्छी प्रतीत होती , वह बुरी प्रतीत होती है। यह दृष्टि और रुचि की विभिन्नता अना कालीन है और अनन्तकालीन भी है। किसी के मिटाये नही सकती। तुम चाहो कि मुझे जो प्रिय है वह सबको होना चाहिए और जो अप्रिय है वह सभी को अप्रिय हो चाहिए तो यह सभव नही। ऐसा चाह करके तुम अपने आप बखेडे मे डाल लोगे। तुम्हारे चित्त मे विक्षेप होगा। अत तुम इस झगडे मे न पडो। तुम अपने मार्ग पर चलो और दूस को उनके मार्ग पर चलने दो। सहनशील वृत्ति धारण करते हु वर्त्ताव करो।

प्रश्न हो सकता है कि क्या कुमार्ग पर चलने वालो क भी नही रोकना चाहिए ? यदि ऐसा मान लिया जाय तो दूसर को उपदेश देना भी बद कर देना चाहिए ? फिर साधु क्य दूसरो को उपदेश देकर सुमार्ग पर लाने की चेष्टा करते है ?

उत्तर यह कि उपदेश देने की मनाई नही है। कुमार्ग पर चलने वालो को सन्मार्ग पर लाना तो महान् पुण्यकृत्य है।

सम्राट श्रेणिक को देखो! कहाँ नरक और कहाँ मोक्ष!

तो भाई यह तो अनादिकाल से चला आ रहा है। अतएव राग-द्वेष धारण करके अपनी आत्मा को कलुषित मत करो। अपने समभाव की रक्षा करो और दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करो। ऐसा करने से ही तुम्हारा कल्याण होगा।

जैनधर्म का स्याद्वाद सिद्धान्त बडा ही महत्त्वपूर्ण है। आम तौर पर लोग सम्पूर्ण सत्य को समझ नही पाते और सत्य के एक अंश को ही पकड कर सम्पूर्ण सत्य समझ लेते हैं। जब अनेक व्यक्ति इसी प्रकार एक-एक अंश को पकड लेते हैं तो उनके विचार भिन्न-भिन्न होते हैं और विचारो की वह भिन्नता विवाद को उत्पन्न करती है। विवाद में अभिनिवेश-आग्रह-का समावेश हो जाता है और उस अवस्था मे संघर्ष छिड जाता है। इस प्रकार के संघर्ष ने अतीत काल में अनेकानेक अनर्थ उत्पन्न किये हैं और आज भी हो रहे है। इन संघर्षों को मिटाने के लिए जैनधर्म ने महान् सिद्धान्त हमे दिया है और वह सिद्धान्त स्याद्वाद है।

स्याद्वादसिद्धान्त को समझना सरल नही है और फिर उसे समझ कर अमल मे लाना और भी कठिन है। अन्तःकरण मे सत्य के प्रति असीम अनुराग हो, परदृष्टि को समझने का धैर्य हो, उदारता हो और समभाव हो तो स्याद्वाद समझ मे आ सकता है।

नदी के एक तट पर एक आदमी खडा है और दूसरे तट पर दूसरा आदमी। पहला दूसरे से कहता है-'मैं इस पार हूँ

अगर तुम बलात् दूसरो को अपनी इच्छा के अनुसार चल चाहोगे तो दूसरे भी तुम्हे अपनी इच्छा के अनुसार चल चाहेगे । इस अनुचित्त और अवाछनीय चाह का नतीजा निकलेगा ? आपस मे खीचतान होगी, रस्साकशी होगा। दूसरे को अपनी ओर खीचोगे और दूसरा तुम्हे अपनी अ खीचेगा । तुम्हारी शान्ति भग होगी और उसकी भी शा। भग होगी ।

अनन्तशक्ति के धनी तीर्थङ्कर भगवान् भी समस्त सस के प्राणियो को सन्मार्ग पर लाने मे समर्थ नही होते, तो किस खेत की मूली है ? तेरा सामर्थ्य कितना-सा है ? भगवा भलाई की राह बतला देते हैं और सब जीव उस पर चलने य न चलने मे स्वतत्र हैं । तू भी ऐसा ही कर सकता है । जिसे सन्मार्ग समझता है, उसे दूसरो पर प्रकट कर दे । दूसरे मा जाएँ तो ठीक है, न माने तो भी व्याकुल और क्षुब्ध न हो। राग-द्वेष में मत पड़ । हर समय समभाव को कायम रख कर चल ।

न सब मनुष्य साधु हो सकते है, न सब नरक मे जा सकते हैं । सब की अपनी अपनी करनी है और वह अलग-अलग है । बाप किधर ही जायगा और बेटा किधर ही जायगा । सब की करनी न आज तक एक-सी हुई है और न कभी होगी ही । एक दूसरे का साथ न छोडने वाले दो सगे भाइयो की करनो मे भी कितना बृहत् अन्तर होता है ? राम और लक्ष्मण को ही देखो । दोनो की वृत्ति मे कितना अन्तर था ? इसी प्रकार पति नरक मे चला जाता है और पत्नी स्वर्ग-मोक्ष पा लेती है। काली, महाकाली और सुकाली को देखो और उनके पति

लालाजी ने कहा—नही, एक आदमी और साथ है। व नीचे खडा हुआ है। मेरे साथ साथ नही आया।

मैंने पूछा—क्यो ?

लालाजी—वह वेमजहब है।

मैं—ले आते तो क्या हानि थी ?

लालाजी—वह धर्मगुरुओ को नही मानता।

मैं—नही मानता का मतलब क्या ? अधिक से अधिक यही तो कि वह मुझे हाथ नही जोडेगा ! न सहा। आने मे क्या हर्ज है ? क्या मजहब वाले और बेमजहब आसपास मे बात-चीत भी नही कर सकते ? आमने-सामने बैठ भी नही सकते ?

आखिर लालाजी ने उसे बुलाया और वह आ गया। तब मैंने उससे कहा-लोग कहते हैं कि मजहबी लोगो के विचार संकीर्ण होते हैं, पर मैं देखता हूँ कि बेमजहबो के विचार तो मजहबी लोगो मे भी ज्यादा संकीर्ण है ! क्या बात है ? क्या यहाँ आने से आपके विचारो को मजहब की छूत लग जाने का डर है

वह व्यक्ति कुछ लज्जित-सा होकर मुस्कराने लगा।

मैंने कहा—अगर आपको कोई परहेज न हो तो हम आपकी तौर पर बातचीत करे ?

उसने कहा—जी नही, मुझे कोई ऐतराज नही है।

इस प्रकार उसकी स्वीकृति लेकर मैंने कहा-आप बेमजहब हैं, इसका अर्थ क्या है ?

उसने कहा-हम किसी पथ को या धर्म को नही मानते।

मैं बोला-ठीक है। हमारा मजहब है कि किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाओ, झूठ न बोलो, चोरी न करो, व्यभिचार न करो

और तू उस पार है।'इसी प्रकार दूसरा पहले मे कहता है तू 'मिथ्या कहता है। मैं इस पार हूँ और तू उस पार है

अब तुम्हे 'इस पार' और 'उस पार' का निर्ण देने के लिए पच नियत कर दिया जाय तो क्या निर्णय किसको सच्चा और किसको झूठा कहोगे ?

अगर तुम निष्पक्ष पंच हो तो यही निर्णय देना कि दोनो अपने-अपने दृष्टिकोण से सच्चे हैं।

रामचन्द्रजी पिता थे या पुत्र थे ? कहना पडेगा अपने पिता दशरथ की अपेक्षा पुत्र थे और अपने पुत्रो और कुश की अपेक्षा पिता थे। एकान्त रूप से पिता पर वे दशरथ के भी पिता हो जाएँगे और एकान्त पुत्र से लव-कुश के भी पुत्र हो जाएगे। यह दोनो एकान्त f हैं। अतएव यहाँ अनेकान्तवाद की ही शरण ली जाती यही बात सर्वत्र समझनी चाहिए। अनेकान्तवाद या स्य का सहारा लिये बिना वस्तुतत्त्व की ठीक-ठीक व्यवस्था सभव नही और दर्शनशास्त्रो का सघर्ष भी मिटना नही है।

वास्तव मे मनुष्य को धार्मिक दृष्टिभेद के कारण उ जित नही होना चाहिए। सदा धैर्य और औदार्य से काम सत्य को समझने और समझाने का प्रयत्न करना चाहिए।

एक बार एक सज्जन मेरे पास आए। उन्होने नमस किया और मैंने कहा—दया पालो' लालाजी! अकेले आए हो ?'

१३

नाम और रूप २

लोभ-लालच न करो, गुस्सा न करो, घमड न करो, छल-न करो। आप इस मजहब को नही मानते है ?

उसने कहा–यह सब बाते तो हम भी मानते हैं।

मैने कहा–तो फिर आपके और हमारे इस सिद्धान्त कोई अन्तर नही है। फिर आप अपने को वेमजहब भले रहो, हो तो हमारे ही मजहब मे।

साराश यह है कि लोग व्यर्थ ही नाम के झगडे मे जाते है, तत्व का विचार नही करते। अगर नाम के पर्दे हटाकर तत्त्व पर विचार किया जाय और दूसरो की दृष्टि शान्ति के साथ समझने का धैर्य रक्खा जाय तो मतभेद प्रा समाप्त हो जाएँ।

तुम पानी को 'वारि' कहते हो और दूसरा 'वाट कहता है, तुम परमात्मा को 'ईश' कहते हो और दूसरा 'ई या 'ईशा' कहता है, कोई राम कहता है कोई रहीम कहता किन्तु यह सब तो शब्द ही हैं। यह परमात्मा के भाव व्यक्त करने वाले शब्द हैं, स्वय परमात्मा नही हैं। परमात तो वह एक ही है जिसके लिए इन शब्दो का और दूसरे हजा शब्दो का प्रयोग किया जाता है। फिर झगडे की क्या बात हैं

परमात्मा के रूप गुणो के सम्बन्ध मे अवश्य विचार क और जिससे परमात्मा के परमात्मापन मे कोई बाधा उपस्थि न हो, वैसा उसका रूप मानो। अभी परमात्मा के मुख्य गु बतलाये जा चुके हैं। उन गुणो से युक्त शुद्धात्मा का कुछ भ नाम हो, वही परमेश्वर और पूज्य है।

अगर इस तथ्य को समझ कर तुम परमात्मा की भ करोगे तो अक्षय आनन्द के भागी होओगे।

४–१–४६ }
पाली }

थोडे से नाम जानते है और इसी कारण परिमित नामो से ही परमात्मा की स्तुति करते है।

सूक्ष्म मति से विचार किया जाय तो परमात्म अनिर्वचनीय है। उसका स्वरूप शब्दो का अगोचर है। भाषा मे ऐसी शक्ति नही कि वह परमात्मा के स्वरूप का निरूपण कर सके। जहा बुद्धि और तर्क का भी प्रवेश नही है वहा शब्दो का प्रवेश हो ही कैसे सकता है? इसीलिए आचाराग सूत्र मे तीर्थङ्कर भगवान स्वय ही फर्माते हैं कि शुद्ध आत्मा के स्वरूप का न मति द्वारा जाना जा सकता है, न शब्द द्वारा ही।

मई तत्थ न गाहिया
तक्का तत्थ न विज्जन्ते।

परमात्मा का निश्चय बुद्धि से करना सम्भव नही है। तर्क के तीर भी वहाँ तक पहुँच नही सकते। वह शब्दागोचर तत्त्व शब्दगम्य भी नही है।

प्रश्न हो सकता है कि परमात्मा को अगर इन साधनो के द्वारा नही जाना जा सकता तो फिर किस साधन से जाना जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर भी उन ज्ञानियो ने दिया है। उनका कहना है कि परमात्मा का स्वरूप इन उपर्युक्त साधनो से नही किन्तु साधना के द्वारा ही जाना जा सकता है। वह अनुभूति गम्य है। उस अनुभूति को जागृत करने के लिये अन्तःकरण को विषय-वासनाओ से व्यावृत्त करना पडता है, विकारो को दूर करना पडता है और सासारिक कामनाओं के कारण चचल बने हुए को एकदम शान्त
 । पड़ता है। कहा है—

थ कर थे। इस दृष्टि से वे 'आद्य' है। 'आद्य' का दूसरा अर्थ
ठ। यद्यपि श्रेष्ठता विविध दृष्टियो से विविध प्रकार की
ाती है किन्तु वास्तविक और अस्थायी श्रेष्ठता आत्मो-
ही है। भगवान आत्मोत्कर्ष की पराकाष्ठा को प्राप्त है,
उन्हे 'आद्य' कहते है।

ावान 'ब्रह्मा' भी है। प्रत्येक तीर्थंकर धर्ममार्ग को
करते हैं, मोक्षमार्ग का विधान करते हैं, अतएव वह
या ब्रह्मा है। फिर भगवान ऋषभदेव तो मानव
के आदि व्यवस्थापक भी है उन्होने भोगभूमि को नष्ट
व्यवस्था के समय मे कर्मभूमि की व्यवस्था की।
ातो को जीवन निर्वाह के साधनो का उत्पादन करना
ोग करना भी सिखलाया। विवाह प्रथा और राज्य
को नींव डाली। खेती करना और भोजन पकाना
ाखलाया। इस कारण वही सच्चे ब्रह्मा हैं इस विषय
ृत विवेचन पहले आ चुका है।

ावान 'ईश्वर' है। उनका आत्मिक ऐश्वर्य सर्वोत्कृष्ट औ
ात है ससार का क्षणभगुर ऐश्वर्य वास्तव मे ऐश्वर्य
सच्चा ऐश्वर्य आत्मा की अनन्त और असीम शक्तियो
निहित है आत्मा के गुणो का अक्षय भण्डार ही सच्चा
। उसे प्राप्त कर चुकने वाले ही परमात्मा कहलाते है।

ानन्त' विशेषण परमात्मा के लिये ही सबसे अधिक
है। बतलाया जा चुका है कि आत्मा की अनन्त
है और सिद्ध हो जाने पर उनमे से प्रत्येक शक्ति
ो जाती है। उनके किसी भी गुण की सीमा नही है।

यहां आचार्य महाराज ने परमात्मा के कुछ और नामो का उल्लेख किया है। परमात्मा का एक नाम 'अव्यय' है। 'अव्यय' का अर्थ है जिसका व्यय न हो, अर्थात् विनाश न हो जिसमें किसी भी प्रकार का विकार न हो।

कुछ लोगो का खयाल है कि मुक्तात्मा आवश्यकता पडने पर पुनः ससार मे अवतरित होते हैं, वे शरीर को धारण करके अपने शासन को फिर ठीक ठाक करते है। परन्तु यह मान्यता विचार करने पर सही नही मालूम होती। ऐसा करने वाला 'अव्यय' नही कहला सकता।

परमात्मा 'विभु' अर्थात् व्यापक है। व्यापकता के विषय मे कल विवेचन किया जा चुका है। वही व्यापकता यहा समझनी चाहिए। भगवान का ज्ञान समस्त भावो को परिपूर्ण रूप से जानता है।

भगवान 'अचिन्त्य' है। बतलाया जा चुका है। ईश्वर का स्वरूप बुद्धि ग्राह्य नही है, मन से अगोचर है। केवल स्वानुभूतिगम्य है।

भगवान 'असख्य' भी हैं। उनकी सख्या नही हो सकती। जो अनन्त गुणो के भण्डार है, उनकी सख्या सम्भव नही है। फिर अनादिकाल से आत्माए परमात्मपद को प्राप्त करती आ रही हैं। अनन्त आत्माओ ने सिद्धि प्राप्त की है और उन सबका अस्तित्व पृथक्-पृथक् है। अतएव उनकी गणना नही हो सकती।

भगवान 'आद्य' हैं। भक्तामर स्तोत्र भगवान ऋषभदेव ी स्तुति है। ऋषभदेव स्वामी इस अवसर्पिणी काल के प्रथम

तीर्थंकर थे। इस दृष्टि से वे 'आद्य' है। 'आद्य' का दूसरा अर्थ
–श्रेष्ठ। यद्यपि श्रेष्ठता विविध दृष्टियों से विविध प्रकार की
ी जाती है किन्तु वास्तविक और अस्थायी श्रेष्ठता आत्मो-
ष में ही है। भगवान आत्मोत्कर्ष की पराकाष्ठा को प्राप्त है,
एव उन्हे 'आद्य' कहते है।

भगवान 'ब्रह्मा' भी है। प्रत्येक तीर्थंकर धर्ममार्ग की
त्ति करते हैं, मोक्षमार्ग का विधान करते हैं, अतएव वह
ाता या ब्रह्मा है। फिर भगवान ऋषभदेव तो मानव
ाज के आदि व्यवस्थापक भी हैं उन्होने भोगभूमि को नष्ट
ो हुई व्यवस्था के समय मे कर्मभूमि की व्यवस्था की।
ष्य जाती को जीवन निर्वाह के साधनो का उत्पादन करना
प्रयोग करना भी सिखलाया। विवाह प्रथा और राज्य
स्था की नीव डाली। खेती करना और भोजन पकाना
सिखलाया। इस कारण वही सच्चे ब्रह्मा हैं इस विषय
वस्तृत विवेचन पहले आ चुका है।

भगवान 'ईश्वर' है। उनका आत्मिक ऐश्वर्य सर्वोत्कृष्ट औ
मित है ससार का क्षणभगुर ऐश्वर्य वास्तव मे ऐश्वर्य
है, सच्चा ऐश्वर्य आत्मा की अनन्त और असीम शक्तियो
न्तर्निहित है आत्मा के गुणो का अक्षय भण्डार ही सच्चा
है। उसे प्राप्त कर चुकने वाले ही परमात्मा कहलाते है।

अनन्त' विशेषण परमात्मा के लिये ही सबसे अधिक
क है। बतलाया जा चुका है कि आत्मा की अनन्त
ा है और सिद्ध हो जाने पर उनमे से प्रत्येक शक्ति
हो जाती है। उनके किसी भी गुण की सीमा नही है।

यहां आचार्य महाराज ने परमात्मा के कुछ और नामो का उल्लेख किया है। परमात्मा का एक नाम 'अव्यय' है। 'अव्यय' का अर्थ है जिसका व्यय न हो, अर्थात् विनाश न हो जिसमे किसी भी प्रकार का विकार न हो।

कुछ लोगो का खयाल है कि मुक्तात्मा आवश्यकता पड़ने पर पुनः ससार मे अवतरित होते हैं, वे शरीर को धारण करके अपने शासन को फिर ठीक ठाक करते है। परन्तु यह मान्यता विचार करने पर सही नही मालूम होती। ऐसा करने वाला 'अव्यय' नही कहला सकता।

परमात्मा 'विभु' अर्थात् व्यापक है। व्यापकता के विषय मे कल विवेचन किया जा चुका है। वही व्यापकता यहा समझनी चाहिए। भगवान का ज्ञान समस्त भावो को परिपूर्ण रूप से जानता है।

भगवान 'अचिन्त्य' है। बतलाया जा चुका है। ईश्वर का स्वरूप बुद्धि ग्राह्य नही है, मन से अगोचर है। केवल स्वानुभूतिगम्य है।

भगवान 'असख्य' भी है। उनकी संख्या नही हो सकती। जो अनन्त गुणो के भण्डार है, उनकी सख्या सम्भव नही है। फिर अनादिकाल से आत्माए परमात्मपद को प्राप्त करती आ रही हैं। अनन्त आत्माओ ने सिद्धि प्राप्त की है और उन सबका अस्तित्व पृथक्-पृथक् है। अतएव उनकी गणना नही हो सकती।

भगवान 'आद्य' हैं। भक्तामर स्तोत्र भगवान ऋषभदेव की स्तुति है। ऋषभदेव स्वामी इस अवसर्पिणी काल के प्रथम

ात यही है। परमात्मा को समय समय पर याद
परमात्मा के सच्चे नहीं, कच्चे भक्त हैं। सच्चा
है जो परमात्मा को कभी भूलता ही नहीं है ! और
भूलता नहीं, उसे याद करने की भी आवश्यकता नहीं
ाद तो उसी की जाती है, जिसकी बीच मे याद भुला
विस्मरण पूर्वक ही स्मरण होता है। कहा भी है—

पलक न विसरूं चितारूं नहीं,
सदा अखण्डित ध्यान।
धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो ॥

च्चा भक्त वही है जो पल भर के लिए भी परमात्मा
स्मरण नहीं करता, जिसके अन्तःकरण मे परमात्मा की
ज्योति सतत जागृत ही रहती है। ऐसे भक्त को कभी
ा करने की आवश्यकता ही नहीं होती। जैसे पद्मिनी स्त्री
भर के लिए भी अपने पति को नहीं भूलती है, उसी प्रकार
ान् का भक्त भगवान् को नहीं भूलता।

पति के नाम की माला जपती रहें किन्तु समु-
ा न करे अर्थात् अपने कर्त्तव्य का पालन न
५ पर रोटी बना कर भी न दे तो उसे
दुकान से भूखे प्यासे प्यासे आये हैं और
बैठी आपके नाम की माला जप रही
ा सूख रहा है, पर आपको पानी
डंड पहल रहे है किन्तु रसोई घर
स्थिति मे आप प्रसन्न होगे

ज्ञान अनन्त, दर्शन अनन्त, वीर्य अनन्त, सिद्धत्व अ
स्थिति अनन्त। अतएव परमात्मा का 'अनन्त' नाम है।

भगवान् 'अनन्गकेतु' है। उन्होने कामवासना को, साधारण प्राणियो को अजेय प्रतीत होती है, पूर्ण रूप से लिया है। कामवासना पर विजय प्राप्त किये बिना आत का उत्थान नही होता और न वह अपने शुद्ध स्वरूप प्रकट ही होता है। कामवासना ही वह बाधा है जि कारण आत्मा सिद्धि प्राप्त नही कर पाता। यह काम प्रवाह रूप से, अनादिकाल से, आत्मा पर हावी हो र है। बडे-बड़े बलवान और शूरवीर सेनापति भी काम के कि होते हैं। कामवासना की एक छोटी सी चिनगारी भी योगि को योगभ्रष्ट कर देती है, तपस्वियो की तपस्या पर पोता फे देती है और ज्ञानियो के ज्ञान को धूल मे मिला देती है। का वासना के किंकर बन कर लोग कितनी यातनाए भुगतते हैं उन सबका वर्णन करना भी शक्य नही है! यह कहना भ अतिशयोक्ति नही कि ससार के दुःखो का प्रधान कारण काम विकार ही है। कामवृत्ति की आग की लपलपाती हुई ज्वालाए मनुष्य के कल्याण को, विवेक को, चातुर्य को और अन्यान्य समस्त सद्गुणो को भस्म कर देता हैं। शास्त्र कहते हैं :-

सल्ल कामा विसं कामा, कामा आसीविसावमा।
कामे पत्थयमाणा आकामा जंति दुग्गइं॥

—उत्तराध्ययन.

यह कामभोग हृदय मे चुभे हुए काटे के समान दुःखदायी विष के समान सयम-जीवन का विनाश करने वाले हैं यह

वात यही है। परमात्मा को समय समय पर याद ले परमात्मा के सच्चे नही, कच्चे भक्त हैं। सच्चा ह है जो परमात्मा को कभी भूलता ही नही है! और भूलता नही, उसे याद करने की भी आवश्यकता नही याद तो उसी की जाती है, जिसकी वीच मे याद भुला । विस्मरण पूर्वक ही स्मरण होता है। कहा भी है—

पलक न विसरूं चितारूं नही,
सदा अखण्डित ध्यान।
धर्म जिनेश्वर मुझ हिवड़े बसो ॥

च्चा भक्त वही है जो पल भर के लिए भी परमात्मा ारण नहीं करता, जिसके अन्त करण मे परमात्मा की प्रीति सतत जागृत ही रहती है। ऐसे भक्त को कभी करने की आवश्यकता ही नही होती। जैसे पद्मिनी स्त्री के लिए भी अपने पति को नही भूलती है, उसी प्रकार का भक्त भगवान् को नही भूलता।

ई स्त्री पति के नाम की माला जपती रहे किन्तु समु-हव्यवस्था न करे अर्थात् अपने कर्त्तव्य का पालन न पति को समय पर रोटी बना कर भी न दे तो उसे कहेगे? आप दुकान से भूखे प्यासे प्यासे आये हैं और ी आसन जमाए बैठी आपके नाम का माला जप रही ास से आपका गला सूख रहा है, पर आपको पानी न रहा है। पेट मे चूहे डड पहल रहे है किन्तु रसोई घर खलाई दे रहा है! ऐसी स्थिति मे आप प्रसन्न होगे न्न होगे ?

अर्थात्—सम्पूर्ण आकाश को कागज बना लिया महासागर नदी आदि समस्त जलाशयो के जल को स बना ली जाए, कल्पवृक्षो को कलम बना लें, समस्त देव एक साथ लिखने बैठ जाएँ, करोडो सागरोपम पर्यन्त काल वे लिखते रहे, तो भी हे प्रभो ! हे जिननाथ ! आपके एक का, सामान्य रूप से भी उल्लेख नही कर सकते !

इस प्रकार को अमित महिमा से मण्डित वीतर प्रभु ही इस जीव के लिये शरणभूत हैं। उन्ही का आ लेकर जीव ससार सागर से पार उतरते है ! विमल विभु भक्ति ही आत्मा को विमल बनाती है।

भाइयो ! अपना कल्याण चाहते हो तो वीतराग प्र की भक्ति की लहरो से अपने अन्त करण को विमल बनाओ भक्ति के निर्भर का शुचि स्रोत चित्त मे बहने दो ! जानते भक्ति का अर्थ क्या है ? सच्चा भक्त कौन कहलाता है ? कह को तो सभी अपने-अपने को भगवान का भक्त बतलाते कोई यह मानने को तैयार नही कि हम भगवान के भक्त नह हैं, किन्तु सच्चा भक्त वही है जिसे परमात्मा को कभी याद नह करना पडता। जो परमात्मा को याद करे, वह सच्चा भक्त नह है। ऐसा सच्चा भक्त बनना बहुत कठिन है।

आप सोचते होगे कि मैं कैसी विपरीत बात कह रहा हू ? भगवान का स्मरण करने वाला भक्त होता है, तो यह सदा से सुनते आ रहे हैं, किन्तु मैं कह रहा हू कि ऐसा करने वाला सच्चा भक्त नही है ! तो फिर क्या परमात्मा को स्मरण न करने वाला सच्चा भक्त समझा जाय ?

भगवान् ने फर्माया है कि सही रास्ते पर चलो। कुपथ पर मत चलो। प्रभु के इस आदेश के अनुसार चलने वाला ही भगवान् का सच्चा भक्त है।

कल्पना करो जगल मे कोई आदमी गाडी ले जा रहा है। उसने ठीक रास्ता छोड दिया है और ऊबड खाबड रास्ता अगीकार किया है। कोई जानकार उससे कहता है—भाई, तुम सही और अच्छा मार्ग छोड कर इस गड्ढो से परिपूर्ण गलत मार्ग से न जाओ, फिर भी वह अपनी गाडी चलाये जा रहा है! वह थोडा आगे जाता है और किसी गड्ढे मे गिर कर गाडी का धुरा टूट जाता है। अब न गाडी आगे बढ़ती है, न पाछे लौट सकता है। वह परेशान होता है और भूख-प्यास का भी दुःख उठाता है। पश्चात्ताप करता है हाय, मैं मना करने पर भी न माना। मेरी अक्ल मारी गई थी ! मगर अब पश्चात्ताप करने से भी बिगडी बात नही बनती।

इसी प्रकार मनुष्य को मानवजन्म रूपी यह गाडी मिली है। मन इसे हाकने वाला है। तीर्थंकर भगवान और उनके आदेशवर्त्ती सद्गुरु कहते हैं—अरे गाडीवान, सभल कर चलना! धर्म का सन्मार्ग छोडकर गलत मार्ग पर मत जाना। यथा—

लडके ! गाडो धीरे-धीरे हाकना !
गाडो तेरो रग-रगीलो ·······

यह गाडी अनूठी है। बहुत सुन्दर है इसमे कानो के टेलीफोन लगे हैं और आखो की खुर्दबीन लगी है। इस गाडी

इसके विपरीत, दूसरी स्त्री पति के नाम की माला नही जपती, पर अपने कर्त्तव्य का पालन करने मे अणुमात्र प्रमाद नही करती, समय पर भोजन की व्यवस्था कर देती बाल-बच्चो की सुव्यवस्था एव सार-सभाल कर लेती है, बतलाइए आप दोनो मे से किसे अच्छा कहेगे ?

इसी प्रकार जो 'णमो अरिहंताण' की माला तो फेर है, किन्तु भगवान् की आज्ञा नही मानता, अपने कर्त्तव्य पालन नही करता अर्थात् झूठ, चोरी व्यभिचार आदि क करता है, तो क्या भगवान् उस पर प्रसन्न होगे ? जब तुम अपनी आज्ञा की अवहेलना करने वाली स्त्री पर प्रसन्न न होते तो ईश्वर कब प्रसन्न होने वाला है ?

भगवान् का नाम जपने मात्र से भगवान प्रसन्न न होता, अपितु उसके हुक्म के मुताबिक चलने से हो वह प्रस होता है। कई लोग नाम ले ले कर प्रसन्न होते है और समझ हैं कि हमने भगवान को रिझा लिया है, पर यह उनका भ्र है। वे मोक्ष के माग पर नही हैं। मुक्ति के अनन्त ऐश्वर्य भागी वह होगे जो भगवान द्वारा प्रदर्शित सत्य मार्ग प चलेंगे! उन्ही का कल्याण होगा और उन्ही पर भगवान की प्रसन्नता की वर्षा होगी।

कोई मनुष्य ताजीरात हिन्द के पोथे को माथे पर रक्खे फिरे और फिर चोरी करे! कोई पूछे तो कहे कि मैं जानता हूँ, मेरे सिर पर कानून की पुस्तक है तो क्या वह दण्ड का भागी नही होगा ? इसी प्रकार जो कहने को तो कहता है कि राम-राम हमारे माथे पर है, किन्तु चोरी करता है, अनुचित तरीको से रुपये बटोरता है, व्यभिचार करता है, तो क्या वह सजा नही पाएगा ?

गडहे मे पड कर चकनाचूर हो जाएगी, आदि-आदि का विचार इन घोडो को नही। इन्हे तो हरा-हरा घास चाहिए ! इनकी लालसा तृप्त होना चाहिए। गाडी जाय जहन्नुम मे, गाडीवान जाए भाड मे।

भगवान् ने बतलाया है कि इन्द्रिय रूपी अश्वो को कुपथ पर जाने से रोकने के लिये ज्ञान की लगाम लगानी चाहिए। ज्ञान की लगाम लगाये बिना यह स्वार्थी घोडे काबू मे नही रह सकते। लगाम थोडी सी भी ढीली डाली नही कि ये मार्ग छोड कर इधर-उधर दौड जायेगे। तेरी गाडी की धुरी टूट जायगी, आयुष्य भंग हो जाएगा और तू रोएगा, पश्चाताप करेगा। फिर तेरी क्या गति होगी ?

देखो, प्रचण्ड तेज का धनी, विपुल बलशाली राजा रावण उत्पथ पर चला तो क्या परिणाम निकला ? महाभारत के कीचक की क्या दुर्दशा हुई ? सचमुच जो अपने इन्द्रिय-अश्वो को संयत नही रखता और स्वच्छन्द बना देता है, उसकी दशा अति दयनीय होती है। उसके नाम पर ससार थूकता है और उसकी आत्मा को नरक-निगोद की दुस्सह यातनाए भुगतनी पडती हैं। इसी कारण ससार के समस्त धर्मशास्त्र एक स्वर से यही आदेश देते हैं कि—सोचो, समझो, अपने कल्याण और अकल्याण का विवेक करो और कुपथ की ओर मत जाओ। अपनी इन्द्रियो पर काबू रक्खो पाचो इन्द्रियो के विषयो की लोलुपता का त्याग करो। धर्म के पथ पर चलो। यही पथ तुम्हे अपने लक्ष्य तक पहुँचाएगा। इसी आदेश पर चलो। इन्द्रियो को वश मे रखने के लिए ज्ञान चाहिए और सद्विचार तथा पावन वातावरण चाहिए। ज्ञान, सद्विचार

को चलाओ तो सावधानी से चलाना, सावधानी से चला तो अपने लक्ष्य पर पहुँच जाओगे—

तेरे पाने को निर्वाण, मिली तन-बग्घी सुन्दर आन ।।टे

जैसे अन्य गाँव जाने के लिये गाडी चाहिए, उसी प्र मोक्ष मे जाने के लिये मानवदेह चाहिए। इन मानवदेह - गाडी मे चिदानन्दजी विराजमान हैं। इसका सचालक मन चिदानन्दजी गाफिल रहेगे तो हाकने वाला इसे ऊबडख। मे ले जाएगा। इस गाडी के घोडे कौन है ?

चंचल चपल इन्द्रिय घोडे,
विषियो हित ये चौदिश दौडे।
लगाओ इनके ज्ञान लगाम ।।१।।

हे मर्त्य ! तेरी गाडी पांच घोडो की बग्घी है। ये पा घोड़े हैं—श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय औ स्पर्शनेन्द्रिय। यह घोडे अत्यन्त लोलुप हैं। अच्छा खाने क देखते है तो इधर-उधर भाग जाते है। जैसे कान बाजे क मधुर ध्वनि सुनने को, आखे रूप सौंदर्य देखने को, घ्रा सौरभ का उपभोग करने को, रसना सुस्वादु वस्तुओ का सुधारस पान करने को और स्पर्शेन्द्रिय सुखद स्पर्श पाने को उद्यत रहती है। पाचो इन्द्रियाँ अपने अपने योग्य विषयो के लिए इतनी लालायित रहती है कि उन्हे हित अहित का कोई ख्याल नही होता। वे परिणाम का तनिक भी विचार नही करती। उनकी दौडधाम से गाडी की क्या दशा होगी, चिदानन्दजी की कितनी हानि होगी, गाडी कब, कहाँ और किस

तुम्हारा दोष नही है। नीच की सगति करने का फल मुझे मिला! नीच की सगति करने से मौत के सिवाय और क्या मिल सकता है।

भाइयो! आत्मा हस के समान अपने निर्मल स्वभाव मे रमण करने वाला है, परन्तु इन्द्रियो के ससर्ग से विषय-वासना मे पड जाता है तो अनेक प्रकार की मुसीबतें झेलता है। चौरासी के चक्कर मे फस जाता है। जन्म-मरण के ऊपर क्लेशो का भाजन बनता है। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी इन्द्रियो को निरन्तर वश मे करने का प्रयत्न करता रहे और सत्समागम मे ही अपना समय व्यतीत करे।

सत्समागम से मनुष्य किस प्रकार धर्म-मार्ग पर आरूढ़ होता है और दृढतापूर्वक आगे बढता है, यह जानना हो तो विजया कुमारी और विजय कुमार की उज्ज्वलतम जीवनी पर विचार करो। उनका जीवन हिमालय की भाति उत्तुङ्ग धवल और निर्मल है और साधको के लिये अतिशय स्पृहणीय और आदर्श है।

विजया कुमारी किसी महासतीजी का उपदेश सुनकर विषयो से उदासीन हो गई। उसने कहा—सतीजी, मैं आजीवन ब्रह्मचारिणी रह कर दीक्षा का पालन करना चाहती हू। मैं माता-पिता की आज्ञा लेने का प्रयत्न करूगा। किन्तु आजीवन प्रतिमास के शुक्लपक्ष मे ब्रह्मचर्य पालने का त्याग तो तभी करा ही दीजिए। इस जीवन का क्या भरोसा है! अभी है और अभी नही है! कौन जाने अगले क्षण क्या होगा?

साध्वीजी ने उसे शुक्ल पक्ष मे ब्रह्मचर्य-पालन की प्रतिज्ञा

और पवित्र वातावरण की त्रिवेणी सत्समागम से मिलती अतएव तुम कुसंगति से बचो। विषयलोलुप, स्वच्छन्द अविचारवान, अज्ञान और अभद्र लोगो के सम्पर्क से अच्छे भी बिगड जाते हैं और सयम सम्पन्न, ज्ञानवान एव पुरुषो की सगति से बुरे से बुरे लोग भी सुधर कर सज्जन जाते है।

एक कौवा समुद्र के तट पर गया। वहा एक हस साथ उसकी मित्रता हो गई। दोनो आपस मे मिलते जु रहते थे। एक दिन कौवा ने कहा—मैं हमेशा तुम्हारे यहा आ हूँ और तुम मेरा स्वागत करते हो, पर मुझे तुम्हारा सन्मा करने का अवसर नही मिला। आज तुम मेरे यहा चलो!

हस ने कौवे की बात मान ली। वह उसके साथ ह लिया। दोनो आकर एक वृक्ष पर बैठे। जिस वृक्ष पर बैठे व घनी छाया वाला था। अतएव एक राजा भी उसी वृक्ष की छाया मे आकर ठहर गया। कौवा ठीक राजा की साध मे, उपर डाली पर बैठा था! उसने बीट की और उड कर दूसरे वृक्ष पर बैठ गया। बीट राजा के सिर पर गिरी। राजा को गुस्सा आया। उसने निशाना ताक कर हस को तीर मारा। तीर लगते ही हस घायल होकर नीचे गिर पडा और मरते-मरते बोला—

नाहं काको महाराज! हसोऽहं विमले जले।
नीच सगप्रसंगेन, मृत्युरेव न संशयः ॥

हे राजन्! मैं कौवा नही हू बीट करने वाला। मैं तो समुद्र के निर्मल नीर मे रमण करने वाला हस हू। लेकिन इसमे

मंगलमय मुहूर्त मे, धूमधाम के साथ, दोनो का विवाह सम्पन्न हो गया। विवाह के अनन्तर विजया कुमारी अपनी सुसराल आई। उसने सासू को प्रणाम किया और सासू ने अपनी प्यारी पुत्रवधू को छाती से लगाकर शुभाशीर्वाद दिया।

रात्रि का समय हुआ। विजया सोलहो शृंगार सज कर शयनगृह मे आई और विजयकुंवर भी आ पहुँचा। समयोचित वार्त्तालाप के पश्चात् विजयकुंवर ने कहा-प्रिये! क्षमा करना। मैंने कृष्णपक्ष मे ब्रह्मचर्य पालन करने की प्रतिज्ञा ली है। कृष्ण-पक्ष के सिर्फ तीन दिन शेष हैं। तब तक हमे मर्यादापूर्वक ही रहना होगा।

विजयकुंवर की बात सुनकर विजया की आंखे नीची हो गई। उसके चेहरे पर एक विचित्र प्रकार की उदासीनता झलक उठी। वह गहरे सोच-विचार मे डूब गई।

विजय कुंवर को विजया की भाव-भंगी समझने मे जरा भी विलम्ब नही लगी। उसने कहा—प्रिये! सिर्फ तीन ही दिन तो शेष हैं। इन तीन दिनो के लिए इतनी उदासी क्यो? तुम इतनी गंभीर क्यो हो गई हो? चुटकियो मे दिन निकल जाएंगे!

अब विजया ने भेद खोल देने के अभिप्राय से कहा-प्राण-नाथ, मेरी बात सुनो। मैंने अपने माता पिता से साध्वी बनने की आज्ञा प्राप्त करनी चाही थी। आपके सामने मैं सच्ची-सच्ची बात कहती हूँ। विवाह करने की मेरी इच्छा नही थी। भोगो के प्रति मुझे अरुचि थी। किन्तु माता-पिता ने मुझे अनुमति नही दी और मेरा विवाह कर दिया।

करा दी। फिर वह अपने घर आई और साध्वी बनने आज्ञा माँगी। लडकी के विचार सुनकर माता ने अपने से कहा—झटपट लडकी की सगाई कर दो, नही तो वह से निकल जाएगी।

विजया का पिता वर की तलाश करने निकला! सय से उसी नगर मे एक सुशील लडका था। उसने मुनिराज उपदेश सुना। मुनिराज ने कहा—जगत् मे महान् से मह धर्म ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य सब तपो मे उत्तम तप है। कोई तपस्या ब्रह्मचर्य की बराबरी नही कर सकती। ब्रह्मचर्य जी का प्राण है, जीवन की शक्ति है, आत्मा का अप्रतिहत बल और परलोक का समर्थ सखा है। ब्रह्मचारी की आत्मा अपू तेज से उद्भासित होने लगती है। उसके चेहरे पर एक अनू और सौम्य दीप्ति अठखेलिया करने लगती है। ब्रह्मचर्य आयु वर्धक है और परमशक्तिदाता है।

उस लडके पर मुनिराज के प्रभावशाली शब्दो क असर पडा और उसने कृष्ण पक्ष मे ब्रह्मचर्य पालन करने क प्रतिज्ञा ले ली। लडका इतना गम्भीर था कि उसने अपनी प्रतिज्ञा का किसी से जिक्र नही किया। उसने न तो प्रतिष्ठा पाने के लिए प्रतिज्ञा ली थी और न वाहवाही लूटने के लिए। आत्म-कल्याण की दृष्टि से उसने ब्रह्मचर्य ग्रहण किया था, अतएव किसी पर प्रकट करने की आवश्यकता उसने नही समझी।

विजया का पिता वर की तलाश करते-करते उसी लडके के पास पहुँचा और सयोग की बात कि सगाई पक्की हो गई! लडके का नाम विजयकुवर था।

एवार हैं। जो बात तुमने मेरे सबन्ध मे कही है, वही मैं तुम्हारे सबंध मे कह सकता हूँ।

विजया—नहीं, ऐसी बात नही है। लोक मे पुरुष और स्त्री की स्थिति भिन्न-भिन्न प्रकार की मानी जाती है। अतएव आपकी और मेरी स्थिति मे अन्तर हैं।

विजय—हमे लोक का अनुसरण करते हुए भी धर्म को विस्मरण नही करना चाहिए। धर्मशास्त्र मे नर और नारी के कर्त्तव्यो मे कोई भेद नही है। शास्त्र मे श्रावक के लिए जिन व्रतो का विधान किया गया है उन्ही का श्राविका के लिए भी विधान है। जैसे अन्यान्य व्रतो मे श्रावक एव श्राविका के लिए कोई अन्तर नही है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य क विषय में भी कोई अन्तर शास्त्रो मे दृष्टिगोचर नही होता। अन्तर है तो केवल यही कि अणुव्रत धारिणी श्राविका स्वपतिसन्तोषव्रत लेती है और श्रावक स्वपत्नीसन्तोषव्रत। मगर भावना मे कुछ भी अन्तर नही है। तो फिर धर्मशास्त्र के आदेश पर चलने वाले पुरुष की जो स्थिति है, वही स्त्री की भी है। व्रत का जो बन्धन पुरुष के लिए है वह स्त्री के लिए भी है और जो स्वतन्त्रता पुरुष के लिए है वही स्त्री के लिए भी है।

विजया—शास्त्र की बात आप मुझसे अधिक समझते हैं। परन्तु व्यवहार मे स्त्री-पुरुष को समान स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त है।

विजय—व्यवहार परमार्थभूत नहीं. धर्म परमार्थभूत है। अतएव हमे उसी का प्रधान रूप से अनुसरण करना चाहिए।

विजय—हाँ, फिर क्या हुआ ?

विजया—किन्तु विवाह से पहले और दीक्षा अनुमति मांगने से पहले ही मैंने शुक्लपक्ष मे ब्रह्मच की प्रतिज्ञा ले ली थी और वह प्रतिज्ञा मेरी आज भी

भाइयो ! कितनी भारी बात है ? उगती हुई इस प्रकार की पवित्र मनोभावना होना साधारण बा मन पर ऐसा नियत्रण पा लेना एक महान् आदर्श ऐसे जितेन्द्रिय नर-नारी मानवजाति की सुप्त चेतना करने वाले और जिनशासन के महत्त्व की वृद्धि कर

अधिकाश लोग यौवन की आधी मे उड उचित तथा अनुचित का भान भूल जाते हैं। परना लोलुपता की दृष्टि डालने वाले कामुक व्यक्तियो क दम्पती से शिक्षा लेनी है। जिनके पूर्वज ऐसे म हो गये हैं, उन्हे क्या विषयो की कीचड मे फँस है ? कम से कम परनारी को तो मा-बहिन के चाहिए।

हाँ, तो विजया बोली—नाथ ! मेरी शुक आपकी कृष्णपक्ष मे ब्रह्मचर्य पालने की प्रति स्पष्ट है कि मेरे साथ विवाह होने पर भी सुखो की पूर्ति नहीं हो सकती। इसके लिए विवाह करना होगा। आप प्रसन्नता के साथ हैं, बल्कि मेरा अनुरोध है कि आप ऐसा क कोई अडचन नही आएगी।

विजय—मगर तुम और हम तो एक

एक बार विमल तीर्थंकर के सामने ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में चर्चा चली। तीर्थंकर भगवान् ने ब्रह्मचर्य की महिमा का प्रतिपादन किया। तब किसी ने पूछा—प्रभो! क्या आज भी ऐसे ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले मौजूद हैं? इस प्रश्न के उत्तर मे तीर्थङ्कर देव ने बतलाया कि कच्छ देश मे विजय ...र विजया एक शय्या पर शयन करते हुए भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं!

श्रोताओ को आश्चर्य हुआ और उस ब्रह्मचारी युगल के प्रति हृदय मे असीम श्रद्धा उमडी। उनमे से कइयो ने उनके दर्शन करने की इच्छा की। वे कच्छ के लिए रवाना हुए और पूछते-पूछते विजय के पिता के पास पहुँचे। वहा पहुँच क... सेठ से पूछा—आपके कुंवर कहा है? हम उनके दर्शन के लिए आये हैं।

सेठ ने कहा—आये हैं, तो स्वागत हैं; परन्तु मेरा ...का क्या साधु है जो आप दशन करने आये हैं?

आगन्तुको ने कहा—वह साधु नही महान् पुरुष हैं। ब्रह्मचय की साधना मे। बडे से बडे साधु से तनिक भी हीन नही हैं!

सेठजी को कुछ पता नही था। बात उनकी समझ नही आई। तब आने वालो ने विमल भगवान् से सुना हु... वृत्तान्त उन्हे बतलाया और कुमार के दर्शन करने की अपनी अभिलाषा प्रकट की।

विजया—तो फिर आपका अभिप्राय क्या है ? आप भविष्य के सबध मे क्या सोचते है ?

विजय—कहा तो सही कि जो तुम्हारा भविष्य, वही मेरा भविष्य !

विजया—अर्थात् ?

विजय—अर्थात् जिस प्रकार तुम आजीवन ब्रह्मचारिणी रहोगी, उसी प्रकार मैं भी आजीवन ब्रह्मचारी रहूगा। तुम पतिव्रता हो तो क्या मे पत्नीव्रती नही हो सकता ? पुरुषत्व के विशेषाधिकार को शास्त्र नही मानता और दुनिया मानती है तो भी वह भोगो के कीचड मे फँसने के लिए नही होना चाहिए।

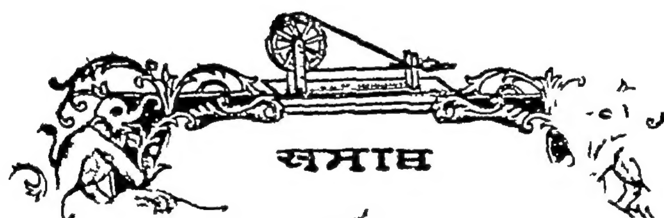
विजया—आपकी यह प्रतिज्ञा छिपी नही रहेगी। वह प्रकट हो जायगी और जब प्रकट हो जायगी तो माता-पिता नाराज होगे !

विजय–प्रथम तो प्रकट होगी ही नही, कदाचित् प्रकट हो गई तो उसी दिन हम दोनो दीक्षा ले लेगे !

बस, विवाह के प्रथम दिन से ही विजय और विजया ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, भाई-बहिन की सी पवित्र भावना के साथ अपना जीवन यापन करते हैं। एक ही शय्या पर सोते हुए भी दुर्धर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गए ! धन्य है ऐसे नर और नारी ! कहाँ तक उनकी प्रशसा की जाय ? उनकी प्रशसा के लिए भाषा मे कोई शब्द नही हैं !

परमात्मा की सच्ची आराधना है! इसी पथ पर चल अनन्त जीवों ने अपना कल्याण किया है और जो इस चलेंगे, उन्हीं का कल्याण होगा।*

५-१-४६ }
पाली }



*दिवाकरजी महाराज की अपूर्व ओजभरी वाणी सुन एक दम्पती ने जीवन भर के लिए ब्रह्मचर्य व्रत अङ्गी॰।

जो भेद बाहर वर्ष से अप्रकट था, वह आज प्रकट हो गया। इस भेद के प्रकट होने पर विजय के माता-पिता की मानसिक स्थिति कुछ विलक्षण-सी हुई। एक तरफ हर्ष और गौरव से वे प्रसन्न हुए और दूसरी तरफ उन्हे विषाद-का भी अनुभव हुआ!

उसी समय सेठ ने अपने पुत्र विजय को बुलाया और कहा-वत्स, तुम अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हो? हमे तो पता ही नही चल सका! बतलाना तो चाहिये था!

विजय मौन रहा। थोडी देर के बाद उसने कहा-पिताजी, हम दोनो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आज ही दीक्षा ग्रहण करेंगे!!

भाइयो! कितना महान् जीवन है? कितना ऊँचा आदर्श है? भारत को छोडकर इतना उच्चतर आदर्श अन्यत्र कहां मिलेगा? जिनशासन के सिवाय ऐसे पवित्र उदाहरण अन्यत्र मिलना मुश्किल है! इन उदाहरणो से तुम क्या लाभ उठाओगे? इतना ध्यान रखना कि तुम्हारी यौवन की गाडी किसी झाडी मे न फँस जाय!

याद रखो यह शरीर-जो आज तुम्हे भोग का साधन मालूम होता है-योग का परम साधन है! इसी शरीर से महान् पुरुषों ने मुक्तिलाभ किया है। यह देवदुर्लभ शरीर अतिशय पुण्य प्रकर्ष से तुम्हे प्राप्त हुआ है। इससे पूरा लाभ उठाओ। आत्मा का कल्याण करो भगवान् के आदेश पर चलो। प्रभु की आज्ञा को अन्तःकरण से अंगीकार करके चलोगे तो अक्षय कल्याण होगा। परमात्मा द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलना ही